11 व 12

मामुलिया

बहादुर सिंह परमार



...ंक : ग्यारह, बारह

सहयोग : बीस रुपया

...क का मूल्य : पन्द्रह रुपया

बुन्देली काव्य को नयी सञ्जीवनी देने वाले
हास्यरसावतार कविवर चतुरेश के
आकस्मिक साकेतवासी होने पर
अकादमी परिवार की ओर से
श्रद्धाञ्जलि

बहादुर सिंह परमार.

मध्य प्रदेश शासन द्वारा ग्राम एवं जनपद पंचायतों, महाविद्यालयीन, क्षेत्रीय एवं जिला पुस्तकालयों, माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक शालाओं के वाचनालयों तथा पुस्तकालयों और बच्चों को पारितोषकस्वरूप देने के लिए स्वीकृत।

लोककवि ईसुरी विशेषांक

मामुलिया

वर्ष—३, अंक—११—१२

•

सम्पादक : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त
सहायक सम्पादक : डा० वीरेन्द्र 'निर्झर'
सम्पादन सहयोग : डा० बलभद्र तिवारी, डा० कृष्णकुमार हूँका, डा० हरिसिंह घोष, वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक', सुरेन्द्र शर्मा, आशाराम त्रिपाठी।

सम्पर्क :
सम्पादकीय : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, शुक्लाना, छतरपुर—४७१००१, म० प्र०
व्यवस्थापकीय : बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर—४७१००१, म० प्र०

•

आभार :
☐ मध्य प्रदेश शासन, संस्कृति विभाग के प्रति तीन हजार रु० का अनुदान बुन्देली संवाद-समारोह के लिए प्रदान करने हेतु।
☐ मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के प्रति एक हजार रु० का अनुदान बुन्देली संवाद-समारोह के लिये प्रदान करने हेतु।
☐ स्वामी प्रणवानन्द जन कल्याण ट्रस्ट, छतरपुर के प्रति दो हजार पाँच सौ रु० का अनुदान बुन्देली संवाद-समारोह के लिये प्रदान करने हेतु।

मुद्रक—बसुराज प्रेस, ८, क्रास्टेट रोड इलाहाबाद

अपने मन मानिक के लानें सुगर जोहरी चानें

•

• बुन्देली संवाद की पहल

आज के मूल्यों का भटकाव, यांत्रिक जिन्दगी की बराबर व्यस्तता और लोकजीवन से अलग-थलग साहित्य का विज्ञापन, फिर सर्वत्र संवादहीनता। क्यों....? खास तौर से लोक साहित्य की उपेक्षा और लोक-रचनाकारों की दिशाहीन भरमभरी गति....तिस पर भी एक लम्बी चुप्पी....किसलिए ? सिर्फ इसीलिए और इसी गतिरोध की घरी में आपस में बातचीत का यह दौर, यह बुंदेली संवाद....। लोक साहित्य की समस्याओं पर मौन और मुखर चिन्तन.... उसके बाद फैसला, समाधान, सक्रिय रचनाधर्मिता, सबकी मिली-जुली पद-चापें। लोक साहित्य की गतिशीलता, लोक का बदलाव और दोनों को पास लाने की कोशिश 'ऐंगर बैठ लेव कछु कानें काम जनम भर रानें'....।

• ईसुरी से बातचीत

मध्ययुग में ईसुरी आये कब, जब साहित्य, लोक साहित्य में ठहराव आया....फिर ईसुरी, उनकी फागें और एक बढ़ाव....किस तरफ, लोक से बतकाव तक। फिर ऐसे शून्य में ईसुरी से बीतचीत....उससे कई सवालों का जवाब चुपचाप मिल गया, मिलता रहेगा। अचरज कि ऐसे लोक-कवि का साहित्य की इस भीड़ (इतिहास) में नाम तक नहीं....क्यों नहीं ? क्या लोक से प्रेरित, लोक से संबद्ध और इतने लोकप्रिय काव्य का यही भाग्य....? ईसुरी का प्रामाणिक संग्रह तैयार, कैसे प्रकाशित हो ? अर्थ का सवाल....क्या जहाँ अर्थ, वहीं साहित्य ? साहित्य और अर्थ की गुलामी....? ईसुरी तुमने क्या कहा 'यहाँ बसे को कौन भलाई, जहाँ बकन के थानें'....बकन यानी बगुलों के जहाँ थाने हों, वहाँ हंसों का क्या इसीलिए 'हंसा उड़ चल देस बिरानें'.... पर नहीं, ईसुरी कुछ और संघर्ष करो इस लोक के लिए, लोक के साहित्य के लिए हे ईसुरी, आज से ईसुरी या ईसुरी जैसे रचनाधर्मी, कम-से-कम अपनी रचनाधर्मिता के लिए जूझो....।

● आभार की चर्चा

कुछ ऐसे ही संवाद में भागीदार उन विद्वानों, जो मौन संलाप कर यहाँ मुखर हुए···उन श्रोताओं-पाठकों, जो संवाद सुनते रहे और अब मौन रहकर आँखों से सुनेंगे···उन सभी सहयोगियों, जो इस संवाद की भूमिका बना सके···सब के लिए आभार···। खास तौर से मध्य प्रदेश शासन के संस्कृति विभाग, भाषा विभाग, मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, छतरपुर के स्वामी प्रणवानन्द जन-कल्याण न्यास, लक्ष्मणदास कुंजबिहारी सर्राफ धर्मशाला और मानस समिति को, जिन्होंने आर्थिक या अन्य प्रकार का सहयोग देकर संवाद को सफल बनाया और बनाते रहेंगे···। सभी प्रेमियों के लिए आभार···सिर्फ इतना कि ···'करके नेह टोर जिन दइयो दिन-दिन और बड़इयो'···।

—नर्मदा प्रसाद गुप्त

परख-परखाव

●

● उपयोगी और प्रेरणादायक

दसवाँ अंक मिला। बड़ा सुन्दर है। बड़ा उपयोगी है। उसकी सभी रचनाएँ ज्ञानवर्द्धक तथा प्रेरणादायक हैं।

—यशपाल जैन, सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली

● लोक संस्कृति के नये-नये द्वार

बुंदेली लोक साहित्य और परम्परा के झरोखे से संस्कृति को प्रकाश में लाने वाली इस समर्थ पत्रिका की जितनी ही प्रशंसा की जाय, कम है। छतरपुर के कृष्णभक्त नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह की 'स्वयंदूतिका चरित्र' को आलोक में लाकर आपने साहित्य-जगत् का उपकार किया है। कहानी, व्यंग्य, निबन्ध सब-कुछ तो हैं इस बहुआयामी 'मामुलिया' में। प्रीता व्यास की स्मृतिदंश' हृदयस्पर्शी कहानी है,'दिवारी और गोवर्द्धन-पूजा' लोक-दृष्टि को उजागर करने वाला गीत है। 'सात बैनन कौ बीर' पारम्परिक रचना है, तो 'बुन्देली लोक-गीतों में भाई-बहन' लोक साहित्य में रिश्तों की महत्ता का मूल्यांकन करने वाला सशक्त निबन्ध है। 'मामुलिया' लोक संस्कृति के विविध पक्षों के नये-नये द्वार खोलने में सक्षम है।

—डॉ० यज्ञदत्त तिवारी,
हिन्दी विभाग, अनूपपुर (शहडोल), म० प्र०

● विशेषांक जैसी कथा-सामग्री

अकादमी द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका 'मामुलिया' अपने प्रत्येक नये अंक में कोई-न-कोई विशेषांक जैसी कथा-सामग्री लेकर चलती आ रही है। अपने दशम अंक को दीपावली अंक के रूप में प्रस्तुत करते हुए कुछ नयी सामग्री आयी है, जो मामुलिया के पाठकों को आज तक अन्यत्र दुर्लभ रही है···राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के दुर्लभ चित्र को प्रकाशित कर मामुलिया ने निस्सन्देह विशेष प्रशंसा प्राप्त की है। आदित्य ओम की 'गुरु-दक्षिणा' की लघु कथा, रानी सरोज गौरिहार के गीत, बुन्देली लोकगीतों में भाई-बहिन पर जयन्ती देवी

का लेख, डॉ० नर्मदा प्रसाद गुप्त का 'आल्हखण्ड : कुछ प्रासंगिक प्रश्न' आदि के साथ ही पुस्तक-समीक्षा के लिए अधिक स्थान दिया जाना पाठकों को और अधिक आकर्षित करने के दृढ़ आधार हैं।

—जागरण, झांसी, उ० प्र०

● प्रासंगिक मानचित्र

'मामुलिया' के माध्यम से बुन्देली और हिन्दी की सेवा प्रशंसनीय है। मेरा सुझाव है कि प्रति वर्ष 'मामुलिया' के एक अंक में प्रासंगिक मानचित्र का प्रकाशन हो और उस मानचित्र के माध्यम से बुन्देलखण्ड के साहित्यिक, राजनैतिक, पुरातात्त्विक तथ्यों का स्थितिकीय विश्लेषण प्रस्तुत किया जाय।

— डॉ० ए० एन० सिंह,
प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय लौंड़ी, म० प्र०

● कारसदेव । एक टिप्पणी

उपर्युक्त संदर्भ में कारसदेव अर्थात् विन्ध्य प्रदेश के गूजरों, अहीरों और गड़रियों के बीच प्रचलित कारसदेव की गोटों का लेखक ने वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में कुछ बातें विचारणीय हैं—

(१) कारसदेव कौन था, यह लेख से ज्ञात नहीं हो पाता है। हम अचानक ही प्रथम पैराग्राफ पृष्ठ १८ पर पढ़ते हैं कि "कारसदेव जब बड़ा हुआ ...... आदि। इस प्रकार आकस्मिक रूप से उसके अवतरण से भौंचक-सा रह जाना पड़ता है।

(२) लेखक ने कालिदास की सीता और शकुन्तला तथा महर्षि वाल्मीकि की सीता से जाटवधू की तुलना की है, जो कि उपयुक्त नहीं है। दोनों ही वर्णित प्रकरणों की परिस्थितियाँ भिन्न हैं। लेखक ने स्वयं ही लिखा है कि सीता और शकुन्तला गर्भिणी थीं। दोनों ही नायिकाएँ अपने-अपने पति और समाज की शंका और परीक्षा की देहली पर खड़ी थी। तत्कालीन समाज और नायिका की धीरोदात्तता का यह तकाजा था कि वे ऐसा कुछ न करतीं या कहतीं, जो उन्हें समाज और उनकी नायिका की मर्यादा से च्युत कर देता, अस्तु जाटवधू से उनकी तुलना नहीं की जा सकती है।

फिर ऐसा सर्वथा नहीं है कि उसने अपनी मर्यादा के भीतर कुछ भी उत्तर नहीं दिया हो और अपनी सफाई प्रस्तुत न की हो। कालिदास की सीता ने कहा—

"वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य॥"
(रघु० ६१/१४)

कालिदास की शकुन्तला ने भी कहा है—

"अनार्य आत्मनो हृदयानुमानेन प्रेक्षसे। क इदानीमन्यो धर्मकञ्चुकप्रवेशिनस्तृणच्छन्नकूपोपमस्य तवानुकृतिं प्रतिपत्स्यते।" (अभिज्ञान शाकुन्तल अंक ५, श्लोक २२ के बाद गद्य)

जाटवधू ने जो कथन किया है वह देश की सभ्यता और संस्कृति के अनुकूल नहीं बैठता है—

"उठा घरेलना" ···छेंकत बनिहें तो छेंकहो नई जइहो वई के सात।
गोबर डारत रैओ भुअरी भैंस खों तेरे कुल को लगा देहों दाग॥
(मामुलिया, पृष्ठ २६-२७)

कहाँ तो कालिदास की उत्कृष्ट व्यञ्जनामय कथन-शैली और कहाँ इस जाटवधू के शब्द?

"ए राजा" शब्दों और पदों में छिपी कुल, मर्यादा पुरुषोत्तमता, त्याग, तपस्या, विद्वत्ता आदि की व्यञ्जना देखने योग्य है। इसी प्रकार "तृणच्छन्न-कूपोपम", "धर्मकञ्चुकी" शब्दों में छिपी भ्रष्टाचार और अनार्य आचरण और ढोंग की व्यञ्जना दर्शनीय है। शकुन्तला तो दुष्यन्त को 'अनार्य' तक कह डालती है। परन्तु जब पश्चात्ताप के बाद उनका मिलन हुआ, तो उसने अपने दुर्दैव को कोसा था न कि किसी अन्य को। यहाँ न केवल उत्कृष्ट भारतीय दर्शन और संस्कृति के दर्शन होते हैं, अपितु धीरोदात्त नायिकाओं के आदर्श चरित्र के भी। ये नायिकाएँ भला जाटवधू की भाँति कुल को दाग लगाने की कल्पना भी करेंगी? कुल और परम्परा के लिए वे तो अपने प्राणों की आहुतियाँ दे देंगी, परन्तु विपरीत कार्य न करेंगी।

शारीरिक रूप से वे गर्भिणी होने से अपने पति के वंश की रक्षा करने की जिम्मेदारी भी उठा रही थीं, यह भी ध्यान देने योग्य बात है। जो कुछ भी घटनाक्रम वर्णित है, वह एक स्थायी प्रसंग का एक तात्कालिक पद्य मात्र है।

—डॉ० वीरेन्द्र कुमार जैन,
संस्कृत विभाग, महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर

● मीरमण्डल के जीवन्त कवि — लाल विनीत

'मामुलिया' का अंक १० काफी महत्त्वपूर्ण है। 'कारसदेव' और 'स्वयंदूतिका चरित्र' विशेष महत्त्वपूर्ण लेख हैं। किन्तु "मीर मण्डल के जीवन्त कवि—लाल विनीत" शीर्षक लेख ने मन में खिन्नता उत्पन्न कर दी। यह लेख साहित्य में चोरी का एक 'जीवन्त' उदाहरण है। डॉ० भगवतशरण द्विवेदी मेरे परिचित

और अच्छे मिल हैं, पर उन्हें यह क्या सूझी कि 'मधुकर' के अंक २३-२४, मार्च १९४४ में प्रकाशित श्री शिवसहाय चतुर्वेदी के लेख को अपने नाम से प्रकाशित करा लिया। इस लेख में प्रारम्भ की दूसरी पंक्ति के अन्तिम शब्द (देवरी) से लेकर आठवीं पंक्ति के अर्द्धांश तक ही श्री द्विवेदी की मालिकता है, शेष शब्दशः स्व० चतुर्वेदी का लेख है। यह लेख "मीर मण्डल" के कवियों के हस्तलिखित कविता संकलन "काव्यकुञ्ज" में कवि-परिचय के रूप में शिवसहाय चतुर्वेदी द्वारा जोड़ा गया है, जिसकी मूल पाण्डुलिपि की प्रतिकृति मेरे पास मौजूद है। द्विवेदी जी ने सं० १९९६ में लाल विनीत जी की मृत्यु बतायी है, जबकि उनकी मृत्यु सम्वत् १९९३ में हुई थी। शोक-सभा में न सिर्फ शिवसहाय चतुर्वेदी और बजलाल यादव, अपितु बुद्धिलाल श्रावक और लल्ली प्रसाद नेगी ने भी श्रद्धांजलि दी थी। पता नहीं श्री द्विवेदी ने इन दोनों कवियों की श्रद्धांजलि में पढ़ी कविता के उद्धरण क्यों नहीं दिये ?

जो भी हो, इस प्रकार की प्रवृत्ति स्वस्थ्य परम्परा के निर्माण में सहायक नहीं हो सकती। केवल नाम छपवाने की ललक ही ऐसे कार्यों के पीछे हुआ करती है। हिन्दी और बुन्देली के दुर्भाग्य से 'छद्मकुशलों' की एक लम्बी परम्परा ही अपने यहाँ विद्यमान है। उसे तोड़ना तो दूर, बढ़ाना और बनाये रखना ही चाह रहे हैं लोग। भाई, अगर नहीं लिखेंगे तो साहित्य बियाबान नहीं हो जायगा। लिखना ही है, तो निजत्व से परिपूर्ण लिखिये। स्वागत है आपका। 'मामुलिया' की कोरी चुनरिया पर 'कारोंच' के दाग न ही लगाएँ तो कृपा होगी। यही कहना है मुझे द्विवेदी जी से और उनके समानधर्मी विद्वानों से भी।

—गयाप्रसाद नीरस, सुहागन आभूषण, गोपालगंज, सागर

बुन्देली संवाद-खण्ड

●

● बुन्देली लोकसाहित्य हो या कोई भी लोकसाहित्य, बदले हुए लोक या लोकसंस्कृति को प्रतिबिम्बित करने के लिए खुद बदलता है। यदि नहीं बदलता, तो मुर्दा जाता है क्योंकि लोक उसे नकारना शुरू कर देता है। इसी तरह जब लोकजीवन में मशीनी यांत्रिकता, थकान, ठहराव और मूल्यहीनता आ जाती है, तब लोकसाहित्य नया लोकरस और नये लोकमूल्य लेकर फूटता है और पुराने लोक को बदलता है। दोनों प्रकार की स्थितियों को ठीक से परखना और पुराने तथा नये लोकसाहित्य को पहचानना बहुत जरूरी है, खास तौर से इस संक्रमण-काल में। और इस पहचान-परखाव के लिए और भी जरूरी है संवाद की शुरुआत। ऐसे ही कीमती समय में सबकी भागीदारी जगाने आया है बुन्देली संवाद, कुछ कहता हुआ और कुछ स्थापित करता हुआ।

—सम्पादक

● लोकगीतों को बहुत प्राचीन और काल-परिधियों से मुक्त कहा जाता है, जिससे केवल लोकगीत ही नहीं, वरन् समूचा लोकसाहित्य ही इतिहास से बहिष्कृत कर दिया गया है और किसी भी बोली के लोककाव्य का ऐतिहासिक क्रम से अध्ययन बिल्कुल उपेक्षित रह गया है। आश्चर्य तो यह है कि लोक बदलता रहता है, किन्तु लोकगीतों को जड़ और स्थिर मान लिया गया है। लोकगीतों में हर युग का प्रतिनिधित्व करने वाले अपने चुने हुए विषय, घटनाएँ और पात्र होते हैं, फिर भी उन्हें आदिम मानसके सन्दूक में बन्द कर दिया गया है।

—उत्तर प्रदेश, जुलाई १९८३ में प्रकाशित 'लोकगीतों का काल-निर्धारण' लेख से, पृष्ठ ११.

● अभी तक के इतिहास (साहित्येतिहास) में राजा-महाराजा कवि रहे हैं, लोककवि को कवियों की जाति से बाहर निकाल दिया गया है। आखिर यह भेद-भाव क्यों ? मैं समझता हूँ कि यह हमारे साहित्येतिहास की भारी कमी है।

—कलावार्ता, अगस्त १९८१ में प्रकाशित 'लोकसाहित्य की मुश्किलें' लेख से, पृष्ठ २८.

कुछ पत्र : कुछ कतरनें

● मैंने छतरपुर आने का वचन दिया था और मेरी इच्छा भी थी। परन्तु भोपाल की दुर्घटना में मेरे बायें पैर में ऐसी चोट लग गयी है कि मैं चल-फिर नहीं सकती। प्रतिदिन डॉक्टर आकर कुछ उपचार करते हैं। उनके विचार में अभी ठीक होने में एक मास से अधिक ही समय लग सकता है। अत: अब आना सम्भव नहीं है। समारोह के लिए शुभकामनाएं भेजती हूं।

—महादेवी वर्मा, १७ सी अशोकनगर, इलाहाबाद

● बचपन में ईसुरी की दो-तीन फागें सुनी थीं, जो लोक-प्रचलित थीं। आयोजित उत्सव के लिए अपनी मंगल-कामना करता हूं।

—वियोगी हरि, सेवा निकेत, एफ १३/२ माडेल टाउन, दिल्ली-९

● यहां परिस्थितियों का दुश्चक्र इस प्रकार घूम रहा है कि मुझ पर और मेरे परिवार पर दिन-प्रतिदिन विपत्तियों का वज्राघात हो रहा है। कल ही जबलपुर से लौट कर आया हूं, जहां मेरे भतीजे का देहावसान हो गया। अभी डकैती की परिस्थितियों को ठीक कर रहा था कि भतीजे की मृत्यु और तीव्र ज्वर का आक्रोश सहन कर रहा हूं। आने में असमर्थ हूं। क्षमा करें। समारोह की सफलता की कामना करता हूं।

—डॉ० रामकुमार वर्मा, साकेत, ४ प्रयाग स्ट्रीट, इलाहाबाद

● लोक साहित्य को उन्हीं लोगों ने उपेक्षित किया और उसे गतिशील नहीं बनने दिया जो लोक-जीवन से दूर शहरी साहित्य के चक्कर में पड़े रहे। लोक-कवि करें तो क्या। बेचारे उसी लोक-देवी सरस्वती को पूजते हैं, जो पहले से उनके कण्ठ में विराजी रहीं। गतिशीलता तो गतिशील लोक-जीवन से आती। राष्ट्र की राजनीति ऐसे लोकपक्ष को तो नकार रही है। तभी तो वह कुआं-ताल-देवी-देवता चालू लोकाचार वगैरह की धुनें अलापते रहे और अपनी समझ से जो भी आया-पाया गुनगुनाते रहे। बहरहाल वह जीवत रह सके, यह शुभ बात है। अब तो उसे उस स्थान से उठाना है और राष्ट्र के जन-जीवन के स्तर तक पहुंचाना है। यह कार्य करते रहें। सफलता अवश्य मिलेगी, देर भले ही हो।

आप बड़ी लगन और मनोयोग से अकादमी का कार्य कर रहे हैं। मैं हृदय से प्रसन्न हूं। अकादमी अवश्य ही अपना कार्य-सम्पादन सफलता से करती रहे — यही चाहिये। मैं उसका हूं, वह मेरी है। कहीं तो मुझे स्थान मिला। मैं गौरव अनुभव करता हूं। मेरी हार्दिक शुभकामनाएं स्वीकार करें कि आपकी अकादमी का उत्सव सफलतापूर्वक सम्पन्न हो।

-- केदारनाथ अग्रवाल, सिविल लाइन्स, बांदा

● ईसुरी तो मुझे राह चलते मिल गया। उसके सम्बन्ध में कुछ किया जा सका, तो उसका बहुत कुछ श्रेय गरौठा के निकट रयपुरा निवासी स्व० श्री रघुवर तिवारी को है और फिर श्रीमान् ओरछेश को। उनसे उसके प्रकाशन के लिए रुपया मिला। उनकी संरक्षता में लोक साहित्य सम्बन्धी कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ। उनका अत्यधिक ऋणी हूं और उस कार्य का श्रेय उन्हें देना मेरा परम कर्त्तव्य था। तिवारी जी से ही ईसुरी की जन्मभूमि मेंडकी का पता लगा। बिल्कुल अचानक। वे स्वयं अच्छे फगवारे थे। ईसुरी की सैकड़ों फागें उन्हें कण्ठस्थ थीं। उसे उन्होंने देखा भी था और जैसा वे बताया करते थे उसके साथ उन्होंने फागें भी गायी थीं। उन्हें सन् '४० से जानता रहा। महाराज का संग्रह अकेला संग्रह नहीं था और न किसी ऐतिहासिक दस्तावेज की तरह उसकी चर्चा ही उचित होगी।

—कृष्णानन्द गुप्त, गरौठा, झांसी

● यह जानकर हर्ष हुआ कि बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी की तृतीय वर्षगांठ तथा मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के रजत जयन्ती वर्ष के उपलक्ष्य में 'बुन्देली संवाद' का आयोजन किया जा रहा है और उस आयोजन के अन्तर्गत दो संगोष्ठियां की जा रही हैं। मैं आपके सभी आयोजनों का हार्दिक स्वागत करता हूं और उनकी सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएं भेजता हूं। मुझे बड़ा हर्ष है कि आप बुन्देलखण्ड के साहित्य के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए प्रयत्नशील हैं। बुन्देली साहित्य रत्नों की खान है। दुर्भाग्य से हम अभी तक अपनी उस निधि से पूरी तरह परिचित नहीं हैं। मैं आशा करता हूं कि आपके प्रयास से उस दिशा में अच्छी सेवा होगी।

—यशपाल जैन, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

● यह कार्यक्रम इतना आकर्षक, उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है कि यदि मैं पहले से बम्बई के लिए बुक न होता तो हर हालत में उपस्थित होता। आप मेरी

मानसिक रूप से उपस्थिति मानते हुए आयोजन की पूर्ण सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाओं को स्वीकार कीजियेगा।

—डॉ० प्यारेलाल श्रीमाल, रंगमहल, नई पेठ, उज्जैन

● बुन्देली संवाद की आयोजना में सम्मिलित किये गये बिन्दुओं को उठा आपने लुप्त होते हुए लोक साहित्य को बचाने और उसकी स्मृति दिलाने का स्तुत्य प्रयास किया है। बुन्देलखण्ड ही नहीं, भारत का साहित्य और साहित्यकार ऐसे प्रयासों को महत्व प्रदान करेगा। सम्प्रति सिनेमा, दूरदर्शन, टी० वी०, टेपरिकार्ड एवं वी० डी० ओ० देश की संस्कृति एवं सांस्कृतिक मूल्यों को नष्ट करने में सक्रिय हैं। नयी-नयी तरह से कही गयी अपनी बात में वे कुछ भी नहीं कह पा रहे। प्रचार-प्रसार के इन माध्यमों से कहने वाले को नये के नाम पर कुछ कहने को शेष नहीं बचा लगता। देश के विभिन्न अंचलों की अमूल्य लोक संस्कृति (जिसमें बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बुन्देली संस्कृति आती है) को उजागर करना और उसे प्रसार के आधुनिकतम साधनों से अंग्रेजियत में रँगे लोगों के घर-घर पहुँचाना आवश्यक हो गया है। बुन्देली संवाद के माध्यम से बुन्देलखण्ड अंचल की लोक संस्कृति के विभिन्न बिन्दुओं को लोक संवाद में सम्मिलित करके बुन्देलखण्ड अकादमी ने अपने उचित दायित्व का निर्वाह किया है। आयोजन की सफलता के लिए शुभकामनाएँ।

—बाबूलाल शर्मा, नेहरू महाविद्यालय, बाँदा, उ० प्र०

● बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर (म० प्र०) के तत्वावधान में मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन की रजत जयन्ती के उपलक्ष्य में सम्पन्न बुन्देली संवाद-समारोह जैसे आयोजनों से आम आदमी की जिन्दगी और लेखन के बीच सामञ्जस्य और रिश्तेदारी कायम रखने में सहयोग मिलना है। साहित्य, समाज और साहित्यकार का घनिष्ठ सम्बन्ध जुड़ता है।

—दैनिक नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली

● गत ७ व ८ अप्रैल '८४ को मानस भवन, छतरपुर के प्रांगण के सज्जित रंगमंच एवं अग्रवाल धर्मशाला सभा-भवन में बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर द्वारा आयोजित बुन्देली संवाद-समारोह अपने किस्म का अभिनव था।

—दैनिक शुभ भारत, छतरपुर

● मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के रजत जयन्ती वर्ष के उपलक्ष्य में गत दिनों बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर द्वारा छतरपुर के मानस भवन

और अग्रवाल धर्मशाला के सभागार में सम्पन्न द्वि-दिवसीय बुन्देली संवाद-समारोह अपने किस्म का प्रथम और अभिनव था।

—साप्ताहिक 'नया नारा', भोपाल

● बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर द्वारा आयोजित बुन्देली संवाद का सम्पूर्ण कार्यक्रम पूर्णतः सार्थक रहा और हर्षोल्लासपूर्ण वातावरण में मनाया गया।

—दैनिक भास्कर, झाँसी, उ० प्र०

● बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर द्वारा म० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन की रजत जयन्ती पर आयोजित सम्पूर्ण कार्यक्रम बहुत ही हर्षोल्लास से सम्पन्न हुआ। लोक साहित्य में निहित सांस्कृतिक कार्यक्रमों से ही हमें प्रेरणा मिलती है, इन्हें प्रोत्साहन देना चाहिए।

—अवध पुष्पाञ्जलि, मासिक, लखनऊ

● बुन्देली संवाद : ऐसे आयोजनों से लोक-जीवन में सांस्कृतिक चेतना का विकास होता है।

—साप्ताहिक दीनोदय, महोबा, उ० प्र०

● संस्था द्वारा ७, ८ अप्रैल को आयोजित बुन्देली संवाद-समारोह एक सराहनीय और महत्वपूर्ण कड़ी सिद्ध होगा।

—दैनिक जागरण, झाँसी, उ० प्र०

● 'मामुलिया' पत्रिका और बुन्देली फाग काव्य तथा आल्हखण्ड पर दो ग्रंथों के स्तरीय प्रकाशन से अकादमी ने साहित्य-जगत् में अपनी जमीन ही तैयार की थी कि इस समारोह में साहित्यकारों के उपयोगी संवाद ने एक नया जोश दिया है, जिससे साहित्य की आम समस्या के लिए अकादमी की तत्परता साफ जाहिर हुई।

—दैनिक नव भारत, भोपाल

● बुन्देली संवाद-समारोह की महत्ता इसलिए भी है कि बुन्देलखण्ड के लोक-कवि ईसुरी के सर्वाङ्गीण व्यक्तित्व और कृतित्व पर पहली बार एक सफल विचार-गोष्ठी हुई। विद्वानों द्वारा अठारह आलेख पढ़े गये। "लोक-साहित्य—कितना नया, कितना पुराना" विषय पर हुई सारगर्भित बहस का विद्वानों द्वारा निकाला गया निष्कर्ष यह था कि—लोक-साहित्य सतत जारी एक ऐसो रचना-

प्रक्रिया है, जो न पुरानी है, न नवीन। वह तो समय की अनुकूलता एवं आवश्यकता के अनुसार हमेशा चलती है।

—जनहित दर्शन, छतरपुर, म० प्र०

• छतरपुर के 'बुन्देली संवाद' कार्यक्रम का सम्पूर्ण भाग न देख पाने के लिए मेरी 'कमबख्ती' ही जिम्मेदार है, पर जो गोष्ठी हुई, वह अत्यन्त विचारोत्तेजक और सफल कही जायगी। विद्वानों की ईसुरी सम्बन्धी मान्यताएँ और भावनाएँ सुनकर प्रसन्नता हुई। गोष्ठी में पढ़े गये आलेखों और व्यक्त किये गये विचारों का स्तर उत्तम था। सभी लोगों का सभी बातों पर एकमत हो जाना जरूरी नहीं। 'संवाद' में आये प्रतिनिधियों की व्यवस्था में आपने और आपके सहयोगियों ने जो आत्मीयतापूर्ण श्रम किया, वह हमारी बुन्देली मान्यताओं और परम्पराओं के अनुरूप अत्यन्त स्तुत्य रहा।

—घनश्याम कश्यप, प्राचार्य, ४२ खेड़ापति नगर, ग्वालियर

o

उद्घाटन एवम् सांस्कृतिक कार्यक्रम

७ अप्रैल, '८४ रात्रि—८ बजे, मानस भवन प्रांगण

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के रजत जयन्ती वर्ष एवम् बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी की तृतीय वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में आयोजित बुन्देली संवाद का उद्घाटन-समारोह सरस्वती जू को लोक-वन्दना से प्रारम्भ हुआ। बोल थे—'सुमर गनेस सारदा माई' और गायक थे भगवानदास कुशवाहा। छतरपुर के हीरालाल कुशवाहा और उनके साथी कलाकारों ने इस वन्दना के द्वारा बुन्देली संवाद को बुन्देली वातावरण में ढाल दिया। विन्ध्य-कोकिल भैयालाल व्यास के अध्यक्ष पद पर आसीन होने के उपरान्त मुख्य अतिथि मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष मायाराम सुरजन ने सरस्वती-पूजन किया। इसके पश्चात् अकादमी के अध्यक्ष डॉ० नर्मदा प्रसाद गुप्त ने आगन्तुक विद्वानों का माल्यार्पण द्वारा स्वागत किया। संचालन किया श्री निवास शुक्ल ने। स्वागत-भाषण देने के लिए डॉ० गंगा प्रसाद बरसैयाँ को आमंत्रित किया गया।

डॉ० गंगा प्रसाद बरसैयाँ—बुन्देलखण्ड का साहित्य, कला, संस्कृति, शौर्य, धर्म, दर्शन, हिन्दुस्तान के तमाम क्षेत्रों से कहीं अधिक श्रेष्ठ, वरेण्य और नमन के योग्य रहा है क्योंकि तमाम प्रकार की क्षेत्रीयता के हमारे मन-मस्तिष्क में इतिहास के साथ जुड़ जाने पर भी बुन्देलखण्ड अपने साहित्यिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में पूरी तरह से समन्वयात्मक प्रवृत्ति का रहा है और उस चरित्र के साथ बंधा रहा है।

चाहे संत साहित्य या रीति साहित्य का समग्र क्षेत्र हो, अगर आप बुन्देलखण्ड के प्रदेय को एक तरफ रख देते हैं, तो आपका साहित्यिक इतिहास इतना बौना रह जाता है कि हम उसके ऊपर निश्चित रूप में गर्व करने की स्थिति में नहीं रह जाते। यहाँ की लोक-साहित्य-धारा जीवन की नयी दिशाएँ देती रही है और ये नयी दिशाएं देने वाले ईसुरी का चरित्र यदि हम श्रृङ्गार के वृत्त में व्यास को श्रृङ्गार और भक्ति के परिक्षेत्र में ही देखने की कोशिश करेंगे, तो दोनों कवि हमारी समझ से परे हो जायेंगे। आज सब को नये सिरे से देखने की आवश्यकता है। मुझे विश्वास है कि ये संवाद के आयोजन हमारी इन समग्रताओं, परम्पराओं, सब उपलब्धियों को जहाँ एक ओर रेखांकित करेंगे,

पुन: उनको पुनर्जीवित करेंगे, वहीं भविष्य की नयी दिशाओं को भी सुनिश्चित करेंगे तथा भविष्य की नयी-नयी प्रेरणाएँ लायेंगे।

मैं इस मंच पर अकादमी और आप सबकी ओर से अतिथियों का स्वागत करता हूँ और विश्वास करता हूँ कि हमारे संकल्प इस प्रकार के आयोजनों के माध्यम से साकार होंगे।

स्वागत-भाषण के बाद अकादमी का परिचय अकादमी के सचिव डॉ० वीरेन्द्र 'निर्झर' ने प्रस्तुत किया।

डॉ० वीरेन्द्र 'निर्झर'— अकादमी का गठन कुछ खास उद्देश्यों को लेकर हुआ था। प्राचीन पुस्तकें लोग माँगने पर बताना नहीं चाहते और उन्हें दीमक खा जाती हैं या दो पैसे की कमी पड़ी, तो तमाखू की दूकान में चली जाती है या बाहर से साहित्यान्वेषी आकर विभिन्न उपक्रमों द्वारा पुस्तकें संग्रहालय के नाम पर ले जाकर आमदनी का साधन बना लेते हैं। इस प्रकार बहुत-सी कृतियाँ लुप्त होती जा रही हैं। डॉ० नर्मदा प्रसाद गुप्त जी से जो कि मेरे गुरु हैं, चर्चा हुई कि कहीं से इन पुस्तकों को पा करके उनके प्रकाशन की व्यवस्था करें। फिर सोचा गया कि पुस्तक का पैसा वसूल न कर पायें, तो दूसरी पुस्तक छप नहीं पायेगी और हमारा उद्देश्य पूरा न हो पायेगा। अत: एक समिति का गठन किया जाय, जो क्षेत्र में बिखरी सामग्री एकत्र करे। एक बिन्दु यह भी था कि नये साहित्यकार छप नहीं पाते, तो क्यों न एक पत्रिका अपने क्षेत्र से निकालें। अत: हम लोगों ने बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी संस्था स्थापित की और उससे वर्ष भर में पाँच सौ पृष्ठ की सामग्री देने वाली पत्रिका मामुलया निकाली, जिसमें 'पोथी का पन्ना' स्तम्भ में किसी अपरिचित कृति का परिचय, 'शब्द बोलते हैं' स्तम्भ में शब्दों के आकार, आयाम, ध्वनि आदि का ज्ञान होता है। 'उगती कोंपल' स्तम्भ में नये लेखकों, रचनाकारों को स्थान हमने दिया।

इस बीच दो पुस्तकें भी अकादमी से निकाली गयीं। एक तो 'बुन्देली फाग काव्य : एक मूल्यांकन' और दूसरी 'आल्हखण्ड : शोध और समीक्षा'। एक पुस्तक और निकालने का प्रयास है, वह है बुन्देली लोक गीतों पर, जिसे शायद चार या पाँच खण्डों में निकालना पड़े। हमारा प्रयास है कि लोकगीत को गाने की पद्धति, शैली व नोटेशन भी दें।

यह जो आज का कार्यक्रम अकादमी की ओर से आयोजित है, इसका एक अपना अलग औचित्य है। सभी जगह के विद्वान् इकट्ठे हो जाते हैं, उनसे कुछ चर्चाएँ और बहस हो जाती हैं। उस बहस में जो निष्कर्ष निकलते हैं उनका

अपना मूल्य तो है ही। मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भोपाल के सहयोग का आभारी हूँ और साथ ही, अकादमी की ओर से सभी आगन्तुक अतिथियों और आप सबका स्वागत करता हूँ।

सम्मेलन का परिचय दिया, उसके साहित्य सचिव डॉ० कमला प्रसाद पाण्डेय ने।

डॉ० कमला प्रसाद पाण्डेय - हम लोगों ने साहित्य का अनुशीलन करने पर यह पाया कि तुलसी, निराला, कबीर जैसे बड़े कवि बार-बार, किसी देश में नहीं होते। इनके होने के बाद एक रिक्तता आ जाती है, तो लगा कि इन्होंने तमाम सृजन में लोक साहित्य और मानक भाषा के साहित्य में सेतु बनाने की कोशिश की। फादर कामिल बुल्के की 'राम-कथा का उद्भव और विकास' में बताया गया है कि राम, सीता या दूसरे पात्रों की जीवन-पद्धति के बारे में लोक में जो बातें होती थी, उन सबको समेट कर पात्रों के चरित्र, मानव-प्रतिष्ठा व मानवीय आदर्शों के रूप में वाल्मीकि ने महाकाव्य रचा। तुलसी, निराला और हजारीप्रसाद द्विवेदी के सृजन में लोक-जीवन, लोक-वृत्त और लोक-मूल्यों, लोक-कलाओं के प्रेरक स्रोतों से यह सिद्ध होता है कि लोक-मानस, लोक-गीतों और लोक-शैली का योगदान नागर साहित्य के लिए बहुत जरूरी होता है। इसलिए जो साहित्य और कला के क्षेत्र में काम करना चाहते हैं उनकी खुद की गरज है कि वे लोक-साहित्य और लोक-कला को पहिचानें ताकि आज जो जड़ता आ गयी है, उसे वे तोड़ सकें। लोक साहित्य की विशेषता यह है कि वह ज्योति, आह्लाद और जीवन का झरना होता है, जो नागर साहित्य की जड़ता को तोड़ता है। कहा जाता है कि लोक-साहित्य की रक्षा करनी है। जिन्दगी रक्षा करती है उसकी, यह हमारा दम्भ है कि हम कहते हैं कि लोक-साहित्य की रक्षा करें। एक काम लोक साहित्य की रक्षा की जाय, दूसरा काम लोक-साहित्य की स्तुति, तीसरी बात है उसे आज के वैज्ञानिक चिन्तन, उपलब्धियों और हमारे चिन्तन से जोड़ा जाय। मसलन बुन्देली में किसी प्रेमचन्द की कहानी या हरिशंकर परसाई की कहानी का अनुवाद करके मामुलिया के माध्यम से भेजा जाय, जो नयी अन्तर्वस्तु के साथ आयी हुई रचनाएँ हैं वे भी वहाँ तक जायें। नये साहित्यकारों में नये सामाजिक जीवन को भी लोक-कविताओं में ढालने की शक्ति व प्रोत्साहन मिले। हमने मध्य प्रदेश के लोक साहित्य का इतिहास व मानक भाषा हिन्दी का इतिहास दो खण्डों में मध्य प्रदेश का साहित्यिक इतिहास तैयार कराने की कोशिश कर रहे हैं।

अभी हम चौथा शिविर कविता पर करने जा रहे हैं, जिसमें नये लेखक, कैसे मूल्यों से कविता को जोड़ें--इस तरह के वर्कशाप हम हर वर्ष करते हैं और उनके परिणाम की अभी तक पाँच पुस्तकें सम्मेलन से प्रकाशित हुई हैं। बस्तर के लोक साहित्य का संकलन भी प्रकाशित कराया है और भी सम्मेलन की योजनाएं हैं, उन्हें हम धीरे-धीरे अपने साधनों के अनुरूप क्रियान्वित कर रहे हैं।

● उद्घाटन-भाषण दिया मुख्य अतिथि माया राम सुरजन ने जो कि सम्मेलन के प्राण है और जिन्होंने सम्मेलन की नीव खड़ी की।

माया राम सुरजन—वैसे साहित्य की दिशा और बुन्देलखण्ड की सारे चिन्तन की भूमिका के सम्बन्ध में वीरेन्द्र जी, डॉ० बरसैयाँ जी और कमला प्रसाद काफी कुछ कह चुके हैं, मैं तो परम्परा के रूप में रस्म अदायगी कर रहा हूँ। मेरी अपनी राय यह है कि जिन लोगों के बीच में हम जाना चाहते हैं, उनके बीच में आकर यदि उनकी बातें करेंगे नहीं, तो किसी भी साहित्य की सार्थकता क्या होगी। क्या वजह है कि छह-सात सौ साल पहले रची गयी कृति आल्हा आज भी जीवित है और लोगों को कण्ठस्थ है। आज के कितने ऐसे साहित्यकार हैं, जो दावा कर सकते हैं कि हमने जो कहानी या कविता लिखी है, उसे लोगों ने सुन-सुन कर याद कर ली है। क्या कारण है कि चार सौ वर्ष से तुलसी हमारे मस्तिष्क पर आतंक की तरह छाये हुए हैं। हम सारा प्रयत्न करने पर भी तुलसी, सूर, केशव और मीराँ को अपने से अलग नहीं कर पाते। प्रेमचन्द की कौन-सी कहानी है, जो जन-जीवन से जुड़ी नहीं है। आम आदमी की जिन्दगी और लेखक के बीच में रिश्तेदारी कायम करने के लिए इस तरह के आयोजन मैं जरूरी मानता हूँ।

मैं यह मान कर चलता हूँ कि जो कुछ हम लिखेंगे, सब-का-सब बहुत उपयोगी नहीं हो जायेगा। तुलसीदास का मानस ही सब लोगों के बीच में लोकप्रिय है। रायपुर में एक विधायक महोदय अपने हस्ताक्षर मुश्किल से कर पाते हैं, लेकिन उन्हें मानस की बहुत-कुछ चौपाइयाँ गलत याद हैं। मैं यह कहना चाहता हूँ कि अल्प शिक्षित बस्तो के बीच में भी एक ग्रन्थ क्यों इस तरह से उसके जीवन से जुडा है? हमारे लिखने का उद्देश्य भी यही है।

आज साहित्य और राजनीति का रिश्ता लगभग टूट-सा गया है, वरना चन्दवरदायी से लेकर वर्तमान युग के दस-पांच साल पहले तक रिश्ता रहा है। यदि कोई सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक उत्थान का कार्य करना है, तो

साहित्य और राजनीति के बीच संवाद बहुत जरूरी है। अगर सामंजस्य स्थापित नहीं हुआ, तो दोनों के कदम विपरीत दिशा में बढ़ेंगे। जनता और शासन के बीच में साहित्य एक कड़ी के रूप में है। उस कड़ी को जनता की तरफ से तो कभी नहीं नकारा गया, किन्तु यदि राजनीति नकारती है तो नुकसान राजनीति का ही होगा।

प्रेमचन्द अपनी सारी बात बहुत कम शब्दों में कह देते थे और महाप्राण निराला ने शब्दों को नये आयाम दिये, नये अर्थ दिये। निराला हमारे आधार-स्तम्भ हैं, लेकिन प्रेमचन्द हमारे मूलमन्त्र। साहित्यकारों को पाठकों तक पहुँचने के लिए उपयुक्त भाषा तय करनी चाहिये। हमें यह नहीं देखना है कि हमारी भाषा कौन-सा स्वरूप लेकर चलती है, बल्कि यह देखना चाहिये कि किस मार्ग से जल्दी पाठकों तक पहुँच सकती है। लोक भाषा के गौरवपूर्ण इतिहास को संकलन करना ही नहीं, वरन् उसके पाठकों को उससे परिचित कराना भी अकादमी का उद्देश्य है।

मध्य प्रदेश में बुन्देली, बघेली और गोंडवाना बुन्देलखण्ड का ही एक अंग है, मैं ऐसा मान कर चलता हूँ। निमाड़ी, छतीसगढ़ी, मालवी ये पाँच लोक-भाषाएँ हैं। जैसा कि कमला प्रसाद जी ने आपको बताया कि पूरा संक्षिप्त इतिहास साहित्य सम्मेलन तैयार कर रहा है, लेकिन यहाँ बुन्देली में जो कार्य हो रहा है, मामुलिया, किताबों व दूसरे साहित्यकार बन्धुओं के माध्यम से, वह निश्चय ही सराहनीय है।

मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन जो कि अब अपने पैरों पर लगभग खड़ा हो चुका है, उसके कार्य-क्षेत्र का बुन्देलखण्ड में भी और अधिक विस्तार हो। आप लोगों ने मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनी, उसके लिये धन्यवाद।

अन्त में कार्यक्रम के अध्यक्ष भैया लाल व्यास ने व्यास शैली का उपयोग न करते हुए संक्षेप में अपना भाषण प्रस्तुत किया।

भैया लाल व्यास—यह सोचने की बात है कि साहित्य और राजनीति के चर्चित रिश्तों में कौन-सा हमको पसन्द है। एक तो राजनीति को साहित्य पर हावी करने का विकल्प है, तो दूसरा साहित्य को राजनीति से स्वतन्त्र रखने का। यदि साहित्यकार को राजनैतिक आधार पर सारे मंच लेना है या उसे बड़ा भारी राजनीतिक बनना है, यह तो एक अलग बात है लेकिन यह ध्यान में रखना चाहिये कि राजनीति जहाँ-जहाँ उभरी है, साहित्य पर आँच आयी है। यह प्रसन्नता की बात है कि अकादमी स्वतन्त्र रूप से अपना कार्य कर रही

है और यह जो आयोजन हो रहा है, वह भी बिल्कुल रचनात्मक है। यह भी सही है कि अकादमी अपने प्रकाशनों और इन आयोजनों से जन-मानस से जुड़ी हुई है। वैसे जन-मानस से जुड़ना बहुत जरूरी है या अपनी बात जन-मानस तक पहुँचाना आवश्यक है, जैसा कि प्रेमचन्द या परसाई जी ने अपने लेखन से किया। तुलसी और जगनिक सरल भाषा में आदमी की जिन्दगी की बात कह कर आज तक जन-मानस से जुड़े हैं, लेकिन आज का साहित्यकार क्या जन-मानस से ऐसा रिश्ता बनाये हुए है, यह एक बहुत बड़ी समस्या बनी हुई है। ये सभी प्रश्न आज आपके सामने हैं। मैं मुख्य अतिथि एवं बाहर से पधारे विद्वानों का बहुत आभारी हूँ और साथ ही, उन श्रोताओं का भी आभारी हूँ जो शान्तिपूर्वक पूरा कार्यक्रम सुनते रहे हैं।

सांस्कृतिक कार्यक्रम दतिया के कलाकारों ने भारत वंदना से प्रारम्भ किया। वंदना के बोल थे—दिशि-दिशि में स्वर्ग के प्रकाश-सा भरत भूमि जनम-जनम तेरा है; जिसे गायक कलाकार प्रभा शर्मा और रजनी बुन्देला ने मधुर कण्ठ से गाया। संगत की हारमोनियम पर श्री महेश कुमार मिश्र 'मधुकर', स्वरकिन्नरी पर विनोद मिश्र एवं तबला पर संतोष मिश्र ने तथा नर्तन किया कु० पद्मा बुन्देला ने। वस्तुतः यह राष्ट्रीय चेतना से भरे गीत के साथ भाव नृत्य था, जिसने प्रारम्भ से ही वातावरण में एक निराली गूंज भर दी।

इस उत्सव का विशिष्ट नृत्य था ईसुरी की फागों पर आधारित 'लास्य नृत्य' (कत्थक)। गायन स्वर था सधे हुए कलाकार मधुकर मिश्र का और तबला तथा स्वरकिन्नरी पर थे संतोष मिश्र एवं विनोद मिश्र। बोल थे—'अब रितु आई वसंत बहारन' और 'जो तुम छैल छला हो जाते' से शुरू होने वाली बहुचर्चित फागें, नायिका की वियोग भरी टीस की मधुर अभिव्यक्ति हैं। नृत्य कर रही थी पद्मा बुन्देला जिनकी मुद्राएँ गीत की गतियों के साथ बहुत ही सटीक बन पड़ीं। दरअसल यह दतिया के कलाकारों द्वारा एक नया प्रयोग था। यदि लोकगीत को शास्त्रीय नृत्य के साथ सहजता से जोड़ने की कोशिश की जाती है, तो एक खतरा यह है कि उसके साथ जुड़ा हुआ लोक नृत्य पीछे छूट सकता है, लेकिन यह अद्भुत मेल यह भी सिद्ध करता है कि लोक गीत के द्वारा शास्त्रीय नृत्य को भी अनुरूप सांचे में ढाला जा सकता है।

उपरान्त सागर के घनश्याम गुप्त एवं साथियों ने विशुद्ध बुंदेली में देवी गीत और कहरवा से गीति धारा को एक अलग गति दे दी, जिसे और आगे बढ़ाया टीकमगढ़ से पधारे हुए कुशल गायक विक्रम देव तैलंग ने। उन्होंने

ढिमरयाई गीत—'पथरा पै मिदरियाँ कीने धरीं' को पारम्परिक लय और गीत का सहज रूप में निर्वाह किया, किन्तु ईसुरी की फाग—'बिरज में खेलें फाग कन्हाई' में कुछ शास्त्रीय रंग था। लोढ़ी के रविकान्त तिवारी की फाग—'बृज में जर रई एक अहीरन, बिरह बिथा की पीरन' अपने साहित्यिक सौष्ठव के कारण श्रोताओं के द्वारा बार-बार सराही गयी।

लोकनृत्यों की परम्परा में दिवारी नृत्य जितनी महत्ता रखता है, उतनी ही कुशलता से प्रस्तुति की महोबा के रामचरण यादव और उनके साथी कलाकारों ने। दिवारी गीतों की सहज और दुबहू लय पर उन्होंने जिन मुद्राओं की अभिव्यक्ति की, वे लोक की पहिचानी हुई पारम्परिक कृतियाँ थीं। विशेषता यह थी कि 'पाई' की थिरकन उन कलाकारों की पोर-पोर में ऐसी रमी हुई थी कि उसने एक बार उदय शंकर के नृत्य की स्मृति भर दी। उसके बाद दतिया के मधुकर जी ने फाग की दतिया गायकी का एक नमूना पेश किया, जिसमें शास्त्रीयता की झलक साफ नजर आती थी। अंत में छतरपुर के हरिराम कुशवाहा एवं साथियों ने छतरपुरी गायकी में फागें सुनाकर मधुरेण समापन किया। आभार व्यक्त किया अकादमी के सचिव डॉ० वीरेन्द्र निर्झर ने।

प्रथम गोष्ठी/लोककवि ईसुरी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर आलेख-पाठ

८ अप्रैल, '८४ प्रातः ९ बजे अग्रवाल धर्मशाला सभाकक्ष सम्मेलन के अध्यक्ष मायाराम सुरजन की अध्यक्षता में गोष्ठी प्रारम्भ हुई महेशकुमार मिश्र 'मधुकर' के ईसुरी चौकड़िया-गायन से। अकादमी के अध्यक्ष नर्मदा प्रसाद गुप्त ने सभी विद्वान् लेखकों का स्वागत करते हुए ईसुरी के संबंध में बाबू केदारनाथ अग्रवाल, कृष्णानन्द गुप्त और गोविन्द मिश्र के विचार पढ़कर सुनाये। साथ ही, लोककवि ईसुरी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर कुछ मुद्दे उठाते हुए गुप्त जी ने जोर दिया कि अभी तक ईसुरी पर टुकड़ों-टुकड़ों में कुछ लेख या विचार आये हैं, लेकिन जरूरत है समग्रता को सामने रखने की, जिससे लोककवि का सही मूल्यांकन हो सके। इसी उद्देश्य को पूरा करने में इस गोष्ठी की सार्थकता है। गोष्ठी का संचालन किया भैयालाल व्यास ने और आलेखों का पाठ (सार-संक्षेप) किया क्रमशः निम्नलिखित विद्वानों ने।

सर्वश्री घनश्याम कश्यप, ग्वालियर/ईसुरी की फागों का पाठ-निर्धारण, डॉ० कन्हैयालाल वर्मा 'बिन्दु' छतरपुर/ईसुरी की फागों में शृंगार, कु० वन्दना जैन, छतरपुर/नारी शृंगार, डॉ० रामशंकर द्विवेदी, जालौन/रूप-सौन्दर्य, डॉ० वीरेन्द्र 'निर्झर', महोबा/प्रेम का कवि ईसुरी, श्रीमती प्रमोद पाठक, छतरपुर/बुन्देली

संस्कृति, श्रीनिवास शुक्ल, छतरपुर/लोकरंग, डॉ० कृष्ण बिहारी लाल पाण्डेय दतिया/काव्य-सौष्ठव, प्रो० प्रमोद पाण्डेय, छतरपुर/लोक-जीवन, डॉ० हरगोविन्द सिंह, राठ/लोक-दर्शन, महेश कुमार मिश्र 'मधुकर', दतिया/फाग गायकी, डॉ० गनेशी लाल बुधौलिया, राठ/फड़बाजी, डॉ० राधा वल्लभ शर्मा छतरपुर/ईसुरी और गंगाधर व्यास, डॉ० कमला प्रसाद पाण्डेय, भोपाल/आज के संदर्भ में ईसुरी की प्रासंगिकता।

कुछ विद्वानों के संक्षिप्त वक्तव्यों के बाद अध्यक्षीय टिप्पणी और संयोजक के आभार-प्रदर्शन से गोष्ठी का समापन हुआ।

द्वितीय गोष्ठी/"लोकसाहित्य : कितना नया, कितना पुराना" पर बहस

गोष्ठी की शुरुआत डॉ० नर्मदा प्रसाद गुप्त के इस निवेदन से हुई कि बहस में भाग लेने वाले विद्वान् भाषणबाजी न कर एक निश्चित सीमा में तर्क देते हुए विषय के मूल बिन्दुओं को ही छुएँ। गोष्ठी की अध्यक्षता श्री मायाराम सुरजन ने की व **डॉ० कमला प्रसाद पाण्डेय** ने संचालन करते हुए विषय के कुछ मुद्दों को उठाते हुए कहा—पहली बात तो यह उठती है कि लोकसाहित्य क्या पुराना हो जाता है? लोक-साहित्य मे क्या हमेशा नवीनता बनी रहती है? लोक-साहित्य कब पुराना पड़ जाता है? लोक साहित्य को नया बनाने के लिये क्या कुछ प्रयत्न जरूरी हैं? ये प्रयत्न स्वतः होते हैं या उनके लिये कोई हमारी अपनी ओर से कोशिश होती है? यह कोशिश कहाँ होती है? किस तरह होती है? विचार-मन्थन या गोष्ठी द्वारा तय होती है या जनता के सामाजिक विकास के साथ अपने आप निर्धारित होती है। लोक साहित्य हमारा जो आज है, मध्य प्रदेश या बुन्देली या ईसुरी और गंगाधर के संदर्भ में ही बात करें, तो वे क्या पर्याप्त हैं? क्या उनका माँजना और पहिचानना चाहिये? क्या ईसुरी के बाद फिर फागें नहीं लिखी जानी चाहिये? ये बहुत सारे प्रश्न हैं जिनका उत्तर हमें अपनी बहस में खोजना चाहिये। प्रसंग के लिये आप ईसुरी या बुन्देली अथवा मध्यप्रदेश या पूरे हिन्दुस्तान का लोक साहित्य ले सकते हैं। अगर प्रमाण के रूप में किसी विशेष प्रसंग या लोक साहित्य को लें, तो ज्यादा ठीक होगा। कुछ दिनों से लोक साहित्य को लेकर काफी नये प्रयोग भी हो रहे है। जैसे चित्रकला के क्षेत्र में रखकर के। रंगमण्डल में पिछले दिनों कुछ नाटक लोक-बोलियों में अनुवाद करके खेले गये। बुन्देली में अनूदित ब्रेख्त के नाटक भी। हबीब तन्वीर पिछले काफी दिनों से नाटक के क्षेत्र मे प्रयोग कर इसी तरह का उत्तर खोज रहे है। उससे हम सहमत हैं या असहमत हैं, एक अलग बात है, लेकिन लोक साहित्य को आधुनिकता के साथ कैसे जोड़ा जाय, इस खोज में वे लगे हुए हैं। लोक साहित्य कब लोकवाद हो जाता है और आधुनिकता इन दोनों में क्या सेतु हो सकता है? ये सब प्रश्न अगर हम इस गोष्ठी में रेखांकित करें, तो बहस सार्थक होगी।

एल० डी० मण्डलोई—जब से हमारी संस्कृति का विकास हुआ है, तब से हमारे लोक साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ है। अब जिस बिन्दु तक वह लोक साहित्य आ गया है वहाँ से आगे उसे आधुनिक बोध से किस तरह जोड़ा गया है, यह हमारे सामने एक समस्या हो सकती है। किन्तु अत्याधुनिक जो आज की हमारी बातें हैं उनका रिफ्लेक्शन उसका प्रोजेक्शन हम आज के लोक साहित्य में नहीं देख रहे हैं। हमारा आज का जो आधुनिक बोध है वह किसी भी रूप में लोक साहित्य में पहुँचना चाहिये। वहाँ पर भी उसे प्रोजेक्ट होना चाहिये तब कहीं वह एक विराट् कैनवास में फैलेगा और उसका सही असर हमें प्राप्त होगा। जैसे एक निमाड़ी लोक कथा है जिसमें एक किसान के पास अपना पैतृक कर्ज चुकाते-चुकाते मात्र एक लँगोटी रह जाती है और वह साहूकार के पीछा करने पर रात्रि में एक मंदिर में घुस जाता है और मूर्ति को टटोलने पर जब उसे ज्ञान होता है कि मूर्ति पर एक भी वस्त्र नहीं है तो कह उठता है कि मेरे पास तो लँगोटी है किन्तु लगता है कि साहूकार ने आपकी लँगोटी भी छीन ली। यह लोक कथा आज के संदर्भ में प्रासंगिक है। आधुनिक बोध की स्थिति यहाँ तक तो ठीक है लेकिन जो वैज्ञानिक संकट—मानव जीवन के मूल्यों का ह्रास हो रहा है उनका ऐज इट इज प्रक्षेपण या ऐज इट इज उनका पिक्चराइजेशन लोक साहित्य में नहीं मिलता है। यदि मिलेगा भी तो उसी लोक रचनाकार में जो आज की स्थितियों से सरोकार रखता है। आज का जो साहित्य लिखा जा रहा है, उसमें किसी राजनीतिक दल या उसके नेता को एक्सपोज करने की कोशिश की जाती है लेकिन हमारा यह मूल संकट नहीं है। इन तमाम राजनीतिक दलों को एक पूंजीवादी शक्ति चला रही है, उस पर चोट कर उससे जूझना होगा। लोक साहित्य का एक बिन्दु सामन्तवाद की कगार पर जाकर लगभग खत्म हो चुका है, वहाँ से आगे नहीं बढ़ पा रहा है। अगर उसे आगे बढ़ाना है तो लोक साहित्य को आधुनिक संदर्भों से जोड़ना होगा। इस समय आज की सभ्यता को नये ढंग से लगातार आगे बढ़ाने के लिये, मनुष्य को उसके मूल्यों से अवगत करने के लिये और मानवता के विकास के प्रति कुछ सोचने के लिये इन सारी चीजों पर बहस करना जरूरी है। यदि

हम सिर्फ ईसुरी, तुलसी या किसी ने क्या लिख दिया है, यही सोचते रहे तो हमारी आधुनिक बोध वाली बात सार्थक नहीं हो पायेगी।

संचालक—भाई मण्डलोई जी ने लोक साहित्य को कहीं-न-कहीं रुका हुआ ठहराया है और यह जरूरी समझा है कि उसे आधुनिक बोध के साथ जोड़ा जाय। आज की दुनिया में युद्ध परमाणु और मिसाइलों का संकट है और इस संकट को लोक कवि महसूस नहीं करता है जब कि जमान, कर्ज आदि गाँवों की समस्याओं को उसने किसी-न-किसी रूप में उतारने की कोशिश की है। सुबह की गोष्ठी में कहा गया था कि ईसुरी की फागों से १८५७ की लड़ाई का संकेत नहीं मिलता, तो इसे हमें नोट करना चाहिये और ठीक इसी तरह आज के संकट को भी। ऐसी स्थिति में हम क्या कर सकते हैं, इस बात को आगे सोचने की जरूरत है।

डॉ० नर्मदा प्रसाद गुप्त—अभी भाई मण्डलोई जी ने इस बहस को इस बिन्दु से उठाया है कि आज के जो बिल्कुल नये या बदले हुए मूल्य हैं उनका लोक काव्य उपकरण, प्रसाधन या माध्यम बनाया जाय और उन मूल्यों को लोक-काव्यों द्वारा पहुँचाया जाय। इसमें तो लोक-काव्य के लिये एक बहुत बड़ा खतरा है। यदि लोक कवि ने उन मूल्यों को लेकर कविता लिखी और लोक उससे तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाया, तो फिर लोक उसे ग्रहण नहीं कर पायेगा और वह लोक काव्य नहीं होगा। वह केवल बनावटी हो जायेगा। लोक काव्य को माध्यम के रूप में प्रयुक्त करना एक बात है और सहज रूप में फूट पड़ना दूसरी बात है। यह जरूर है कि यदि गाँव के व्यक्ति का या लोक कवि का सोच बदले और वह नये मूल्यों को अपनाये, तो नये मूल्य अपने आप लोक काव्य में आ जायेंगे। मतलब यह है कि लोक काव्य में किसी जबरन या बनावटी को जोड़ना या उसे जबरदस्ती माध्यम बनाना उचित नहीं है।

जहाँ तक आधुनिकता का सवाल है उसकी कोई सीमित परिभाषा कठिन है। हर युग में मूल्य बदलते रहते हैं और लोक कवि निश्चित ही उन मूल्यों से जुड़ता है। यदि वह उन मूल्यों को लोक काव्य में आत्मसात नहीं करता तो लोक उसे स्वीकार ही नहीं करेगा और वह लोक काव्य भी नहीं होगा।

एक दूसरी स्थिति यह है कि अगर लोक कवि नये मूल्यों को नकारता है तो लोक, लोक कवि और नये मूल्यों में एक त्रिकोणात्मक द्वन्द्व उपस्थित हो जाता है। यदि लोक ने उन मूल्यों को स्वीकार किया है तो लोक कवि उनसे बच नहीं सकता। यह अलग बात है कि गाँव के सीमित परिवेश में जो नये मूल्य हैं, वे नगर या व्यापक मूल्यों के परिवेश से कुछ अलग-थलग होते हैं।

यदि इस फर्क को न समझते हुए कोई विद्वान् लोक काव्य को नकारे तो असलियत में वह गाँव को ही नकार रहा है। मतलब यह है कि लोक काव्य में नये मूल्य रहते ही हैं तभी तो वह लोक काव्य होता है।

एक उदाहरण टीका के लोक गीत का लें। चूँकि टीका का संस्कार आज भी लोक संस्कृति से जुड़ा हुआ है, इसलिये वह लोकगीत भी आज तक लोक प्रचलित है या यह भी कह सकते हैं कि जो मूल्य लोक में निहित रहता है उससे सम्बद्ध लोकगीत पुराना नहीं होता।

लोक साहित्य के पुरानेपन या नयेपन का मुद्दा भी बिल्कुल स्पष्ट है। हर युग में लोकगीत रचे गये, हरदौल के बलिदान के बाद हरदौल सम्बन्धी, अमान सिंह के नाम पर अमानजू के राछरे मध्य युग में लिखे गये। हस्त-लिखित ग्रन्थों से यह साक्ष्य मिलता है कि व्यक्ति रचित गीत ही लोक संस्कृति में उपयोगी होने के कारण लोक प्रचलित हुए और लोक गीत बन गये। इससे सिद्ध है कि कुछ लोकगीत पुराने पीले पत्तों की तरह अपने आप झड़ जाते हैं और कुछ नयी कोंपलों की तरह फूटते हैं। अभी भाई पाण्डेय जी के द्वारा ईसुरी के बारे में यह कहा गया कि १८५७ की लड़ाई के सम्बन्ध में उनकी कोई चौकड़िया नहीं मिलती। इस संदर्भ में पहली बात यह है कि ईसुरी के पूरे काव्य की खोज नहीं हो पायी है, दूसरे यह कि १८५७ ईसवी तक ईसुरी सोलह वर्ष के थे और हो सकता है कि उन्होंने कविता करना बाद में शुरू किया हो। अभी कुँवर के० पी० सिंह ने १८५७ से सम्बन्धित एक फाग मिलने का संकेत किया है। कुछ कहा नहीं जा सकता लेकिन इसे बहस का मुद्दा भी नहीं बनाया जाना चाहिये। ईसुरी ने गाँव में रहकर अकाल को भोगा, जमीन के संकट, लाँच आदि गाँव की समस्याओं को महसूस किया, इसलिये उसने उन्हें फागों में उतारा। यह सही है कि लोक कवि जब किसी समस्या को खुद महसूस करता है तो वह खुद लिखता है और मेरी समझ में लोक काव्य को इसी नजरिये से देखा जाना चाहिये।

संचालक—गुप्त जी ने कहा है कि मुख्य मुद्दा यह नहीं है कि लोक साहित्य में परिवर्तन की बात अलग से की जाय, बल्कि यह है कि मूल्यों के परिवर्तन के साथ लोक साहित्य में भी परिवर्तन अपने आप सहज रूप में होता है। अब सवाल उठता है कि मूल्य कैसे बदलें और उनका और लोक साहित्य से सम्बन्ध क्या हो?

डॉ० कृष्ण बिहारी लाल पाण्डेय—बात यहाँ से शुरू होनी चाहिए कि किस तरह के साहित्य को हम लोक साहित्य कहें। लोक संस्कृति जिस पर

नागरता के प्रभाव अभी नहीं पड़े, उसे मुखरित करने वाला और आंचलिक भाषाओं में लिखा जाने वाला साहित्य लोक साहित्य है। दूसरी बात विचार करने की यह है कि आज नगरों, महानगरों व गाँवों का एक दूसरे की तरफ से संक्रमण हो रहा है और हमारे लोक का संक्रमण भी अपने आप में जिसे और किसी अर्थ में अनमिक्स्ड कहें, वह नहीं रह गया है। यह लोक और नगर का संक्रमण वस्तुओं का और मानसिकता का हो रहा है, इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। इसलिए पहले लिखे गये लोक साहित्य व आज के लोक साहित्य में परिवर्तन जरूर दिखाई देगा।

कैलादेवी की स्तुति में गाया जाने वाला लांगुरिया स्तुति गीत का इस्तेमाल आज दूसरे अनुभवों को व्यक्त करने के लिये भी किया जा रहा है और हास्य के रूप में—"मोटर वाले ने अठन्नी ज्यादा लै लई लांगुरिया।" जो चीज मानसिकता में रच-पच जाती है, लोक उसी को उठाता है। जैसा अभी गुप्त जी ने कहा कि जान-बूझ करके यह कोशिश नहीं की जा सकती है कि अमुक प्रकार का लिखा जाय। हमने जाना तो बहुत है, अब कुछ तब्दीली भी तो हो। यह चाहा हुआ परिवर्तन लोक साहित्य का रचयिता नहीं, बल्कि समाज को नियन्त्रित व संचालित करने वाले सोर्सेज एकजुट होकर काम करते हैं।

जीवन में चलने वाले घात-प्रतिघात हम लोक साहित्य में भी अपने आप देखेंगे। लोक साहित्य में थोड़े-से शब्द बुन्देली के व शेष आज की परिचित भाषा के स्वतः सामने आ जाते हैं, इसे अक्षमता या विकृति ही माना जा सकता है। यह सहजता नहीं है। शुद्धता भाषा की विशेषता नहीं है, लेकिन उसका प्रतिष्ठित रूप अपने आप में जरूर विशेष होता है। लोक में प्रयुक्त हो रही भाषा यदि लोक-मानस को अच्छी तरह अभिव्यक्त करती है, तो ज्यादा कारगर होती है।

संचालक—पाण्डेय जी ने निश्चय ही बात को आगे बढ़ाया है और महत्त्वपूर्ण बात यह कही कि नगर व गाँव के अन्तस्सम्बन्ध विकसित हुए हैं। अभी तक के आये वक्ता तो साहित्य के कर्मी हैं ही, मैं चाहता हूँ कि जनता से सरोकार रखने वाले दूसरे अनुशासनों के लोग भी बहस में सिरकत करें।

दशरथ जैन—लोक साहित्य हमारे लोक इतिहास, सभ्यता व संस्कृति के विकास की गति को भी प्रतिबिम्बित करता है। हमारे मित्र शायद यह भूल जाते हैं कि आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण अभूतपूर्व परिवर्तन हुए हैं, इसलिये लोक साहित्य की गति को ध्यान में रखना पड़ता है जो ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। ऐसा लगता है कि क्या हम पुराने हिन्दुस्तान या बुन्देलखण्ड में

रह रहे हैं, जहाँ कभी लोक कवि ईसुरी फाग गाता था। दुनिया में पड़ने वाले आज के प्रभावों से आज का साहित्यकार उस लोककवि की निश्चिन्तता, प्रांजलता व निर्विकारता को मेनटेन नहीं कर सकता। अगर आज का साहित्य आज के प्रश्नों का उत्तर नहीं देता, और उनके जीवन मे अच्छा या बुरा कैसा भी स्थान नहीं बनता तो फिर वह बेमानी है और अपने आप में अपेण्डिसाइटिस की तरह है। एक वक्त ऐसा भी आयेगा, जब किसी को ईसुरी, गंगाधर व्यास आदि की फागें सुनने की फुरसत नहीं होगी।

नागर साहित्य (परिनिष्ठित साहित्य) कुछ लोगों के समाज को प्रतिबिम्बित करता है और लोक साहित्य विशाल पैमाने के ऊपर सारे लोक को। इस बात पर विचार कीजिये कि हिन्दू या मुसलमानों के राज्य में गाँव की मौज-मस्ती, उनके क्रियाकलापों में हस्तक्षेप नहीं किया गया। आज ग्राम पचायतों के चुनावों में कत्ल हो जाते हैं और जीवन के मूल्यों में परिवर्तन हो रहे हैं, तो क्या वह पुराना लोक रह जाता है?

अभी भाई नर्मदा प्रसाद गुप्त ने एक बात कही कि संस्कार गीत बड़े प्राचीन हैं, लेकिन मैं गुप्त जी से एक बात पूछता हूँ कि हम जाकर कोर्ट मैरिज करने लगें, तो टीका, भाँवर के गीत कहाँ रह जायेंगे? जब कि विज्ञान जीवन को पूरी तरह से आप्लावित करने वाला है, तब उस सूरत में क्या लोक साहित्य, नागर साहित्य पर बहसें हो सकेंगी? इसलिये आज के संदर्भ में जैसा कि मण्डलोई साहब ने कहा कि नये समाज में होने वाली विश्व रचना में एक ग्राम, जनपद, अंचल का प्रश्न ही नहीं रहने वाला है, तो वैसी स्थिति में लोक साहित्य की स्थिति क्या होगी? इस विषय पर बहस करना सार्थक होगी।

संचालक—अब मैं मधुकर जी को बुला रहा हूँ, वे लोक साहित्य की गायन-पद्धति से जुड़े हुए हैं, तो क्या वे भी अनुभव करते हैं कि लोक साहित्य में नयापन आना चाहिये। अपनी शैली के परिप्रेक्ष्य में वे इस बात का उत्तर दें।

महेश कुमार मिश्र 'मधुकर'—लोक शब्द का ॠत् से निकट का सम्बन्ध है। चूंकि ॠत् शाश्वत होता है और सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक सत्य से सम्बन्धित होता है, अतएव लोकसाहित्य न नया होता है, न पुराना। शाश्वतता नहीं है, तो लोकसाहित्य नहीं हो सकता।

डॉ० हरगोविन्द सिंह—लोक साहित्य अपौरुषेय होता है क्योंकि उसका रचयिता अज्ञात होता है। व्यक्ति का लिखा हुआ लोक भाषा का साहित्य, लोक साहित्य नहीं कहा जा सकता। क्या ब्रज में सूर, मैथिली में विद्यापति का, अवधी में तुलसी या रमई काका का साहित्य लोक साहित्य कहा जा सकता है

अथवा अब जो ठेठ बुन्देली में लिखा जा रहा है, क्या वह लोक साहित्य है ? यदि रचयिता की छाप स्पष्ट है, तो उसे लोक साहित्य न कह कर लोक भाषा का साहित्य कहना चाहिये। ईसुरी का साहित्य लोक साहित्य नहीं है। हरदौल, अमान सिंह की चर्चा लोक में प्रचलित हो गयी और उनके सम्बन्ध में जो गीत प्रचलित हुए, वे लोक साहित्य हैं क्योंकि वे लोक में घुल-मिल गये हैं।

डॉ० राधावल्लभ शर्मा—पहले की पोथियों में लिखी रचनाएँ या तो लिखी रह गयीं या उसे कुछ लोगों ने ही गाया, इसके बाद वे स्वतः लुप्त हो गयीं। अणुबम आदि समस्याओं से हमारे देश के साठ-सत्तर प्रतिशत लोग अधिक सरोकार नहीं रखते। यदि संक्रमण हुआ है, तो लोगों ने विकृतियाँ सहज रूप में ग्रहण कर ली हैं, आधुनिक संस्कृति, आधुनिक बोध आदि नहीं। इसके लिये हमें लोक-शिक्षण का कार्य करना होगा। आधुनिकता को देने वाले, नयी मान्यताओं के पोषक मूल्यों को लोगों तक पहुँचाने के लिये लोक भाषा के कवि को अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्त करना होगा, तब हो सकता है व्यापक कैनवास मिले।

संचालक—किन तरीकों से लोक शिक्षण हो सकता है ? साहित्यकार के नाते हमारी क्या सीमा हो सकती है ? इन बातों के लिये अधिक समय चाहिये। उभरने वाले मुद्दे हमारे कार्य को निर्धारित करने में व प्रस्थान को तय करने में भूमिका अदा करेंगे।

काशी प्रसाद महतो—ईसुरी की अन्तरात्मा की आवाज समाज की आवाज में घुलने पर ही ईसुरी हमारे बीच में आज भी हैं। हर समय आधुनिक है, हर गत समय प्राचीन है। फड़ों में गाया जाने वाला लोक साहित्य सीमित नहीं होता है कि वह भरे समाज में गाया जाता है। उस परिवेश में वह उस समय आधुनिक होता है और दूसरे परिवेश में प्राचीन। इसलिये प्राचीन और नवीन की बहस बेकार है। शाश्वत जीवन से अलग होने पर वह नकारा जायेगा।

डॉ० कन्हैया लाल वर्मा 'बिन्दु'—अभी श्रोताओं के मध्य कुछ लोगों से मैंने सुना कि लोक साहित्य पर चर्चा होते-होते इतना दलदल-सा हो गया है कि सभी विचार एक साथ पकड़ में नहीं आ रहे हैं। मैं तो यह कहूँगा कि लोक साहित्य जन-जन का है और यदि हम अभी न लिखेंगे, तो आगे क्या बचेगा। ईसुरी का लोक साहित्य में नाम आया, लेकिन वह भी किताबबद्ध हो गया है फिर भी लोक साहित्य रहेगा। मन को प्रभावित करने वाला साहित्य लोक-साहित्य है।

उदाहरणतः एक चौकड़िया—

> नर तन हो गओ खेत डंडोरा, डरें चनन को होरा।
> कुआ गूब पातालें पोंचो, ओछो हो गओ जोरा॥

ये पंक्तियाँ सबकी भावनाओं को स्पर्श करती हैं, तो यह भी लोक साहित्य है, भले ही वे मेरी रचनाएँ हों।

संचालक—हमारी बहस यहाँ तक गयी है कि लोक की अनुभूति भी बदलती रहती है। आकांक्षाएँ, अपेक्षाएं, दुःख-दर्द की बातें बदलती रहती हैं।

डॉ० श्रीप्रकाश रूसिया—लोक साहित्य में दूसरे कवि भी समाहित हैं, न केवल ईसुरी ही। लोक साहित्य का क्षेत्र, परिभाषा, विधा, सीमा क्या हो, इसका आकलन-विश्लेषण करना दुरूह कार्य है। लोक साहित्य शाश्वत होता है। लोक साहित्य के माध्यम से ही हम अपने नवीनतम ज्ञान, टेक्नोलोजी जन-जन तक पहुँचा सकते हैं। ईसुरी ने लिखा है—'ईसुर कहत प्रान खान जे पटियाँ।' तो लोक साहित्य में पटियाँ समाहित हो गया। नागर से ग्रामीण क्षेत्रों में प्रदूषण होते ही गीत बदल जाते हैं।

संचालक—डॉ० रूसिया ने जो कहा कि लोक साहित्य का मतलब ईसुरी तक सीमित न करें, तो उससे लगता है कि उन्होंने पूरी बहस सुनी नहीं है, इसीलिये उनके मन में यह बात बनी है।

डॉ० वीरेन्द्र 'निर्झर'—बिन्दु जी ने ईसुरी की बात को दुहराते हुए अपनी चौकड़िया के लिये कहा कि यह भी लोक साहित्य हो सकती है, लेकिन उसके पहले यह आवश्यक है कि लोक उसे ग्रहण करे। किसी गारी, दादरा या किसी और छन्द में आज के साहित्यिक क्लिष्ट शब्दों को या उसके वातावरण को थोप दें, तो क्या वह लोकगीत हो जायेगा या लोक उसको समादृत करेगा, यह जरा सोचने की बात है।

लोक की भावनाओं को व्यक्त करने वाली चीज, नसों में तरल होकर घुल जाने से लोक गीत हो सकती है। लोक-मानस से उद्भूत होने वाला सहज गीत, जिसने अपने जीवन को बिल्कुल उसी लोक के स्वर से बाँध रखा हो, उस जन-जन के गीत को हम लोक गीत कहेंगे। अब जरूरत यह है कि आज का युगबोध जन सामान्य तक घुल जाय। बहुत-सी फागों में बन्दूकों, रेलगाड़ी या कहीं कुछ की चर्चा है, वह भी युगबोध है, जो लोकगीत के माध्यम से अवतरित हुआ है। लोकगीत में पुराने या नये की रेखा खींचना कठिन है।

संचालक—डॉ० नर्मदा प्रसाद गुप्त व डॉ० वीरेन्द्र 'निर्झर', आप दोनों को बोलना चाहिये, क्योंकि आप पर संयोजक की जिम्मेदारी भी है, आपके अन्दर अकादमी और मामुलिया व ईसुरी और लोक साहित्य का एक स्वप्न भी है। आपकी जितनी बातें मूर्त होंगी, बातचीत के दौरान उतना ही इस अकादमी का हित होगा। वीरेन्द्र जी ने लोक साहित्य की बात उठाते हुए "लोक-मानस में घुल-मिल जाय" यह जो बात कही है, वह अभी अमूर्त है। हम कैसे घोलते हैं, इस घुलनशीलता का क्या मतलब है? इसको बताना पड़ेगा। हम अमूर्त बातों से ज्यादा-से-ज्यादा बचें।

मायाराम सुरजन—हरगोविन्द सिंह जी ने एक बहुत सीधा-सा सवाल किया था कि ईसुरी की रचनाएँ अपौरुषेय नहीं कही जा सकतीं। इसलिये हम उनको लोक साहित्य में गिनें या कि लोक भाषा साहित्य में, यह सवाल अपनी जगह ठीक है और वीरेन्द्र जी ने उसका जवाब ठीक दिया कि लोक जिसे ग्रहण कर ले वही तो लोक साहित्य माना जायेगा। इसलिये ईसुरी के साहित्य को मेरी राय में लोक साहित्य की श्रेणी में रखना अनुचित न होगा। संस्कृति में में परिवर्तन होने से लोक साहित्य में भी परिवर्तन परिलक्षित होते रहेंगे।

हबीब तन्वीर ने अधिकांश नाटक छत्तीसगढ़ी भाषा में मंचित किये हैं, जिन्हें लेकर वे दुनिया के हर महाद्वीप में हो आये हैं। नाटक के कलाकार विशेष वेश-भूषा में नहीं होते व लगभग अशिक्षित होते हैं, लेकिन दर्शकों को अच्छी तरह अन्जाम देते हैं। इसी तरह रामचन्द्र देशमुख ने वहाँ 'चन्देनी गोंदा' चाँदनी पर अच्छी परिकल्पना करके जननाट्य तैयार किया, जिसे लोग पचीस-पचास हजार की संख्या में रात-रात भर बैठे देखते रहते हैं। देशमुख जी अपनी नवीनतम कृति 'कारी' नृत्य के माध्यम से छत्तीसगढ़ की संस्कृति को पुनर्जीवित कर रहे हैं। कोई टिकट नहीं होता, लेकिन जिससे जो बना अपनी सामर्थ्य के अनुसार देता रहता है। इस कला में अपने आप यह सामर्थ्य होती है कि वह लोक-जीवन को अपनी ओर आकृष्ट कर ले। हमारे जीवन में अधिक तनाव होने से लोक संस्कृति व साहित्य नष्ट हो सकता है। जहाँ कहीं भी रोशनी पहुँच गयी है, वहाँ पुरानी संस्कृति अपने आप उठ गयी है। हम स्वयं का तो विकास चाहते रहें और उस संस्कृति में जीने वाले लोगों से कहें कि हमारे बाप-दादों की थाती है, उसे सहेज कर तुम रखो, यह कोई मुझे सामाजिक न्याय जैसा नहीं लगता। इसलिये किसी-न-किसी दिन ये परम्पराएँ जरूर टूटेंगी और हम उनको इसी तरह से याद करते रहेंगे।

ये दो दिन छतरपुर में बहुत अच्छे कटे। मध्य भारत हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हम लोग एक कमरे में तीन-चार लोग बैठकर बातें करके मना लेते थे। अधिवेशन के कवि-सम्मेलन में दो-चार-पाँच हजार आदमी जुट जाया करते थे। लेकिन साहित्य-चेतना का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ रहा है। आप लोग दो दिन से लगातार इस रस प्रवाह का आनन्द ले रहे हैं, तो साहित्य के प्रति हमारी अनुरक्ति या आसक्ति तो हो गयी है, यह बात मान करके हमको चलना चाहिये। नर्मदा प्रसाद जी ने बहुत ही साहस के साथ यह जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और मैं उनको बधाई देना चाहता हूँ कि उनका यह आयोजन बहुत सफल रहा।

डॉ० नर्मदा प्रसाद गुप्त—यह बात निश्चित है कि लोक बदलेगा तो लोक काव्य बदलेगा। व्यक्ति-लिखित काव्य, लोक काव्य नहीं है, ऐसा भी लोगों ने कहा। प्रमाण-सहित मैंने अपने लेखों में यह सिद्ध भी किया है कि लोक-काव्य, लोक साहित्य हमेशा गतिशील रहा है और यह अधिकांश विद्वानों ने बहस में स्वीकार भी किया है। यह निर्णय गोष्ठी की एक उपलब्धि है। जिन विद्वानों ने भाग लेकर सहयोग दिया है और जिन्होंने अपने परिश्रम से इसे सफल बनाया है, उन सब के प्रति आभार प्रकट करता हूँ। खासतौर से मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन और उसके अधिकारियों के प्रति, जिन्होंने हर तरह से इस आयोजन को सफल बनाने में मदद की।

प्रस्तुति : संतोष पटैरया, डाक बँगला मार्ग,
महोबा, उ० प्र०

आयोजन के लिए विभिन्न समितियाँ

● **व्यवस्था-परामर्श-समिति**—सर्वश्री भैयालाल व्यास 'विन्ध्यकोकिल', श्रीनिवास शुक्ल (संयोजक), शिवनारायण खरे, कन्हैयालाल अग्रवाल, डॉ० गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैंया', डॉ० राधावल्लभ शर्मा, गौतम जी (एस० डी० एम०), गेंदालाल सोनाने (जनसम्पर्क अधिकारी), दंगल सिंह, वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक', सुरेन्द्र शर्मा, सुरेन्द्र तिवारी (आकाशवाणी), नारायणदास अग्रवाल (बु० खं० ट्रान्सपोर्ट), एस० के० शर्मा (प्राचार्य, पी० जी० बी० टी०), लव प्रताप सिंह।

● **स्वागत-समिति**—श्रीमती विद्यावती चतुर्वेदी, संसद् सदस्य (स्वागताध्यक्ष), सर्वश्री भैयालाल व्यास 'विन्ध्यकोकिल' (संयोजक), श्रीनिवास शुक्ल (भू० पू० अध्यक्ष, विन्ध्य हि० सा० सम्मेलन), स्वामी शंकर मिश्र (भू० पू० प्राचार्य), कन्हैयालाल अग्रवाल (भू० पू० आयुक्त), होशियार सिंह (जिलाध्यक्ष), राजेन्द्रप्रसाद (निदेशक, आकाशवाणी)।

● **सांस्कृतिक कार्यक्रम समिति**—सर्वश्री शिवनारायण खरे (संयोजक), इला शंकर गुहा, सुरेन्द्र तिवारी, रामकृष्ण चौरसिया, डॉ० हरि सिंह घोष, राजू राडिक्ल, प्रकाश पटैरया, अनिल शुक्ल, प्रकाश तिवारी।

● **मंच-सज्जा-समिति**—सर्वश्री प्रधानाचार्य, सरस्वती शिशु मंदिर (संयोजक), प्रकाश पटैरया, बाबू जी खरे, गोकुलप्रसाद गुप्त, मोहम्मद मास्टर साहब, जगदीश शुक्ल, प्रेम अग्रवाल राठवाले, नवलकिशोर मायूस।

● **आवास एवं भोजन-समिति**—सर्वश्री सुरेन्द्र शर्मा, मोहनलाल गुप्त, बाबू घोष, जगदीशप्रसाद शुक्ल, जितेन्द्र सिंह, नारायणदास पिपरैया, एस० एल० पी० श्रीवास्तव।

●

फागें सुनतन में सुख होई, देइ देवता मोई।
इन फागन पै फाग न आवै कइयक करी अनोई।
भौंर मखन की उगलन रै गओ कली-कली कें गोई।
बस भर ईसुर एक बची ना सब रस लओ निचोई।

●

रामायन तुलसी कही, तानसेन ज्यों राग।
सोई या कलिकाल में, कही ईसुरी फाग॥

●

इनकी बड़ी मोहनी भाखा, चलें अँगारूँ साका।
बाँके बोल लगत औरन खाँ गोली कैसो ठाँका।
बैठे रऔ सुनौ सब बेसुद कैसो खिंचो सनाका।
दूनर होत बचनियाँ फिर-फिर मइँ खाँ जात छमाका।
फागन खों बे धीरे पंडा 'ईसुर' आयँ पताका॥

●

अपने मन मानिक के लानें, सुगर जौहरी चानें।
नर तन रतन जतन सें राखो चड़ो प्रेम खर सानें।
बेंचो ओइ दुकानै जैहै जो गुन खाँ पैचानें।
'ईसुर' कैउ जगाँ फिर हारे कोउ धरत ना गानें॥

●

ईसुरी को समझने की जरूरत : एक भूमिका

● डॉ० नर्मदा प्रसाद गुप्त

☐ मोखां फाग सुना गओ जो पटका बारो रसिया

यह सच है और आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि अपने बाएँ कन्धे पर पटका डाले हुए रसिक ईसुरी खुद मेरे पास आये थे और मुझे फाग सुनाकर चले गये। अब भी जब मैं कभी एकान्त में ईसुरी के बारे में सोचता हूँ, तब ईसुरी अपनी फागें गुनगुनाते आ जाते हैं और मैं समझता हूँ कि ईसुरी को समझने के लिए यह पहली शर्त है। कम-से-कम उन दिमागों के लिए, जो लोककवि की फागों के संकलन में लगे है या उनके विश्लेषण में। मतलब यह है कि ईसुरी की फागों का सही मूल्यांकन तभी संभव है, जब उन्हें उस लोककवि के द्वारा ही सुना जाय अर्थात् संकलनकर्ता या आलोचक उन फागों और उनके रचयिता से पूरा-पूरा साक्षात्कार कर सके। दादरे की यह पंक्ति यही कहती हुई बार-बार मेरे दिमाग में गूंज रही है।

☐ मूल्यांकन के आधार

ईसुरी या उनके फागकाव्य के मूल्यांकन में एक संतुलित दृष्टि की जरूरत है। न तो उसे श्रेष्ठता के पैमाने से नापा जाना चाहिए, क्योंकि वह बहुचर्चित या लोकप्रिय है और न ही बहुत ही मामूली चलताऊ ढंग से, क्योंकि वह लोककवि या लोककाव्य है। लोककाव्य का अपना काव्यशास्त्र होता है और वह काव्यशास्त्र से भिन्न नहीं है, लेकिन लोककाव्य की विशिष्ट सरणि का है। इस कारण लोककाव्य की सारी समझ और सूझबूझ, उसकी सीमाएँ और शक्ति को ध्यान में रखना अपेक्षित है। लोकानुभूति और लोकाभिव्यक्ति की प्रकृति और उसके अनुरूप उनका वैशिष्ट्य ही परखाव का मूल उद्देश्य है। एक उदाहरण काफी है। कवि की कुछ फागों में एक ही भावांश दुहराया गया है, लेकिन दुहराना तो लोककाव्य की प्रकृति में है। दूसरे, व्यक्ति में एक ही मन:स्थिति दुबारा आती है और यदि वह सचेतन हुआ, तो पुनरावृत्ति नहीं होती। लोककवि इस सचेतनता से परे सहज होता है। जब जैसी मन में आयी, वैसी फाग फूट पड़ी। इसलिए यह पुनरावृत्ति या किसी पंक्ति अथवा किसी अर्द्धाली का

फिर आ जाना कोई दोष नहीं है। इसी तरह की और सूक्ष्मताएँ हैं, जो लोककाव्य में होती हैं, परिनिष्ठित काव्य में नहीं। मैं यहाँ सभी आधारों का खुलासा नहीं देना चाहता, सिर्फ संकेत ही पर्याप्त है।

☐ व्यक्ति की कविता या लोककाव्य ?

कुछ विद्वान्[1] आज भी इस पक्ष में हैं कि ईसुरी की फागें व्यक्तिरचित होने की वजह से लोककाव्य के अन्तर्गत नहीं अंटती, बावजूद इसके कि वे आज भी बुंदेली लोक में लोकगीतों की तरह गायी जाती हैं। पक्ष या विपक्ष में तर्कों की कतार खड़ी करने के पहले यह सोचना जरूरी है कि प्रचलित लोकगीत व्यक्तिरचित हैं या लोकरचित। मुझे इस तथ्य के प्रमाण मिले हैं कि अनेक लोकगीत व्यक्तिरचित हैं, विस्तृत जानकारी के लिए 'कलावार्ता' के अंक ६ में प्रकाशित मेरा लेख—'लोक साहित्य का मुश्किलें' देखा जा सकता है। कवि जगन्नाथ की बारामासी लोकगीत मानी गयी है (हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, १६वाँ भाग, बुंदेली) और प्रेमदास की रचना 'गेंदलीला' आज भी लोकमुख में है (मामुलिया, अंक ३)। दूसरी बात यह है कि किसी भी गीत की रचना समूह या लोक के द्वारा सम्भव नहीं। इस आधार पर लोकगीत या लोककाव्य वह है, जो अपनी लोकानुभूति और लोकाभिव्यक्ति की सामर्थ्य के कारण लोकप्रिय हो और लोकमुख में जीवित हो, भले ही वह ज्ञात या अज्ञात कवि की रचना हो। ईसुरी की फागों में ऐसी क्षमता या शक्ति है कि वे लोकप्रिय होकर, लोक द्वारा अपनायी जाकर लोकमुख में अमर हो गयी।

इस प्रामाणिक गवाही से सिद्ध है कि ईसुरी की फागें लोककाव्य है। यदि नहीं हैं, तो विद्वान् लोककाव्य और फागों के बीच अन्तर को स्पष्ट करें। सिर्फ रचयिता के अज्ञात रहने से लोककाव्य[2] और ज्ञात होने से व्यक्ति की कविता मान लेना अनुचित है अथवा ज्ञात कवि के गीत में थोड़ा या बहुत रूपान्तरण होने से ही वह लोकरचित कहलाने लगे, तो सिर्फ इसी पर निर्भर लोक-काव्य की परिभाषा बिल्कुल थोथी होगी। ईसुरी का फागकाव्य लोककाव्य की सभी कसौटियों पर खरा उतरता है, इसलिए वह निश्चित ही लोककाव्य है।

☐ पाठ-निर्धारण और संकलन

दस-पन्द्रह वर्ष पहले मैंने ईसुरी की कुछ फागों का पाठ निर्धारित किया था, हस्तलिखित और प्रकाशित पाठों के आधार पर। साथ ही, पाठ-निर्धारण की समस्या पर विचार भी किया था।[3] पाठ-निर्धारण की एक बानगी भी प्रकाशित हो चुकी है।[4] आज तक कई संकलन प्रकाशित हो चुके हैं, पर

तटस्थ वैज्ञानिक पद्धति से किसी में भी पाठ-निर्धारण नहीं किया गया। इतना अवश्य है कि संकलनकर्ताओं ने अपनी सुबुद्धि से ही निर्णय लेकर पाठ का सुधार किया है, किसी पुराने पाठ को आधारभूत पाठ बनाकर शेष पाठों की उससे तुलना करके नहीं। हस्तलिखित ग्रन्थों का उपयोग नहीं के बराबर। मतलब यह है कि पाठ-निर्धारण की दृष्टि का हर संकलन में अभाव है।

इस सम्बन्ध में बहुत ध्यान देने लायक दूसरी बात यह है कि ईसुरी के नाम पर अन्य फागकारों ने भी फागें रची हैं[५] अथवा संकलनों में ईसुरी की छाप से गंगाधर व्यास और ख्याली कवि की फागें संगृहीत की गयी हैं। लोक-गायकों ने अर्थ-लोभ से बहुत पहले से ही अनेक फागों में ईसुरी की छाप लगा कर महाराज वीरसिंह देव जू, पं० गौरी शंकर द्विवेदी आदि का कोष भर दिया था, जिससे उधार लेकर संकलनकर्ता भी चूक गये। असल में, ईसुरी में जिस सहजता और वक्रता की विशिष्टता है, उसे भी अपनी नजर में रखने की आवश्यकता है। जरा-सा ध्यान हटा कि चूके। अधिक-से-अधिक फागें प्रकाशित करने की होड़ भी धोखा देता है।

संक्षेप में, ईसुरी की फागों के एक प्रामाणिक संकलन की आवश्यकता है और इस कमी को बुन्देलखण्ड तथा बाहर के ईसुरी प्रेमी विद्वानों ने महसूस किया है।

☐ व्यक्तित्व की तलाश

अभी तक ईसुरी के व्यक्तित्व पर जितना लिखा गया है, वह एकांगी है, क्योंकि उसमें रचयिता के उस आंतरिक व्यक्तित्व की खोज नहीं की गयी, जो उनके फाग काव्य से सम्बद्ध रहा है। साथ ही, फागों से भी उनके व्यक्तित्व की झलक मिलती है और उस झलक से उनके व्यक्तित्व का कितना मेल है, यह भी खोज का विषय है। उदाहरण के लिए यहाँ कुछ संकेत देना पर्याप्त है। एक फाग में खुद के पीटे जाने के वर्णन से स्पष्ट है कि ईसुरी स्पष्ट, निश्छल और सहज व्यक्ति थे। दुराव-छिपाव और बनावट से दूर। इसीलिए उनकी फागों में भी सपाटबयानी, सहजता और यथावत् चित्रण की प्रवृत्ति दिखाई देती है। गायक धीरे पण्डा एवं सुंदरिया—गंगिया नर्तकियों के प्रसंगों से प्रकट है कि ईसुरी को अपनी फागें प्रचलन में लाने की ललक थी, जैसी हर फागकार में स्वभावतः होती है। उसी के कारण ईसुरी की फागें इतनी जल्दी लोकप्रिय हो सकीं।

इस लोककवि के सम्बन्ध में दो बातें बहुत महत्त्व की हैं। एक तो यह कि वह सामान्य दर्जे का संघर्षशील आदमी था, इस कारण उसे गांव के लोक का

पूरा-पूरा पता था। दूसरे, उसने समाज के निषेधों की कोई परवाह नहीं की। किसी बेड़िनी से प्रेम (इश्क) और रिश्वत (लाँच) तथा अन्य छोटे-बड़े प्रसंग उसके संघर्षों के सच्चे गवाह हैं, लेकिन इनसे यह अर्थ लगाना कि ईसुरी छोटे दर्जे के या गरीब लोगों के लिए लड़ते रहे, केवल दिमागी कसरत होगी। वास्तव में ईसुरी का संघर्ष खुद का संघर्ष था और फागों में उसी की झलक मिलती है। ईसुरी बौद्धिक व्यक्ति नहीं थे और न भक्त या दार्शनिक, वरन् गाँव के लोक भावों को महसूस करने वाले भावुक थे। इसलिए फागों में भावुकता अधिक है, वैचारिकता कम और जहाँ भी वैचारिकता है, वह भी उतनी ही जितनी कि गाँव के आम आदमी में होती है। कुल मिलाकर ईसुरी का व्यक्तित्व गाँव के उस आदमी का प्रतिनिधित्व करता है, जो कि भावुक है और रसिक भी, भक्त भी है और दार्शनिक तथा आदर्शवादी भी है और यथार्थ के प्रति संघर्षशील भी। सब कुछ उतनी ही सीमा में। देशव्यापी चेतना से कटा हुआ, किन्तु गाँव के प्रेम से जुड़ा हुआ। शायद इसीलिए उनमें १८५७ की आजादी की पहली लड़ाई[६] या व्यापक राष्ट्रीय चेतना-सम्बन्धी फागें विरल हैं, और गंगाजी की अपेक्षा बगौरा से अतीव प्रेम की वस्तु उनमें सुलभ है। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि ईसुरी न तो हिमालय थे और न हिमालय बनने की कोशिश उन्होंने की, वे तो गाँव के किसी टीले से फूटने वाले झरने थे, जो आखिरी दम तक फागों की कलकल से अपने गाँव की तहरीर सुनाता रहा।

☐ रजउ का विवाद

ईसुरी की काव्यप्रेरणा, 'रजउ' पर प्रसारित मेरी एक वार्ता[७] ने इस जनपद के विद्वानों में एक चर्चा खड़ी कर दी है और उससे एक विवाद-सा उठा है कि 'रजउ' कौन थी—वास्तविक या काल्पनिक। मैं यहाँ पक्ष या विपक्ष में कोई तर्क नहीं देना चाहता, लेकिन एक संकेत देना उचित समझता हूँ। यह सही है कि गाँव के हर फगवारे (फागकार) की तरह ईसुरी रंगीन तबीयत के थे और फाग की प्रकृति के अनुरूप उनका मन शृङ्गार में रमा था। गाँवों में रहने वाले हर तबके के लोग इसे सहज प्रकृति ही मानेंगे। यहाँ तक तो ईसुरी का कोई दोष नहीं है। यदि रजउ को वास्तविक ही मान लिया जाय, तो क्या उनके कवि-व्यक्तित्व पर कोई कालिख लग जाती है या फिर उनकी फागों का काव्यत्व बढ़ जाता है। इसी तरह रजउ को काल्पनिक मानने से क्या फागों की वास्तविकता घट जाती है या उनका सौन्दर्य अधिक उजागर हो जाता है। आशय यह है कि काव्य की परख में वैयक्तिक राग-विरागों को शामिल नहीं किया जाना

चाहिए। रजउ के संबंध में अपना निष्कर्ष फिर दुहराने में कोई हर्ज नहीं है कि ईसुरी की रजउ वास्तविक होते हुए भी काल्पनिक है और काल्पनिक होते हुए भी वास्तविक तथा वास्तविकता और काल्पनिकता की यह समरसता ही ईसुरी की शक्ति है।

☐ कामातुर प्राणी की पुकार ?

पं० गौरीशंकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'ईसुरी-प्रकाश' की स्थापना में प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० रामविलास शर्मा ने लिखा है कि "वह (ईसुरी) प्रेम से अधिक मदन-महीप के चारण हैं।...उनकी कविता कामातुर प्राणी की विह्वल पुकार है, उस पुकार की सुखद पूर्ति उसमें कम दिखाई देती है।" इस निर्णय से सहमत होना कठिन है, लेकिन बुंदेली के कुछ विद्वान् बिना विचारे इसी मान्यता का अनुसरण कर रहे हैं। इसमें डॉ० शर्मा का कोई दोष नहीं है, क्योंकि वे न तो बुंदेली फागकाव्य-परम्परा से परिचित हैं और न फगवारों एवं फागों की प्रकृति से। यदि ईसुरी के फागकाव्य पर किसी सही निर्णय पर पहुँचना है, तो एक तरफ बुंदेली फागों और फागकारों की विशिष्ट प्रवृत्तियों को केन्द्र में रखना होगा तथा दूसरी तरफ ईसुरी की सभी प्रकाशित-अप्रकाशित फागों का अध्ययन करना होगा।

दूसरी बात यह है कि ईसुरी की काव्यवस्तु कामपरक अनुभूति तक सीमित नहीं है। उनका काव्य देश विस्तृत है। प्रेम, शृंगार, भक्ति, दर्शन, प्रकृति आदि के लोकसामान्य अनुभव उनके काव्य को विविधता प्रदान करते हैं। यह अवश्य है कि उनकी फागों में शृंगार की ही प्रधानता है, लेकिन उसमें जल भरती कमर की लचकन से लेकर रजउ के घर की देरी (देहरी) बनने की अनन्त पीड़ा तक की भावुकता का साम्राज्य है।

☐ फगवारापन या रीतिकालीन छाप ?

कई विद्वान् सोचते हैं कि ईसुरी के फागकाव्य पर रीतिकालीन छाप है। रीतिकालीन काव्य में शृङ्गारिकता और अलंकृति की प्रधानता रही है और यह भी सही है कि बुंदेली फागकाव्य पर रीतिकालीन प्रवृत्ति का असर आया, क्योंकि ईसुरी के बाद अनेक फागकारों ने नायिकाभेद और चमत्कार प्रधान शैली में फागों की रचना की। लेकिन ईसुरीपूर्व और ईसुरी की फागों में इस शैली का सर्वथा अभाव है। ईसुरी में जो शृंगारिकता और रूप-चित्रण-शैली दिखाई पड़ती है, वह फगवारे और फड़ की प्रकृत मानसिकता का परिणाम है। फाग गीत होली और वसंत के गीत हैं। उनमें वसंती की सौन्दर्य की मादकता और फाग या होली की रंगीनी रोमांसिकता पहले से थी। गाँव के सहज स्वच्छंद वातावरण ने उसे और उन्मुक्त बना दिया था। उस समय फगवारों के मन रसिक भौंरों से कम नहीं थे। विनोद करना और फब्तियाँ कसना भी गर्हित नहीं माना जाता था। अतएव ऐसी मनःस्थिति में कोई भी फागकार शृङ्गारपरक फागें ही रच सकता है। फागों की प्रतियोगिता या फड़बाजी में रंगत की फागों का ही महत्त्व रहता था और शृंगारी वस्तु को विविध रंगों में बाँटने से ही होड़ लग पाती थी। उदाहरण के लिए रूप-सौन्दर्य के चित्रण में नेत्र, केश, पटियाँ, कपोल आदि अंगों, प्रसाधन में सिन्दूर, बिन्दी, काजल आदि तथा वस्त्राभरण में लहँगा, ओढ़नी, अँगिया, नथ, पुंगरिया, पैजना आदि रंगों की फागें रची जाने लगीं। इसी के फलस्वरूप ईसुरी को भी नेत्रादि विषयक फागें लिखनी पड़ीं। इससे जाहिर है कि ईसुरी ने रीतिकाव्य से प्रेरणा नहीं ली, वरन् उनकी फागें फागगीतों और उनकी फड़बाजी के अनुरूप ही ढली हैं। वे रीतिकाव्य के बजाय लोकजीवन के काव्य से जुड़े और एकात्म हुए।

☐ सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना का सवाल

लोकप्रियता की इस ऊँचाई पर आने से ईसुरी के फागकाव्य पर कुछ प्रश्न-चिह्न भी लगने लगे हैं। ईसुरी में कितनी सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना है, इस नापजोख के पहले यह जानना आवश्यक है कि क्या लोककाव्य में इस व्यापक चेतना के स्वर मिलते हैं। क्या उस समय ईसुरी इस स्वर-धारा में जुड़ने के लिए सक्षम थे या फिर कौन-सी परिस्थितियाँ लोककवि को विलग करने में जिम्मेदार हैं ? इस जाँच-पड़ताल के बिना कवि पर कोई भी आक्षेप लगाना उचित नहीं है।

बुंदेलखण्ड में आजादी की पहली लड़ाई का आरम्भ १८४० ई० से होता है और जैतपुर के राजा पारीछत का १८४० ई० में अंग्रेजों से युद्ध तथा सागर के कुछ भागों में १८४२ ई० का बुंदेला विद्रोह १८५७ ई० के स्वातंत्र्य संघर्ष की महत्त्वपूर्ण भूमिका मानी जानी चाहिए। मैंने यह भी सिद्ध किया है कि १८४० ई० से १८५७ ई० तक लोककवियों या हरबोलों ने वीररसपरक कथाएँ रचकर और गाकर इस लड़ाई के लिए जनजागरण किया था (१३ मई, '८४ के साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित मेरा लेख—'आजादी की पहली लड़ाई और हरबोलों की कविताई')। मतलब यह है कि ईसुरी के जन्मकाल (१८४१ ई०) और बाल्यकाल में बुंदेली लोककाव्य में राष्ट्रीय स्वरों के गुंजन का समारम्भ हो गया था। १८५७ ई० में ईसुरी १६ वर्ष के थे और १८ वर्ष की आयु में वे जीविका की तलाश में धौर्रा आये। बचपन में माता-पिता का निधन, विषम

परिस्थिति के कारण लुहरगाँव में मामा के घर रहना, वहीं विवाह और मामा के पुत्र होने पर जीविका के लिए धौरा आना; कामदारी की नौकरी — ये थीं युवा ईसुरी की परिस्थितियाँ, जो उसके मन को दबाये रहीं। जब वह फागोत्सव में गीतों से प्रेरित हुआ और उसने पुराने फाग और राई गीत गाये या लिखे, तब उसी परम्परा में ढल गया। निश्चित है कि उसकी मनोदशा १८५७ ई० की लड़ाई के चित्रण की बजाय फागों के शृङ्गार को अपनाने की तरफ उन्मुख हुई। कुछ सज्जनों ने एक फाग खोजकर ईसुरी की वकालत की है (जो कोउ भरत भूम में सोबै, तन तरवारन खोबै),[८] लेकिन उस फाग में खोबै, ढोबै और होबै की तुक में लेबै से शंका होने लगती है। सम्भव है कि ईसुरी ने इस तरह की फागें रची हों और उपलब्ध न हो सकी हों, पर अभी तक उपलब्ध फागों के आधार पर उनकी चेतना गाँव के लोकजीवन तक सीमित रही है। उनकी एक प्रसिद्ध फाग है, जिसमें 'गंगा जू लौं मरें ईसुरी दाग बगौरे दीजो' कहकर कवि बगौरा गाँव की धरती को गंगा से भी पवित्र मानता है। वह गाँव जिससे उसकी चेतना लिपटी हुई है।

सामाजिक चेतना के संदर्भ में यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि ईसुरी 'रजउ' की फागों के बाद ही गाँव के समाज के प्रति कुछ उत्सुक हुए हैं। गाँव की प्रकृति, पनघट, उत्सव, वस्त्राभरण, प्रसाधन आदि के वर्णन में उनकी दृष्टि सौन्दर्यमुखी रही है और वे अधिकतर शृङ्गारपरक फाग काव्य के अंग बनकर आये हैं। लेकिन जहाँ गाँव की कुछ समस्याओं का चित्रण है, वहाँ ईसुरी की यथार्थपरक तटस्थता का पता चलता है। न तो जातिगत भेदभाव और न धार्मिक पक्षपात। कोई वादी दृष्टि नहीं। एक उदाहरण प्रस्तुत है —

इन पै लगे कुलरियाँ घालन, मउआ मानस पालन।
इनें काटबो न चइयत तो काट देत जे कालन॥
ऐसे रूख भूँख के लानें लगवा दये नंदलालन।
जे कर देत नई सी ईसुर मरी मराई खालन॥

वृक्ष काटना, डाका पड़ना, अकाल में किसान की स्थिति, दाँरिया के किसानों को जमीन, लाँच आदि की समस्याओं पर कुछ प्राप्त फागों से ईसुरी की समाज के प्रति सचेतनता दिखाई पड़ती है। भक्तिपरक और दर्शनपरक फागों में गाँव की भक्ति और दर्शन प्रतिबिम्बित हुए हैं। सच यह है कि गाँव में परिवार को अधिक महत्व दिया जाता रहा है, इसलिये ईसुरी ने परिवार की समस्याओं को भी कई फागों में छुआ है। परनारी से प्रेम, सौतिया डाह, बच्चों की अधिकता, काले-गोरे रंग का भेद, पति का दूध पीता बच्चा होना, परपति से प्रेम आदि छोटी-छोटी उलझनों या समस्याओं से गाँव के समाज की एक ऐसी तस्वीर उभरती है, जो उस समय का प्रगतिशील कवि ही लिख सकता था। कहा जा सकता है कि ईसुरी की सामाजिक चेतना गाँव की आन्तरिकता से ज्यादा बँधी हुई है। उसमें भीतरी संघर्ष ज्यादा है, बाहरी संघर्ष कम।

□ शिल्प की सुघराई

लोककाव्य का शिल्प अकृत्रिम और अनगढ़ होता है, इसलिये उसमें परिष्कृत अलंकरण की तलाश व्यर्थ है। कुछ विद्वानों ने उनकी फागों में रस के अवयवों, नायिकाभेद और अलंकारों के उदाहरण बीन-बीन कर उनके शिल्प-सौन्दर्य को उजागर किया है। असल में शास्त्रीय दृष्टि का एक साँचा ऐसा ढल गया है कि कवि या लोककवि का काव्य-शिल्प उसी से परखा जाने लगा है। लोककाव्य के शिल्प की इस परख से एक बड़ा खतरा पैदा हो गया है और वह है उसके शिल्प की अवमानना। कुछ विद्वान् तो नकारने की सीमा तक पहुँच जाते हैं। ईसुरी की फागों के शिल्प की जाँच के लिए शास्त्रीय प्रतिमान ओछे पड़ते हैं, उसके लिये लोक प्रतिमान ही होने चाहिये, जो लोककाव्य से ही निर्धारित किये जा सकते हैं। दूसरे, फाग और फड़बाजी के स्वरूप और प्रकृति को भी ध्यान में रखना जरूरी है। इस सतर्कता से ही फागों की कलात्मकता सही रूप में आँकी जा सकती है। ईसुरी स्वयं कहते हैं—'अपने मन मानिक के लानें, सुघर जौहरी चानें'।

यहाँ उदाहरण के रूप में एक फाग रखी जा सकती है—

करजै कोउ टोटका टोंना, ई लड़आ से मौं ना।
कड़वू करे नजर बरका कें दैवू करे डिठौना।
घर उर वार पुरा पाले में तुम हो हाल खिलौना।
'ईसुर' इनें खुसी विध राखै जुग-जुग जियै निरौना॥

इस फाग के पाठ में कृष्णानन्द गुप्त[९] ने 'दैवू करे' की जगह 'दैकें डीठ' रखा है, जबकि 'कड़वू करे' के मेल में 'दैवू करे' उचित है। साथ ही, दैवू करे से एक अलग व्यंजना होती है, जबकि डीठ केवल भरती का लगता है। दैवू करे से नायिका का नजर बरकाने के अलावा दूसरा उपचार भी हो जाता है। गुप्त जी ने इस फाग में एक पंक्ति—'जैसी रूप आगरी तुम हो, ऐसी मुश्किल

होना। जोड़ी है, जो कि शेष चार पंक्तियों की तरह गढ़ी हुई (ववाइण्ड) नहीं लगती। इसमें 'होना' शब्द तो खटकता ही है। बहरहाल यह ईसुरी की नहीं लगती। घनश्याम कश्यप[10] का पाठ बिल्कुल गुप्त जी जैसा है। उन्होंने सिर्फ 'विध' और 'जिये' के स्थान पर 'विधि' और 'जिएं' कर दिये हैं, जबकि बुन्देली में 'विध' और 'जियै' होना चाहिए। पं० गौरी शंकर द्विवेदी[11] ने पहली पंक्ति में 'करजै कोउ' की बजाय 'कोऊ करत' चुना है, जो 'कड़बू' और 'दैबू' क्रियाओं के अनुरूप नहीं है। दूसरी ओर तीसरी पंक्ति का क्रम उलट गया है।

उपर्युक्त चौकड़िया में ईसुरी ने लोक नायिका के सौन्दर्य-चित्रण के लिए दो उपमानों का उपयोग किया है—लड़ुआ और खिलौना। लड़ुआ ताजा लोक-उपमान है, जो पुराने शुद्ध घी के मोतीचूर लड्डू के रूप में हर गाँव में प्रिय रहा है। बुन्देलखण्डी पंगत (दावत) का राजा लड़ुआ ही होता था और उसके बिना नाना प्रकार का भोजन पूर्णता नहीं पाता था। नायिका का मुख-मण्डल लड़ुआ की तरह गोल, गौर वर्ण का, मधुर और स्वादिष्ट है। अकेले एक उपमान से गाँव की नवयुवती के मुख-सौन्दर्य में पूर्णता आ गयी है। ऐसा लगता है कि दृश्य, स्पर्श्य, घ्राण आदि ऐन्द्रिक संवेदनाओं को एक साथ दावत दी गयी हो। खिलौना भी सुन्दरता और रंजन के लिए लोकप्रिय है। दोनों से एक ऐसे सौन्दर्य का रूपचित्र खड़ा होता है, जो उपभोग मूलक होता हुआ भी सदा ताजा रहता है। कड़बू करे···वाली पंक्ति बड़ी सूक्ष्म व्यंजना देती है। कवि कहता है कि इतने सौन्दर्य को देखकर कोई टोटका-टोना (गाँव की लोकसंस्कृति में अधिक प्रचलित) कर जायगा, इसलिए नजर बचा कर और डिठौना देकर बाहर निकलना जरूरी है। सौन्दर्य को सुरक्षित रखने की सहज उक्ति में बाँकपन आ गया है, क्योंकि कवि डिठौना देने के लिए उसे सरलता से पुट्या लेता है (राजी कर लेता है) और डिठौना से सौन्दर्य में जो निखार आयेगा, उसे देखने की ललक को अभिव्यक्त कर देता है। साथ ही, सौन्दर्य के सृष्टिकर्ता से विनय करता है कि यह दर्शनीय नमूना युगों-युगों तक ऐसा ही बना रहे।

इस संक्षिप्त व्याख्या के साथ यदि गहराई से देखा जाय, तो इस मुक्तक की पंक्तियों में सक्रिय नाटकीयता के साथ भाव का क्रमिक विस्तार हुआ है। पहली में सुरक्षा के प्रति आशंका उत्पन्न करते हुए, दूसरी में सौन्दर्य प्रसाधन की ओर प्रेरित करना, तीसरी में सौन्दर्य की प्रशंसा से आश्वस्त करना और अंतिम में प्रभु से विनय में एक गहरी सहानुभूति से निकटता प्राप्त करने की भावना, सब-कुछ संवाद की शैली में गतिशील हो गया है। शब्दों का चयन

और गठन, मिठास और सरलता, चित्रमयता और व्यंजकता—सब सहजता की घरिया में एकमिल हो गया है।

☐ गायकी का नया स्वर

अपने लेख—'बुन्देली फाग का उद्‌भव और विकास' में मैंने यह सिद्ध किया है कि ईसुरी की 'चौकड़िया' फाग पुरानी 'लाल' फाग से निःसृत हुई है।[12] 'लाल' फाग की गायकी बुन्देलखण्ड में सर्वत्र प्रचलित थी। उसके हर चरण में 'लाल' लगाकर नयी लोकधुन का अवतरण किया गया था। जब इस फाग के अन्तरा का तुकान्त नहीं मिलता, तो लाल तुकान्त का भी काम करता था। ईसुरी 'लाल' फाग से परिचित थे और संभव है कि उन्होंने उसके अनुसरण में कुछ फागें भी रची हों, पर उपलब्ध न होने के कारण कुछ भी कहना उचित नहीं है। इतना अवश्य है कि 'लाल' फाग की गायकी और २८ मात्राओं के अन्तरा से प्रेरणा लेकर उन्होंने 'चौकड़िया' फाग का आविष्कार किया, और फाग गायकी को एक नया स्वर प्रदान किया।

ईसुरी फागगायक भी थे, जिसका पता चन्दपुरा के ठाकुर श्री गम्भीर सिंह को लिखे काव्यमय पत्र की एक पंक्ति से लगता है—'दरवाजे पै बना ईसुरी नई-नई फागें गावें। वस्तुतः फागगायकी से पूरा तादात्म्य स्थापित कर ही वे नयी तरह की फागों की रचना कर सके। चौकड़िया की गायकी द्विज धीरे पण्डा के गायन और रँगरेजिन के नृत्य के मेल से इतनी प्रसिद्ध हुई कि उसका प्रचलन आज तक अक्षुण्ण है।

☐ फड़बाजी का उत्कर्ष

फाग के फड़ पुराने हैं और ईसुरी ने भी उनसे प्रेरणा लेकर रंगत की फागें लिखी थीं। नेत्र, केश, मुख आदि अंगों और वस्त्राभरण सम्बन्धी फागों से इसकी पुष्टि होती है। फागों के हस्तलिखित संकलनों में भी हर रंग में ईसुरी की फाग सबसे पहले दी गयी है। लेकिन कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिल सका, जिससे सिद्ध हो कि ईसुरी फागदल के आचार्य कवि के रूप में या फड़ में भाग लेने जाते थे। पुराने फागकारों से जुड़े कुछ प्रसंगों में उनके फड़ में सम्मिलित होने की चर्चा सुनने को मिलती है, पर अभी तक कोई प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। आश्चर्य तो यह है कि उनकी किसी भी फाग में फड़ की प्रतिद्वन्द्विता का प्रसंग नहीं है,[13] फिर भी इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ईसुरी की 'चौकड़िया' ने फड़ को गति प्रदान की है और फड़बाजी को उत्कर्ष।

ईसुरी के पहले फाग की फड़बाजी मन्थर थी, क्योंकि फाग अधिकतर सीमित वस्तु, निश्चित कालावधि और सहज लोकगीतात्मकता के कारण अपने में सिमटी हुई थी। ईसुरी ने उसे इस स्थिति से उबार कर व्यापक वस्तु और नयी चेतना दी, जिससे एक तरफ उसकी समृद्धि का द्वार खुल गया और दूसरी तरफ फड़बाजी में एक नया उत्साह जगा। फाग के चौकड़िया रूप ने भी फड़ को ख्यालों और सैरों के फड़ों से अधिक प्रभावी बनाने का कार्य किया। इस दृष्टि से फाग की फड़बाजी मे ईसुरी का योग महत्त्वपूर्ण है।

☐ ईसुरी की प्रासंगिकता आज के संदर्भों में

बीसवीं शती के इस बहुमुखी प्रगति के युग में जब विज्ञान और भौतिकता अपने-पूरे जोर पर हो और कविता बौद्धिकता के सहारे नयी-नयी पगडंडियाँ खोज रही हो, तब ईसुरी की पुरानी भावुकता भरी चौकड़ियों का क्या महत्त्व हो सकता है।[१४] लेकिन बुंदेलखण्ड के गाँव-गाँव में ईसुरी की फागों की लोकप्रियता से ऐसा लगता है कि उनमें कुछ-न-कुछ ऐसा है, जो आज भी उन्हें अमरत्व दे रहा है। आखिर वह कुछ क्या है, इसको समझने से ही वर्तमान में ईसुरी की जरूरत या उनकी फागों की सार्थकता पहचानी जा सकती है।

बुंदेली की मिठास, भाषा की सजावट और लोक उपमानों का प्रयोग तो सभी फागकारों में मिलता है, लेकिन ईसुरी की सहजता दूसरों में दुर्लभ है। इसी विशेषता के कारण उनकी फागें लोकप्रियता में सबसे आगे हैं। दूसरी विशेषता है फागों की व्यंजना शक्ति। सीधी-सरल पंक्ति में भी किसी कल्पना के चमत्कार और शोभावर्द्धक अलंकार के बिना जो सूक्ष्म व्यञ्जना लिपटी रहती है, वह फागों को आज भी प्रभावी बनाने में सक्षम है। 'ऐंगर बैठ लेव कछू कानें काम जनम भर रानें' का 'कछु' सब-कुछ चुपके से कह देता है, जो सीधे अन्दर तक असर करता है। हर फाग रस की गेंदिया (छोटी गेंद) है, बुंदेलखण्ड में प्रचलित रस-गेंदिया, 'बना रस गेंदिया न घालो देखो लाग जैहै जू।' (रस की गेंद न घालो, मुझे लग जायगी)।[१५] ऐसी रसगेंदिया, जो ऊपर की चुनरी ही नहीं भिगोती, अन्दर का सब-कुछ भिगो देती है। बिहारी के दोहे तो नावक के तीर थे, जो गम्भीर घाव करते थे, पर ईसुरी की फागें रस को गेंदें हैं,[१६] जो तन-मन भिगो देती हैं।

फागों की ऐसी रसवत्ता के साथ उनमें एक खास गुण यह है कि वे गाँव की लोकसंस्कृति से ऐसे जुड़ी हुई हैं कि हर फाग से गाँव का कोई-न-कोई रंग टपकता है और उस रंग में डूब कर हर आदमी उसे अपनी महसूस करता है।

ईसुरी की फागों से सभी का इतना तादात्म्य उन्हें आज भी जीवित किये हुए है।

संक्षेप में, ईसुरी की फागों में सहजता, व्यञ्जकता, रसवत्ता और लोक चेतनता का एक ऐसा यौगिक बन गया है, जो उनकी जीवनीशक्ति को बराबर बनाये रखता है। साथ ही, उनमें इतनी प्रेषणीयता है कि गाँव या नगर का मन अपनी सारी भौतिकता और बौद्धिकता के बावजूद उनसे तादात्म्य कर रसभोग करने में नहीं चूकता।

☐ लोकसाहित्य का क्रान्तिकारी व्यक्तित्व

इन सब बिन्दुओं के मेल से ईसुरी के व्यक्तित्व की क्रांतिकारी रेखा अपने आप उभर कर दीप्त हो उठती है और आज तक के लोकसाहित्य पर एक गहरी छाप छोड़ जाती है। ईसुरी की फागें लोककवि जगनिक के आल्हा के बाद लोकसाहित्य में एक नये युग की स्थापना करती हैं और आज की विषम परिस्थितियों में लोकसाहित्य का डंका बजाती हैं। इतना ही नहीं, ईसुरी ने लोकसाहित्य को ठीक से समझने के लिये नयी अंतर्दृष्टि दी है। लोकसाहित्य की रचना व्यक्ति ही करता है और वह हर युग में लिखा जाता है, लेकिन रचनाकार में वह लोकानुभूति और लोकाभिव्यक्ति होनी चाहिये, जो लोक की बन कर लोक से इतनी घुलमिल जाय कि लोक उसे ग्रहण कर अपनी मान ले।[१७] इसी सत्य को प्रतिष्ठित कर ईसुरी ने लोकसाहित्य को एक नया मूल्य और नया प्रतिमान दिया है। इन प्रस्थापनाओं से स्पष्ट है कि लोकसाहित्य में यदि कोई क्रान्तिकारी व्यक्तित्व हुआ है, तो पहला जगनिक और दूसरा ईसुरी। इसलिये लोकसाहित्य की सही समझ के लिये ईसुरी को समझने की जरूरत है।

☐ समझने के बाद...?

फागों के ऐसे व्यक्तित्व को समझने के बाद लोकसाहित्य और साहित्य के इतिहास पर विचार करना आवश्यक है। एक रचनाकार या कवि उतने महत्व का नहीं है, जितनी कि साहित्य की ऐतिहासिक चेतना। ईसुरी जैसे कवि में एक ऐतिहासिक चेतना थी, इसीलिए वह लोक का चित्र खड़ा कर सका और लोकसाहित्य या साहित्य के इतिहास को आगे बढ़ा सका। हर लोककवि लोक से तादात्म्य कर इतिहास को भोगता है, उसे गति देता है, फिर इतिहास में उसकी उपेक्षा क्यों? यदि लोककाव्य की निरन्तर गतिमान धारा को साहित्य के इतिहास में उचित स्थान नहीं मिलता, तो क्या यह माना जा सकता है कि

वह इतिहास लोक से सरोकार रखता है। बुंदेलखण्ड के २२ जिलों का बुंदेली भाषी प्रदेश (उसके बाहर भी) जिस ईसुरी की फागें अब तक गाता है, इतिहास उसकी परवाह तक न करे और आज का रचनाकार जो यह दावा करता है कि उसकी कविता के दो-चार पाठक ही मिल जायँ तो उसकी सार्थकता है, उसे इतिहास अपने कन्धों पर उठाये फिरे, यह क्या सही दिशा है। अतएव एक तरफ ईसुरी को इतिहास में उचित स्थान मिलना चाहिये, तो दूसरी ओर सभी लोककवियों या लोकसाहित्य की गतिशील धारा को।

ईसुरी लोकजीवन का कवि है, लोकजीवन के प्रवाह का कवि है और उस प्रवाह की लय और गति का कवि है। उसने गाँव के जीवन को जैसा जिया, वैसा ही उतार दिया बिना किसी रंग-रोगन के। और उसकी यह तस्वीर उस समय के गाँव की है, लेकिन आज भी गाँव की आत्मा छूती है तथा उसका कविकर्म उस समय की जरूरत का है, लेकिन आज की जरूरत महसूस कराता है। कहता है कि खुद को मत देखो, लोक को देखो, उससे बात करो और उसे काव्य में उतारो, ताकि लोक और काव्य एक हो जायँ। इस तरह ईसुरी लोक और साहित्य के जुड़ाव का कवि है और यह जुड़ाव आज पारे की तरह बिखर गया है। इस वजह से ईसुरी के जुड़ाव की पूरी प्रक्रिया समझने की खासी जरूरत है, दोनों के बीच की दरार पाटने के लिये। शायद यह समझने के बाद कम-से-कम दो-तीन दशकों से चली आती आज की कविता ने लोक-शब्दों, लोक उपमानों, लोकशैली को अपनाया है और यही समझने के बाद···?

संदर्भ-संकेत :

१. छतरपुर में 'बुंदेली संवाद' की पहली गोष्ठी में कुछ विद्वानों के विचार से ईसुरी की फागें व्यक्तिरचित होने से लोककाव्य कहलाने की अधिकारिणी नहीं हैं। दूसरी गोष्ठी में भी कुछ विद्वानों ने इसे लोककाव्य की बहस में स्थान दिया।

२. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षोडश भाग, सं० २०१७, प्रस्तावना, पृ० ८७-८८।

३. बुंदेलीखण्ड का मध्ययुगीन काव्य : एक ऐतिहासिक अनुशीलन, नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृ० २२६-२७।

४. मामुलिया, अंक १, पृ० ५५।

५. ईसुरी के शिष्य मूलचन्द (जन्म सं० १९४१) ने स्वयं स्वीकारा है कि उन्होंने ईसुरी और ख्याली की छाप डालकर कई फागें बनाई थीं।

६. 'बुंदेली संवाद' की प्रथम गोष्ठी में प्रो० प्रमोद पाण्डेय द्वारा उठाया प्रश्न कि ईसुरी में १८५७ ई० की लड़ाई से सम्बन्धित फागें क्यों नहीं मिलतीं।

७. ईसुरी की काव्यप्रेरणा 'रजउ', छतरपुर आकाशवाणी से प्रसारित।

८. छतरपुर के कुँवर रणधीर सिंह द्वारा सुनायी कुँवर कृष्णप्रताप सिंह से प्राप्त फाग है—

> जो कोउ भरत भूम में सोवै, तन तरवारन धोवै।
> भागे नईं पीठ ना देवै घाव सामनें लेवै।
> जिनकीं लोथें चढ़ीं विमानें इन्द्र सभा सब होवै।
> जे चाकर के धरम ईसुरी अदा नौन सें होवै॥

इस फाग के पाठ के लिये देखें, ईसुरी-प्रकाश, फाग सं० २६८ और ईसुरी की फागें (सं० घनश्याम कश्यप), फाग सं० १६७।

९. ईसुरी की फागें, भाग १, पृ० ६।

१०. ईसुरी की फागें (सं० घनश्याम कश्यप), फाग सं० १४२।

११ ईसुरी-प्रकाश, फाग सं० ३७६।

१२. 'चौमासा' पत्रिका, वर्ष १, अंक १, फरवरी, '८३ में मेरा लेख—बुंदेली फाग और उनमें शास्त्रीय तत्त्व, पृ० ५९।

१३. एक-दो पंक्तियाँ—"ईसुर कात शत्रु के बाने छीन कें हम खाँ लइये' या 'ईसुर कात अधर की रङ्गत अधर रङ्ग से छानो' में संकेत मिलते हैं, पर ईसुरी तो प्रसंग-वर्णन में रुचि रखते थे।

१४. 'बुंदेली संवाद', ८ अप्रैल, '८४ की गोष्ठियों में उठाया गया ईसुरी की प्रासंगिकता सम्बन्धी प्रश्न।

१५. एक बुंदेली लोकगीत, बना (दूल्हा) को दुलहिन की सखियों का कथन। कुछ संकलनकर्ताओं ने 'बनारस गोलियाँ न घालो' पाठ किया है।

१६. प्राचीन काल में गेंदों या गेंदनुमा खोलों में रस या रंग भर कर मारा जाता था और खोल फट जाने से वस्त्रादि भीग जाते थे। होली के कुमकुमों की तरह।

१७. कलावार्त्ता, अगस्त, '८१, मेरा लेख—लोकसाहित्य की मुश्किलें, पृ० ६-७।

□ शुक्लाना, छतरपुर, म० प्र०

०

ईसुरी···जैसा मैंने समझा

● अप्रतिम कवि···/केदारनाथ अग्रवाल

ईसुरी लोककवि है और अच्छे ही नहीं, अप्रतिम कवि हैं। बुन्देलखण्ड के अपने क्षेत्र के सर्वप्रिय कवि। खूब गाये जाते हैं। वे न होते, तो जन-कण्ठ से रस की स्वरलहरी तरंगित न होती और चटियल धरती तप्त जलती रहती। जो वासना-विलास व मांसल आकर्षण उन्होंने 'रजउ' में पाया, उसे उन्होंने गाया। रीतिकाल का प्रभाव व्यापक था तब। इससे वे उबरे और उन्होंने जन-बोली में लौकिक प्रेम और शृंगार की अभिव्यक्ति तन्मय होकर की। वे निश्चय ही अमर हैं। भविष्य में जब नागरिक सभ्यता इस प्रदेश में पहुँचेगी, तो वह भी अपना कलेवर फागों से निश्चित करेगी। —सिविल लाइन्स, बाँदा

● जुड़ाव-ही जुड़ाव का गायन···/गोविन्द मिश्र

ईसुरी को देखा नहीं, तस्वीर भी देखने को कभी नहीं मिली, लेकिन जब-जब उनकी रचनाएँ— फागें, कुण्डलियाँ, प्रभातियाँ, घनाक्षरी, दोहे सुनने या पढ़ने को मिलीं, एक ही तस्वीर मन में सजी। जैसे अपने ही गाँव का एक भैया···निष्कलुष, प्रेमी जीव···अथाई में फागें गा रहा है, होरा खाता जा रहा है और गाता है, गाता है और आस-पास के जीवन से, जनों से और जुड़ता जाता है, उनसे प्रेम करता है और गाता है इस तरह बीतते हुए मरने तक गाता रहता है—जैसे जीना फागें गुनगुनाने का ही एक क्रम हो। जीने और गुनगुनाने में कैसी एकलयता···कि जल प्रवाह की तरह अटकता, चोट खाता, टूटता, जुड़ता अगर ईसुरी का जीवन बहा, तो उसी के अनुरूप फागें चलीं। फलस्वरूप वह कवि जो लगभग निरक्षर था, उसकी रचनाओं में साहित्य और जीवन ऐसा एकीकृत हो गया कि ईर्ष्या होती है ईसुरी से। अलग-अलग मनःस्थितियों की रचनाएँ · लेकिन छोटी-छोटी मनःस्थितियों के रास्ते हों जैसे कोई समय की अपार हिलोड़न को नापे ले रहा हो। यह ऐसे हुआ कि मनःस्थितियों की रचनाएँ होते हुए भी वे रचनाएँ उनमें बन्द नहीं हो गयीं, खुली हुई हैं ·· बाहर का अंकन करती चलती हैं। एक और बात कि 'स्यामा भई दोज को चंदा', 'अंखियाँ पिस्तौलें-सी भरकें'···या 'रँगरेजिन प्यारी' से चलकर 'यारो इतना जस कर लीजो, चिता अन्त न दीजो'·· तक जुड़ाव-ही-

जुड़ाव का गायन है ईसुरी के यहाँ। जहाँ यह जुड़ाव अपना अतिक्रमण भी करता है जैसे कि उनकी प्रसिद्ध—"बखरी रैयत हैं भारे की, दई पिया प्यारे की" वहाँ पिया प्यारे आ जाते हैं। मृत्यु को सामने पाकर भी राग वही है – "ले लो सीताराम हमारी, चलती बेरां प्यारी।" हम जीते हैं, तो सिर्फ प्रेम के लिए···यह रहस्य ईसुरी के पास सिर्फ जानने के स्तर का नहीं है, साँस लेने की नैसर्गिकता के रूप में है।

एक पौधे के उगने, बढ़ने, सूखने और झर जाने में जैसे आवाज नहीं होती, एक मधुर लय फिर भी होती है उसमें···कुछ-कुछ ऐसी ही लय मुझे ईसुरी के जीवन और रचनाओं में दिखाई देती है। इस लय को पकड़े हुए जीवन-क्रम से गुजरना ही प्रकृति का अभीष्ट है···इसलिए ईसुरी का साहित्य मुझे हल्का-फुल्का या केवल फागू कभी नहीं लगा, उसमें हमेशा बड़े साहित्य के सरोकार दिखाई दिये। जहाँ जीवन को स्वयं आकर गाना हो, अपने विविध रंगों को बिखेरना हो ··वहाँ उपयुक्त विधा फाग ही होगी···चौकड़िया या कि कोई भी फाग, सादगी और मिठास बुन्देलो की—"ऐंगर बैठ लेव कछू काँने, काम जनम भर राँने।"

मैं ईसुरी के लिए अपनी भावनाओं को ही व्यक्त कर रहा हूँ। मेरे ये शब्द उन्हें आदर नहीं दे सकते। उन्हें आदर दिया जा सकता है तो एक ही तरीके से – हम धीरे पण्डा और रँगरेजिन ढूंढ़ें, तैयार करें, उन्हें आदर दें।

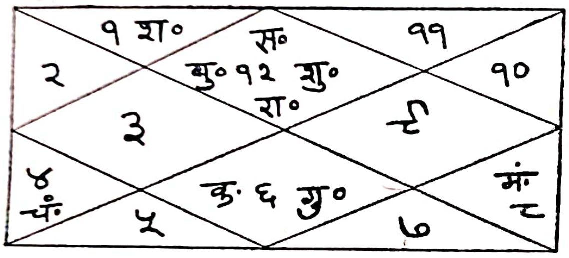
—२२ बेलवेडियर, भूलाभाई देसाई मार्ग, बम्बई-३६

ईसुरी का व्यक्तित्व

● **डॉ० नाथूराम चौरसिया**

बुन्देलखण्ड के जयदेव ईसुरी के जन्म के सम्बन्ध में, 'ईसुरी' पर कार्य करने वाले मूर्द्धन्य विद्वान् श्री वीरसिंह जूदेव ओरछेश, श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर', श्री रामचरण हयारण 'मित्र', डॉ० शंकरलाल शुक्ल, श्रीकृष्णानन्द गुप्त, श्री श्यामसुन्दर बादल, डॉ० कुलदीप, प्रो० श्रीचन्द जैन और मिश्र-बन्धुओं ने निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा। इन विद्वानों ने जन्म-सम्वत् दिया भी है, लेकिन उनके पास कोई ठोस प्रमाण नहीं है। उन्होंने केवल अनुमान का ही सहारा लिया है। मुझे शोधकार्य के समय ईसुरी की जन्मपत्री तथा जन्म से सम्बन्धित एक रचना उपलब्ध हुई है, जो प्रामाणिक है।

लग्न जन्मांक



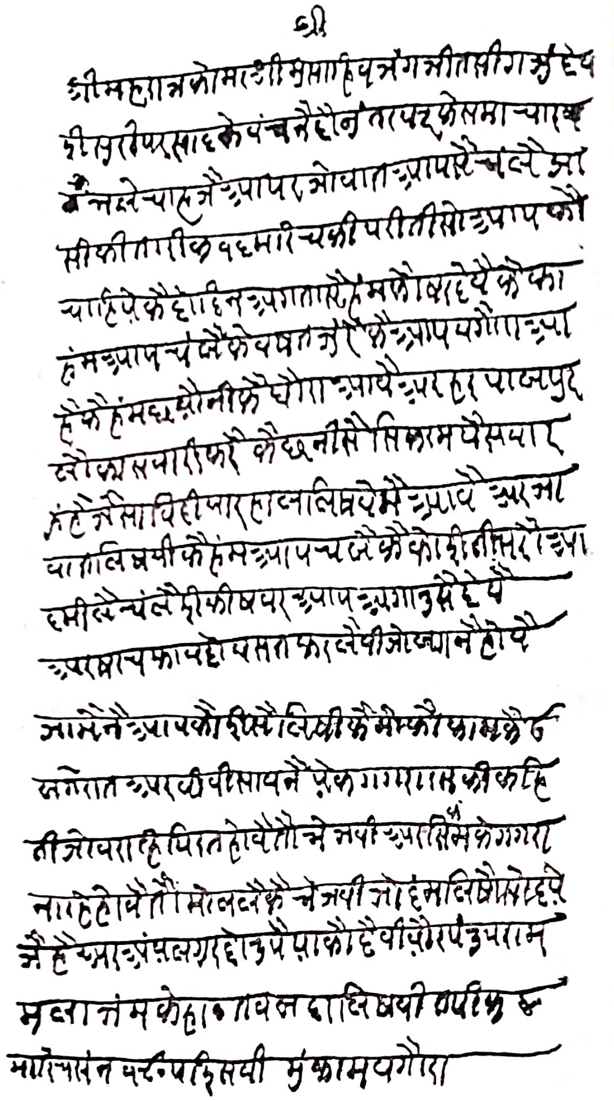
दोहा— सम्वत् अठारासै अन्ठान्वे, दिना हतो गुरूवार।
चैतसुदी दसमी रई, लओ ईसुर अवतार।

चौकड़िया—गुरू ने जैसी हमें सुनाओ, फाग बनाके गाओ।
अठारा सै अन्ठान्वे कौ, सुभ सम्वत् जब आओ।
चैतसुदी दसमी दिन गुरू को, भोले ने सुतपाओ।
गंगा उरसौं उपजे ईसुर, "बाकर" सबहिं सुहाओ।

प्रस्तुत जन्मपत्रिका एवं रचना मुझे श्री राजाभैया बिजावर के सौजन्य से प्राप्त हुई। उनको भी महाराणा बिजावर श्री सावंतसिंह जूदेव के बावर्ची

श्री बाकर खानसामा से प्राप्त हुई थी। श्री बाकर, श्री जंगजीत सिंह जू देव मुसाहिब (धवर्रा) के यहाँ ईसुरी के साथ कार्य करते थे, इसकी पुष्टि धवर्रा निवासी एवं मुसाहिब जू के प्रपौत्र श्री भूपतसिंह तथा उनके द्वारा प्राप्त कागजातों से होती है। श्री खानसामा ईसुरी को अपना गुरु मानते थे। वे तुकबंदी भी करने लगे थे। श्री बाकर सन् १९२० से १९४७ तक महाराजा बिजावर के यहाँ कार्यरत रहे। वे मौदहा (उ० प्र०) के निवासी थे। उपर्युक्त जन्मांक और रचना का मेल ठीक बैठता है। इनसे ईसुरी की जन्मतिथि और माता-पिता के नाम पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। इस आधार पर हरलाल उर्फ 'ईसुरी' का जन्म चैत्र शुक्ल दशमी, दिन गुरुवार, सम्वत् १८९८ निश्चित होता है।

बाल्यावस्था में ही इन पर से इनके माता-पिता का साया उठने के कारण इनका बचपन इनके मामा लुहरगाँव निवासी श्री भूधर नायक के घर बीता। वहीं पर श्री जमुना प्रसाद रावत की घरेलू पाठशाला में इन्होंने ग्रामीण जीवन में लिखने-पढ़ने और हिसाब-किताब करने के लिये आवश्यक बातें सीखीं। संक्षेप में उनकी यही शिक्षा थी। परन्तु उन्होंने इस सम्पूर्ण जनपद को पाठशाला मानकर लोकविषयक ज्ञान प्राप्त किया। वही ज्ञान और अनुभव उनकी फागों के माध्यम से साकार हुआ है, किन्तु अल्पशिक्षा प्राप्त इनकी वाणी में अनूठा सम्मोहन और प्रभाव था, जिसके कारण इनके मित्र कहा करते थे कि इन्हें मोहनो मंत्र सिद्ध है। इनकी लोकप्रियता का आधार इनकी सरस, चुटीली तथा सुरीली और भावभरी वाणी थी, जो बरबस सबको अपनी ओर चुम्बक की भाँति खींच लेती थी। ईसुरी के आश्रयदाता श्री जंगजीत सिंह जू देव मुसाहिब धवर्रा (हमीरपुर) के कागजात, जो कि ईसुरी के लिखे हुए हैं, देखने से विदित होता है कि इनको शुद्ध लिखना भी नहीं आता था। इनके लेखन का एक अंश प्रस्तुत है—


श्री

श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' ने ललितपुर निवासी पं० बिलासी पाठक को ईसुरी का दत्तक पुत्र स्वीकारा है। मैंने ईसुरी से सम्बन्धित सभी स्थलों की आवश्यकतानुसार यात्रा की और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि इन्होंने किसी को दत्तक पुत्र स्वीकार नहीं किया। बड़े भाइयों की संतान परम्परा से वे सन्तुष्ट मालूम होते थे, और जबकि उनके चार पुत्रियाँ थीं, तब पृथक् से कोई दत्तक पुत्र बनाने का औचित्य समझ में नहीं आता। न ही इसका कहीं कोई प्रमाण मिला। इन परिस्थितियों में प्रायः हिस्सा-बाँट को लेकर बाद में झगड़े-फसाद होते हैं, ऐसे झगड़े का भी कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता और न ही बिलासी पाठक के आगे कोई संतान सूत्र का पता चलता है। इस प्रकार ईसुरी के केवल चार पुत्रियाँ थीं, पुत्र कोई नहीं। आगे की वंश-परम्परा उनके भाइयों से चलती है।

ईसुरी के जीवन में दो नर्तकियों का नाम लिया जाता है, जो रँगरेजन के नाम से प्रसिद्ध थीं। ये दोनों सगी भगिनी थीं। बड़ी बहिन का नाम गंगिया, जो पड़ुवा (हमीरपुर) तथा छोटी सुन्दरिया, जो रामनगर (टीकमगढ़) में रहती थीं। वे स्वयं जहाँ नाचने के लिए जातीं, ईसुरी की ही फागें गातीं थीं। वे कुशल नर्तकी होने के साथ-साथ रूपवती भी थीं। ऐसा कहा जाता है कि ईसुरी इनके प्रति आकृष्ट थे। इन्हीं के सम्बन्ध की फाग देखिये—

नैना तरबारन सें पैने, करे सामने तैंने।
घायल करदओ मुलक भरेखौं, ऐसी दई कीं दैंने।
प्रान हरन सुन्दरिया, गंगिया, एकई सीं दोई बैंनें।
ऊसई पैने नैन तुमारे, कछु छलत हैं सैंने।
'ईसुर' कात सामने होकें, सये ससन भर मैंने।

ईसुरी जब मुसाहिब जू के कामदार थे, तब इन्हें एक अपमानजनक स्थिति का सामना करना पड़ा। मुसाहिब जू के रुकमन नाम की एक परिचारिका थी, जिसने इनकी माँ नन्नाजू के आभूषणों का डिब्बा चुरा कर अन्यत्र रख दिया था। उनके कान भरने पर ईसुरी को संदिग्धता का शिकार बनाया गया। उनको उल्टा करके नीम के वृक्ष की डाल से लटका दिया गया। यह विशाल वृक्ष आज भी उनके बाह्य प्रांगण में अवस्थित है। ईसुरी को दुर्गा की सिद्धि होने के कारण उन्होंने नीम पर उलटे लटके-लटके ही निम्न पाठ पढ़ना प्रारम्भ किया—

रुकमन डबा काये न रानो, भेजो जेहल खानो।
जो खाजाय खेत खौं बारी, जेऊ इक बड़ो अलानो।
मोरो जानो गओ न 'ईसुर' गओ रुकमन की जानो।

उपर्युक्त फाग सुनते ही ईसुरी को छोड़ दिया गया और रुकमन को खबर लो गयी, तब चारी गये आभूषण मिल गये। इस घटना के अनन्तर ईसुरी धवर्रा छोड़ कर ग्राम ठठेवरा निवासी भुन्दो माफीदार के यहाँ रहने लगे। इनको निर्दोषिता सिद्ध होने पर धवर्रा निवासी पुनः वापस लाये, परन्तु स्वाभिमानी ईसुरी ने मुसाहिब जू के यहाँ कार्य नहीं किया। इसी आन्तरिक द्वेष के कारण इन पर मुकदमा चलाये गये और तहसील निर्णय इनके पक्ष में हुआ।

ईसुरी स्वभाव से ही सरस तथा स्वाभिमानी कवि थे। उनमें किसी प्रकार का छल-प्रपंच नहीं था। सामान्य घराने में उत्पन्न होने के कारण उनके व्यक्तित्व में नम्रता कूट-कूट कर भरी पड़ी थी। कदाचित् इसी भाव से उन्हें तत्कालीन राजाओं, अमीरों, जागीरदारों तथा सामान्य जनता से अत्यधिक स्नेह मिला। इनकी रचनाओं में इनका व्यक्तित्व झलकता है। उनकी रचनाओं के अध्ययन से उनके व्यक्तित्व के विषय में निम्नलिखित बातें प्रकाश में आती हैं।

बाह्य व्यक्तित्व—ईसुरी देखने में मझाले कद के बताये जाते हैं। रंग गोरा, सम शरीर। वेश-भूषा में कलीदार कुर्ता, घुटनों तक धोती, सफेद साफा (फड़ पर बसंती साफा) तथा बुन्देली झब्बीदार पनइयाँ पहिनते थे। यही हमारे फाग गीतों के आचार्य ईसुरी के चित्र का स्थूल रेखाएँ हैं। सम शरीर उन्हें इसलिए कहा गया है कि उनके अधोलिखित दो परस्परविरोधी वचनों में समन्वय स्थापित किया जा सके—

(१) जो तन हो गओ सूक छुआरो, ऊपई हतो इकारो।
(२) हड़रा घुन हो गये हमारे, सोचन रजउ तुम्हारे।
दौरी देह दूबरी हो गई, करकें देख उगारे।
गोरे आंग हते सब जानत, लगन लगे अब कारे।

आन्तरिक व्यक्तित्व : स्वाभिमान—मानव जीवन में अनेक अच्छाइयों के साथ-साथ अनेक दुर्गुण भी होते हैं। इन दोनों के संयोग से सामान्य मनुष्य का निर्माण होता है। यहाँ सामान्य मनुष्य का संकेत भूखी, नंगी जनता से न होकर परमात्मा-महात्मा से भिन्न मनुष्यों के गुणों से है। इस सीमा में

सभी आ जाते हैं। लोक कवि ईसुरी ऐसी ही मनुष्यता के सदृश थे। उनमें भी अनेक सद्गुणों के साथ-साथ दुर्गुण भी रहे होंगे, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि उनका जीवन सामान्य-से-सामान्य कोटि का रहा। उन्हें भी आजीविका के लिये एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकना पड़ा, परन्तु उन्होंने अपने आपको किसी के यहाँ गिरवी नहीं रखा। जहाँ भी उनके आत्म पर आघात हुआ, वहाँ से चल दिये। ईसुरी ने अपने जीविकोपार्जन के लिए एक जागीरदार एवं जमींदार के यहाँ नौकरी की थी, परन्तु यह नौकरी उनके काव्य-क्षेत्र में बाधक नहीं थी। महाराजा छतरपुर श्री विश्वनाथ सिंह जू देव इन्हें राज्याश्रय देने को लालायित थे। एक रुपया प्रतिदिन तथा अन्य सुख-सुविधाएँ महाराजा की ओर से देने का वचन दिया गया था, परन्तु उन्होंने ठुकरा दिया। वास्तव में ईसुरी काव्य को राज्याश्रय में विकसित नहीं करना चाहते थे। यदि वे ऐसा कर लेते तो निश्चित रूप से उन्हें राजा का कीर्तिगान करना पड़ता, जो उनके स्वाभिमान के विरुद्ध था। कारिन्दा की नौकरी काव्य-रचना में रुकावट नहीं डालती थी। जीविकोपार्जन हेतु नौकरी स्वीकार करते हुए भी उन्होंने आश्रयदाता के प्रशस्ति-गीत गाना स्वीकार नहीं किया जैसा कि रीति-कालीन कवि करते थे। इसी प्रवृत्ति के कारण ये रीति-प्रभाव के उतने निकट नहीं हैं, जितने कि श्री गंगाधर व्यास। अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए ईसुरी उन सभी कार्यों को सम्पादित करने में नहीं चूकते थे, जिनसे उनके स्वाभिमान की रक्षा हो सके।

मानवतावादी दृष्टिकोण—ईसुरी मानवतावादी दृष्टिकोण के पोषक थे। प्रत्येक मनुष्य के सुख-दुःख से वे प्रभावित होते थे। उन्हें इस बात से अत्यन्त दुःख होता था कि व्यक्ति परस्पर लड़ाई-झगड़ा करते हैं और उसका लाभ एक तीसरा पक्ष उठाता है। इस निकटतम संघर्ष को निपटाने के लिए उनकी यह पंक्ति सूत्र रूप में आज भी लाभकर सिद्ध हो रही है—"तन-तन दोऊ जनें गम खाँयें, करो फैसला चाँयें।" उभय पक्ष यदि थोड़ी-थोड़ी शान्ति से काम लें, तो संघर्ष समाप्त हो सकता है।

देश-प्रेम—ग्रामीण होने के कारण उस समय देश-प्रेम का इतना व्यापक क्षेत्र नहीं था, जितना कि आज। उस समय तो अपने गाँव से ही प्रेम करना वास्तव मे देश-प्रेम की कोटि में आता था। ईसुरी अपने जनपद के अनन्य भक्त थे, जिसके समक्ष धर्म-ग्रन्थों में वर्णित गंगा की पवित्रता भी तुच्छ बतायी है। ईसुरी की इच्छा थी कि वे चाहे गंगा-तट पर ही मृत्यु को प्राप्त हों, परन्तु उनका अन्तिम संस्कार अपनी कर्मभूमि बघौरा में ही हो—

यारौ इतनो जस लै लीजौ, चिता अन्त न दीजौ ।
गंगा जू लौं मरै 'ईसुरी', दाग बघौरा दीजौ ।

नम्रता—सामान्य परिवार में जन्म लेने के कारण ईसुरी के व्यक्तित्व में नम्रता कूट-कूट कर भरी पड़ी थी । धार्मिक अभिरुचि के कारण उनकी विनम्रता और भी सजीव हो गयी । इस विनम्रता के फलस्वरूप ही उनका जीवन सादा और व्यक्तित्व प्रखर बन गया था । वे सामान्य-से-सामान्य मनुष्य का सम्मान करते थे और उन्हें ऐसे लोगों का स्नेह भी प्राप्त था । वे सरल प्रकृति के सहज हँसमुख भावुक व्यक्ति थे । यह भी कहा जाता है कि ईसुरी को किसी ने किसी पर क्रोधित होते हुए नहीं देखा । लड़ाई-झगड़े से तो वे कोसों दूर थे । जिस गाँव में वसूली करने गये, इनकी हँसोड़ बातचीत के कारण सभी इनसे प्रभावित थे । बदले में ईसुरी को भी उनके जीवन-काल में ही अत्यधिक सम्मान मिला । वस्तुतः विनम्रता ही ईसुरी के व्यक्तित्व का आभूषण थी ।

संस्कार—ईसुरी के काव्य-सृजन के संस्कार जन्मजात थे । इनकी फागों का सांगोपांग अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि ये संस्कारी प्रतिभा-प्रणीत कवि थे ।

ईश्वर के प्रति विश्वास—ईसुरी को ईश्वर के प्रति अटूट विश्वास था । वे राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा एवं गंगा में अखण्ड विश्वास रखते थे । 'रामचरितमानस' उनका आराध्य तथा सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ था । 'मानस' की प्रशंसा से ओत-प्रोत फाग द्रष्टव्य है—

रामें लयें रागनी जीकी, लगै सुनत में नीकी ।
छैऊ सास्त्र, पुरान अठारा, चार बेद सें झींकी ।
गैरी भीत अथाह भरी है, थाय मिली न ईकी ।
'ईसुर' साँसऊँ सरग नसेनी, रामायन तुलसी की ।

भावुकता—यह गुण प्रकृति प्रदत्त होता है, जो सभी को कम या अधिक मात्रा में उपलब्ध है, परन्तु कवियों में एक विशिष्ट मात्रा में पाया जाता है और यही कारण है कि दृश्य तथ्य अथवा घटना-विशेष का चित्रण वे जितना सुन्दर कर लेते हैं, जन-साधारण नहीं । ईसुरी भावों के सफल चितेरे थे । कवि की भावुकता इसी से पहचानी जाती है कि वह किसी स्थिति-विशेष में अपने को डालकर स्वयं उसका अनुभव करे । इस दृष्टि से हम ईसुरी को

परखते हैं, तो वे इस कसौटी पर खरे उतरते हैं । शोध-यात्रा के समय बघौरा निवासियों ने बताया कि उनके यहाँ आज भी फागों के माध्यम से अनेक लड़ाई-झगड़े पंचायत के रूप में सुलझाये जाते हैं । ईसुरी इनको निपटाने में पूर्ण दक्ष थे । नीतिपूर्ण बातों की फाग बनाकर दोनों पक्षों को खुश कर देने में उन्हें कमाल हासिल था ।

समग्रतः हम देखते हैं कि ईसुरी के साहित्य में उनके व्यक्तित्व को तथा उनकी व्यक्तिगत रुचियों को मूर्त स्वरूप प्राप्त हुआ है । सर्वत्र इन्होंने अपनी व्यक्तिगत रुचि के अनुकूल ही चित्र प्रस्तुत किये हैं । संक्षेप में ईसुरी का व्यक्तित्व अद्वितीय था । उनके व्यक्तित्व-निर्माण में व्यक्तिगत अनुभवों का सहयोग प्रमुख है । उनके व्यक्तित्व में कवि, समाज-सुधारक और महती श्रद्धा के तत्त्व विद्यमान थे । ईसुरी ने इन गुणों से प्रेरणा लेकर अपने को एक समर्थ कवि के रूप में समाज के सम्मुख खड़ा किया ।

पिपट, बिजावर (म० प्र०)

ईसुरी की काव्य-प्रेरणा और रचना-प्रक्रिया

● डॉ० नर्मदा प्रसाद गुप्त

ईसुरी की काव्य-प्रेरणा या रचना-प्रक्रिया के प्रश्न को प्रायः बड़े हल्के रूप में लिया जाता है और यह मान लिया जाता है कि लोक काव्य किसी भी गम्भीर चिन्तन की परिधि से बाहर है। यहाँ तक कि लोकसाहित्य के विद्वान् ऐसे अहम मसलों को लोकसाहित्य की सीमा में नहीं रखते। इस उपेक्षा के दो कारण हैं। एक तो यह कि **लोककाव्य को वे व्यक्ति की रचना नहीं मानते और दूसरा यह कि उसकी गतिशीलता में उन्हें विश्वास नहीं है।** सारी भ्रान्तियाँ लोककाव्य को बहुत प्राचीन और स्थिर मानने से पनपी हैं। जब कभी ईसुरी की फागों के सम्बन्ध में बात उठती है, तो वे दुविधा में फँसे होने के कारण स्पष्ट निर्णय नहीं ले पाते। फागें तो व्यक्तिरचित हैं और लोककाव्य भी, उनकी रचना एक निश्चित काल-परिधि में हुई है, अतएव इन तथ्यों को नकारना कठिन है। लेकिन लोकसाहित्य के सम्बन्ध में जो रूढ़िबद्ध मान्यताएँ अभी तक स्थिर हैं और जिनका अनुसरण आज भी उचित समझा जाता है, वे परखाव में अंकुश लगाती हैं। फलस्वरूप भ्रामक धारणाओं को तोड़े बिना न तो लोकसाहित्य के साथ न्याय हो सकता है और न ईसुरी के साथ।

फाग की परिपाटी

फागकाव्य की परम्परा, फागों की विषयवस्तु और उनकी फड़बाजी समझे बिना भी ईसुरी का अध्ययन संभव नहीं है। **फाग वसंत का लोकगीत और गाँव की वासन्ती मानसिकता उसकी आत्मा है।** सहज लोकप्रेम की मौज-मस्ती, आनंद-विनोद और भोग-विलास से लेकर बिछोह की पीड़ा और प्रलाप के तीव्र संवेदनों तक लोकमानस की जितनी स्थितियाँ हैं, ईसुरी के पहले और बाद की फागों में मिलती हैं। ईसुरी के पूर्व फागों का एक अपना इतिहास है। आदिकाल में सखियाऊ फागों और राई का प्रचलन था, मध्यकाल में १५वीं सदी के बाद पदशैली की फागों, रसिया, झूलना की फागों और लाल फागों का प्रचलन उत्कर्ष पर रहा। आख्यानक, छंदयाऊ और लाउनी की फागों का भी क्रमबद्ध विकास मिलता है। पहले फागें संगीतनृत्यपरक थीं, बाद में नृत्य अनिवार्य न होने से फागगीतों में छोटे मुक्तक महत्त्वपूर्ण हो गये। वैसे भी

रीतिकाल में मुक्तकों को अधिक मान्यता मिली। मतलब यह है कि ईसुरी से पहले फागों का असीम भण्डार मौजूद था और उनके विविध प्रकारों का अपना-अपना रंग था। **निश्चित है** कि ईसुरी पुरानी फागों से अच्छी तरह परिचित थे **और उन्होंने भी प्रचलित फागरूप को अपनाकर कुछ रचनाएँ** लिखी होंगी।

फाग फड़ का गीत रहा है और फड़ों में फागों की प्रतिद्वन्द्विता होती थी। दोनों दलों के फागकार पहले से ही फागों का भण्डार सुरक्षित रखते थे, जिसके गवाह खोज में प्राप्त हस्तलिखित पोथियाँ हैं। साथ ही, हर दल के मुखिया के रूप में एक कविगुरु और अन्य कवि-फागकार रहते थे, जो तुरन्त किसी भी फाग का जोड़ रच देने में निपुण थे। इस तरह फड़ों के लिए हर फागकार को **हर रंग की फागें लिखनी पड़ती थीं, जिन्हें रंगत की फागें** कहा जाता था। पुराने हस्तलिखित संकलनों में रंगत की फागें मिलती हैं और उनमें ईसुरी की फागों की संख्या सर्वाधिक है। ईसुरी के समकालीन संकलन से यह प्रकट है कि ईसुरी फागों की फड़बाजी के प्रति पूरी तरह सचेतन थे। चरखारी के फागकार श्री मातीलाल घोप ने एक संस्मरण में कुलपहाड़ के एक फड़ की चर्चा की थी, जिसमें ईसुरी सम्मिलित हुए थे। इससे यह स्पष्ट है कि **ईसुरी** ने नेत्र, **केश, मुख आदि के आंगिक सौन्दर्य एवं आभूषणों, गुदना, वस्त्र आदि बारह आभूषण और सोलह श्रृङ्गार** तथा प्रकृति, रामकृष्ण की भक्ति आदि विविध रंगों की फागें इसी फड़चेतना से प्रेरित होकर रची होंगी।

ईसुरी का लोक और काव्यदेश

ईसुरी १९वीं शती के उत्तरार्द्ध में लगभग चालीस-पचास वर्ष काव्य-रचना करते रहे। १८५७ की क्रान्ति जैसी ऐतिहासिक घटना के सम्बन्ध में उनकी कोई फाग नहीं मिलती, जबकि उनके पूर्व के फागकारों-फकीरे खान, गंगासिंह, दादूराम, रेवाराम आदि की फागों में क्रान्तिकारियों का वर्णन किया गया है। इससे सिद्ध है कि ईसुरी का काव्यकाल इस घटना के विस्मरण के समय लगभग १८६५ ई० से प्रारम्भ होता है और १९०९-१० ई० में उनकी मृत्यु तक प्रसरित है। यह समय जहाँ हिन्दी काव्य के संक्रमण का है, वहाँ बुन्देली लोककाव्य के पुनरुत्थान का। जब हिन्दी कविता रीति से जकड़कर जड़ और गतिहीन हो गयी, तब उसके खिलाफ लोककाव्य की सहज स्वच्छंद धारा प्रवाहित हुई। काव्य की विषयवस्तु वही थी, अन्तर केवल इतना था कि उसमें नायिकाभेद की जकड़न और नगरी बनावटीपन नहीं था। ईसुरी के पहले बुन्देलखण्ड में काव्य-गोष्ठियाँ होती थीं और उनमें नायिकाभेद को आधार बनाकर नायिका-बुझौवल चलता था। तर्कों और प्रमाणों के बल पर चुनौतियाँ

दी जाती थीं तथा हार-जीत के पैमाने पर कविताई की श्रेष्ठता तौली जाती थी। स्पष्ट है कि साधारण आदमी इस दिमागी कसरत से दूर रहने लगा, जिससे गोष्ठियाँ समाज से कट गयीं। उन गोष्ठियों की जगह फागों के फड़ लोकप्रिय हो गये, क्योंकि वे लोक से जुड़े थे। फड़बाजी के कारण ही अस्तंगत रीतिश्रृङ्गार 'लोक' में जा पैठा और लोकश्रृङ्गार के रूप में विकास पा गया। नखशिख जैसी एक लीक-सी चल पड़ी।

उस समय आलीपुरा और छतरपुर छोटी-छोटी रियासतें थीं। उनके राजा पूरी तरह स्वतंत्र नहीं थे, क्योंकि अंग्रेजों का दबाव बराबर बढ़ता जा रहा था। नौगाँव का पालिटिकल एजेण्ट ही सब कुछ था। गाँव तो जागीरदारों और जमीदारों की स्वेच्छाचारिता में पिस रहे थे। ईसुरी मुसाहिब जंगजीत सिंह, किलेदार चतुर्भुज और आबादी बेगम के कारिन्दा बनकर रहे थे। इस वजह से उन्हें गाँव के लोक की सही पहचान थी। एक तरफ गाँव की परम्पराओं से पूरी तरह जुड़े होने के कारण वे गाँव के लोकादर्श, लोकविश्वास आदि के प्रति पूरी तरह समर्पित थे, तो दूसरी तरफ लोकजीवन के यथार्थ के खट्टे अनुभवों को व्यक्त करने में कोई दुराव नहीं रखते थे। 'अपनी लाँच खायबे कों वे नाँय की माँय मिलायें। गड्डी गाड़े ढ़ड़कत नइयाँ आँगन बिना लगायें।' और 'जिनकें नइयाँ चून चनन कौ उनसें लाग मँगायें।' से रिश्वत और लाग, 'ककना दौरीं सब घर खाये रै गओ फकत अनौटा' से किसान की गरीबी तथा ददोरा से नासूर बनती समस्याएँ कुछ ऐसे संकेत हैं, जो 'उनकौ राज उनईं की रैयत सिर पर बात जबर की' जैसे समय में अपनो अलग पहिचान रखते हैं।

कवि का काव्यदेश विस्तृत है। उसकी फागों की संख्या अनिश्चित है क्योंकि सभी फागें प्रकाश में नहीं आ सकीं। ग्राम ठठेवरा के नन्हें भैया चौबे चार हजार, बुधवारा के जगन्नाथ गुप्त हजारों, महाराज वीरसिंह जू देव सैकड़ों फागों के संग्रह के दावेदार हैं और भी कई ऐसे भण्डार हैं, जो अभी प्रकट नहीं हैं। प्रकट है कि ईसुरी ने काफी लिखा था। जो बात-की-बात में फाग-पर-फाग कहता रहा हो, उसके लिए हजारों फागें लिखना कोई कठिन काम नहीं। इन फागों की काव्यवस्तु सीमित नहीं है, जैसा कि लोग अनुमान कर लेते हैं। अर्थ की सामान्य क्रियाओं से लेकर जन्म-मृत्यु की सहज दार्शनिकता तक, मित्ताई और भौजी के विनोदों से लेकर रामकृष्ण की भक्तिपरक भावभूमि तक, वैराग-बिगारन वसंतबहारों से गौऊँ-पिसी के गिरुआ तक, जल भरती कमर की लचकन से लेकर प्रेम की तीव्र पीड़ा तक और लाँच (रिश्वत) की

कसक से लेकर जब्बर की हुकूमत के अन्याय तक गाँवों की लोकसंस्कृति का अधिकांश परिवेश उनकी फागों की वस्तु रहा है। काव्य की इस व्यापक पटभूमि को सामने रखकर ही ईसुरी को परखना जरूरी है।

फागों की गतिशीलता और ईसुरी

बुन्देली लोककाव्य में फाग एक गतिशील विधा रही है। फागकाव्य का इतिहास साक्षी है कि लोक के परिवर्तन के साथ-साथ फाग में भी बदलाव आया है। उसकी वस्तु और अभिव्यंजना दोनों में। मैंने अपने लेख—'बुन्देली फाग का उद्‌भव और विकास' में इसे विस्तृत रूप में स्पष्ट किया है, पर यहाँ एक उदाहरण देना ही पर्याप्त है। १८५७ ई० की क्रान्ति और उसके संघर्ष का वर्णन अनेक लोककवियों ने किया है। इतनी फागें मिलती हैं कि उनसे फाग जैसे शृंगारपरक गीतकाव्य में भी परिवर्तन का एक समूचा संभार दिखलाई पड़ने लगता है। लेकिन ईसुरी ही प्रवर्तन का महत् कार्य करते हैं। वे फागगीतों को लोकजीवन और लोकसंस्कृति की पूरी छवि से जगमगा देते हैं। बिल्कुल एक गाँव वाले की तूलिका से उन्हीं रेखाओं और रंगों में। 'न राई घट और न रौंदा बढ़'। प्रेम, शृंगारिकता, सामाजिक चेतना और जीवनदृष्टि की उतनी ही औसत मिलावट, जितनी कि उस समय के ग्रामलोक में थी।

दूसरी स्थिति है फागरूप या फाग के ढाँचे की। ईसुरी ने उसमें भी परिवर्तन किया था। लम्बे मुक्तकों से गायकी में शिथिलता आ गयी थी और वे फड़बाजी के उपयुक्त नहीं थे, जबकि दोहे पर आधृत लघु मुक्तकों में चपलता तो थी, लेकिन नृत्य और संगीत में उनकी पंक्तियों को दुहराना पड़ता था। इसीलिए ईसुरी ने चार पंक्तियों की चौकड़िया फाग का आविष्कार किया, जो फड़बाजी और गायकी दोनों को व्यापक आधार दे सकने में समर्थ थी। चौकड़िया की टेक के आधार पर ही खड़ी और छन्दयाऊ फागों का उदय हुआ। 'चौकड़याऊ' फागरूप इतना लोकप्रिय हुआ कि आज तक उसका प्रयोग हो रहा है। असल में चौकड़याऊ का अपना अलग चमत्कार है। प्रथम चरण की प्रथम पंक्ति में एक उक्ति का कथन रहता है, जबकि दूसरी पंक्ति उसे और निखार देती है। दूसरे और तीसरे चरण में उक्ति का थोड़ा-सा फैलाव होता है, जबकि अंतिम चरण पूरी सिद्धि के साथ पूरी फाग को अन्वित कर देता है। इस प्रकार ईसुरी ने फाग की वस्तु में नयापन दिया और अभिव्यंजना-शिल्प में भी। संगीत, नृत्य और काव्य के विविध रसों को एक साथ अनुभूत कराने में 'चौकड़िया' बेजोड़ साबित हुई।

कुछ वैयक्तिक पहलू और 'रजउ' का विवाद

लोककवि के जीवन में भी कुछ ऐसे वैयक्तिक प्रसंग होते हैं, जो उसकी रचनाओं पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं। कभी-कभी एकाध प्रसंग आम चर्चा का विषय बन जाता है और विद्वज्जनों की दृष्टि में ऐसा गड़ जाता है कि वे उस पर तटस्थता से विचार नहीं कर पाते। ईसुरी की 'रजउ' का प्रसंग कुछ ऐसा ही है। 'रजउ' शब्द का प्रयोग भी अनेक फागों में हुआ है और 'रजउ' के प्रति कवि की गहरी आसक्ति भी कुछ फागों में मिलती है। एक फाग—'जा भई दसा लगन के मारें, रजउ तुमारे द्वारें' में एक घटना का संकेत है, जिसके अनुसार 'रजउ' के दरवाजे पर कवि को नीम वृक्ष की डाल से टाँग कर पीटा गया और उस समय 'रजउ' चौखट से टिको खड़ी थीं। कहा जाता है कि जिला छतरपुर में नौगाँव के समीप धौर्रा के मुसाहिब जू ने अपने द्वार के सामने ईसुरी को पिटवाया था, क्योंकि उनकी पुत्री रज्जूराजा से कवि का प्रेम था। इस फाग में 'रजउ तुमारे द्वारें', 'ठाड़ीं हतीं टिकीं चौखट सें अब भई ओट किवारें' और 'रजुआ करें बहारें' से भी ऐसा आभास मिलता है। मुसाहिब जू के वंशज इस घटना का कारण आभूषणों की चोरी में ईसुरी का सहयोग बतलाते हैं। उनके साक्ष्य में एक फाग—'रुकमिन डवा कायें न रानों' पेश की जाती है। बहरहाल 'रजउ' का मसला विवादग्रस्त-सा है।

इस विवाद के दो छोर हैं। एक तरफ यह खोज की गयी है कि मुसाहिब जू के ठीक पिछवाड़े ईसुरी का घर था और ईसुरी की इच्छा थी कि दीवार के आरपार एक 'आरी' (आला) बना लिया जाय। इसकी पुष्टि में कुछ फागें भी पेश की जाती हैं। दूसरी तरफ 'रजउ' को सजनी, अली, सखी आदि की तरह या तो सम्बोधन माना गया या फिर कथा-काव्यों जैसी एक कल्पित नायिका। इन दोनों अतिवादी सीमाओं में कोई समझौते की गुंजाइश नहीं दिखती। दोनों के प्रमाण ईसुरी की फागों में मिल जाते हैं। सवाल तो यह है कि यदि हम 'रजउ' को सामने लाकर ही खड़ा कर दें, तो उससे कवि के काव्य का क्या बनता है अथवा काल्पनिक मानने से क्या बिगड़ता है। क्या ईसुरी के अपमान से असली 'रजउ' का पता चलने पर भी वे मुसाहिब जू की प्रतिष्ठा को नष्ट करने के लिए फागें रचते रहे अथवा परायी बेटी को बदनाम करने या खुद को मजनूँ साबित करने? क्या गाँवों (उस समय के) में आदमी इतना उच्छृङ्खल होता था? फिर 'मोरे दोरे (कोद दुआरो भओ न रजउ तुमारो।' जैसी फागों की प्रामाणिकता का सवाल है, कम-से-कम यह फाग तो ईसुरी-रचित नहीं जान पड़ती। कई फागकारों ने ईसुरी की छाप डालकर फागें रच

दी थीं, कवि के शिष्य मूलचन्द जी ने स्वयं ईसुरी के नाम से फागें लिखी थीं। मतलब यह है कि 'रजउ' की पहचान के लिए काफी खोज की जरूरत है। यदि उनकी फागों का साक्ष्य लें, तो 'हमसें दूर तुमारी बखरी, हमें रजउ जा अखरी।' से साफ है कि रजउ की बखरी इतनी दूर है कि ईसुरी बार-बार आते-जाते चकरी हो रहे हैं। एक दूसरी फाग में उनके दरवाजे आमने-सामने हैं—'का भओ ऐंगर रये को वारो, भओ द्वारे में द्वारो।' इसी तरह कभी रजउ बगौरा में रहती है, तो कभी बगौरा से दूर। एक फाग में 'रजउ' के प्रति कवि की तीव्र आसक्ति से उसकी शारीरिकता सिद्ध होती है, तो दूसरी में अलौकिकता। दोनों फागें द्रष्टव्य हैं—

(१) जो जी रजउ-रजउ के लानें, का काऊ सें कानें।
जौलों रानेंजियत जिन्दगी रजउ के हेत कमानें।
पैलां भोजन करें रजउआ पाछूं कें मोय खानें।
रजउ-रजउ को नाम 'ईसुरी' लेत-लेत मर जानें॥

(२) नैयाँ रजउ काउ के घर में, बिरथा कोऊ भरमें।
सबमें है उर सबसें न्यारी सब ठौरन में भरमें।
को कयै अलख खलक की बातें लखी न जायँ नजर में।
'ईसुर' गिरधर रयँ राधे में राधा रयँ गिरधर में॥

दूसरी फाग से ऐसा लगता है कि रजउ का विवाद उनके जीवन-काल में उठा हो और आरोप के बचाव में उन्होंने यह फाग रची हो अथवा रजउ उनकी कल्पना की मूर्ति रही हो। अगर वह वास्तविक है, तो उसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है, पर यह सही है कि वह दैहिक, मानसिक होती हुई अलौकिक बन गयी है। जो भी हो, चाहे वह वास्तविक हो, चाहे काल्पनिक, इतना निश्चित है कि वास्तविक होते हुए भी वह कल्पना की वस्तु है और काल्पनिक होते हुए भी वास्तविक है तथा इसी समरसता में ईसुरी की प्रतिभा और शक्ति है।

इस प्रसंग के अतिरिक्त कई फागों में रँगरेजिन से प्रेम का प्रमाण मिलता है। 'ईसुर' पड़े इसक के फन्दे, आसिक हैं यारी के।', 'नैना रँगरेजिन नें मारे, कर दये प्रान दरारे।' आदि फागों में उनके प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। इसी कारण वे रामनगर का फेरा देते हैं और रँगरेजिन की पहचान के लिए वे साफ-साफ कहते हैं—'प्रान हरन सुन्दरिया गंगिया, एकई सीं दोई बैंनें।' कहा जाता है कि गंगिया पड़ुवा (जिला हमीरपुर) और सुन्दरिया रामनगर (जिला टीकमगढ़) में रहती थी। लोकश्रुति है कि सुन्दरिया ने ईसुरी की फागों पर ही

नृत्य करने का संकल्प किया था। जो भी हो, इससे ईसुरी की फागें राई नृत्य के साथ जुड़ गयीं और लोक में प्रसिद्धि पा गयीं।

दोनों प्रेम-प्रसंगों के साथ-साथ कवि के जीवन में ऐसी घटनाएँ भी घटीं, जो वेदना के गहरे घाव छोड़ गयीं। इकलौते पुत्र की मृत्यु, पुत्री गुरन का वैधव्य और फिर पत्नी का सदा के लिए बिछोह। इनका प्रभाव ईसुरी के मन पर तो निश्चित ही रहा होगा, फिर उससे काव्य कैसे अछूता रह सकता था।

काव्य-प्रेरणा

काव्य-प्रेरणा का सम्बन्ध अनुभूति से होता है और ईसुरी की फागों का गहराई से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट है कि उनमें प्रेमानुभूति ही प्रधान है। ईसुरी प्रेम का कवि है। उस लोकसहज प्रेम का, जिसमें न तो गम्भीरता और उदात्तता का बोझ है, न दुराव-छिपाव और कुण्ठा का षड्यन्त्र। बनावटीपन से दूर सहज स्वाभाविक, निश्छल और खरा। किसी एक के प्रति पूरी निष्ठा से इतना समर्पित कि उसके घर की देहरी बनने को आतुर, ताकि आते-जाते प्रिय की चरण-धूलि ही मिल जाय। इतनी तीव्र आसक्ति कि मृत्यु होने पर ठठरी पर धर कर प्रिय की खोर ले जाने को मंशा। निश्चित है कि ऐसा कवि न तो काम का चारण कहा जा सकता है और न भोग का पुजारी, वरन् उसका प्रेमानुभूति देह और मन को पार कर आत्मा से जुड़ जाती है। तात्पर्य यह है कि ईसुरी का प्रेम प्रारम्भ में चाहे दैहिक रहा हो और उसकी कोई विशिष्ट 'रजउ' भी रही हो, पर काव्य को संवेदना के साथ जुड़ने पर वह और उसकी रजउ दोनों 'सामान्य' हो गये हैं। तभी तो वे कहते हैं—

> देखी रजउ काउ ने नइयाँ, कौंन बरन तन मुइयाँ।
> काँ तौ उनकी रहस रास है काँ दये जनक गुसइयाँ।
> पैलउँ भेंट हमइँ सें ना भइ ललक लगी सब खइयाँ।
> 'ईसुर' हमनें रजउ की फागें कर दइँ मुलकन मइयाँ॥

इस साक्ष्य से मेरा मतलब यह नहीं है कि ईसुरी की 'रजउ' कोई अलौकिक शक्ति थी। ईसुरी की मुख्य विशेषता तो लौकिकता ही है, ऐसी लौकिकता, जो लोकचेतना से पूरा तादात्म्य रखती हो। इस दशा में 'रजउ' भी लोकनायिका है। उसमें न तो व्यक्तिगत रंग है और न कोई बाहरी रोगन। इसी तरह उनकी अनुभूति लोकसम्बद्ध होने से लोकानुभूति है। यह सही है कि अनुभूति की विकास-यात्रा होती है और उस यात्रा में कई पड़ाव होते हैं और

कई आकर्षण। यह असम्भव नहीं कि ईसुरी को पहले आकर्षण के रूप में कोई विशिष्ट 'रजउ' मिली हो, जिसके मिलन और बिछोह ने उनकी लोकानुभूति को असाधारण आवेग दिया हो। यह भी सम्भव है कि वे अपनी पत्नी राजा बेटी की कल्पना को आधार बनाकर चले हों, क्योंकि उसकी मृत्यु और बेटी गुरन का वैधव्य, दोनों करुण प्रसंग उनके मन को विगलित करते रहे थे। सूर, तुलसी, कालिदास और न जाने कितने कवियों के साथ ऐसा ही कुछ घटित होने की कथाएँ लोकप्रसिद्ध हैं, फिर ईसुरी तो गाँव के उन्मुक्त लोक से जुड़े थे। कभी-कभी किसी मित्र की भोगी कथा या घटना भी कवि की अनुभूति में ढल सकती है। बहरहाल ईसुरी की काव्य-प्रेरणा और उनकी प्रेमानुभूति की प्रतीक 'रजउ', चाहे कोई 'विशिष्ट' नामधारी हो, चाहे काल्पनिक, लेकिन काव्य में वह लोकसामान्य बन गयी है, कवि की लोककल्पना से रूपायित होकर और लोकजीवन से प्रेरणा पाकर।

इस सम्बन्ध में दो सवाल उठाये जा सकते है। पहला यह है कि ईसुरी ने 'रजउ' से सम्बन्धित केवल तीन सौ साठ फागें स्वीकारी हैं—'कहीं तीन सौ साठ 'ईसुरी' रजउ-रजउ की फागें', फिर बाकी फागें उससे अधिक होंगी और इस आधार पर लोकसंस्कृति से संबद्ध व्यापक पटभूमि को सामने रखने से ईसुरी की काव्यप्रेरणा 'लोक' या उनके गाँव का लोक सिद्ध होती है। वह लोक, जो गाँव के विश्वास, सोच, संस्कार और चालढाल से बना है और गुइयाँ, गोरी, धन, प्यारी, रेजा, रजनिया, रजउ आदि जिसकी नायिका हैं तथा मित्र, मित, बलम, बालम, सैयाँ, छैला आदि उसके नायक। भले ही 'रजउ' को ईसुरी ने अधिक महत्त्व दिया हो, लेकिन इन्हीं सम्बोधनों का प्रयोग फागकारों ने किया है। दूसरा प्रश्न है कवि की वैयक्तिकता या निजता के सम्बन्ध में। ईसुरी के समय फागों की अपनी परिपाटी थी और फड़ की एक विशिष्ट शैली। फिर 'रजउ' या 'रजउ' की फागें कितनी परम्परायुक्त हैं और कितनी मुक्त। मतलब यह है कि उन फागों में व्यक्त लोकप्रेम कितना परम्परित है और कितना कवि का अपना। इन पर ठीक से विचार करना जरूरी है, नहीं तो किसी एक प्रसंग पर बने आग्रह से गलत निर्णय निकलेंगे। असल में ईसुरी की सारी फाग-सम्पदा के प्रकाशन के उपरान्त ही इस दिशा में कोई अंतिम निर्णय सम्भव है।

रचना-प्रक्रिया

फागों के सम्बन्ध में पहले यह भ्रान्ति थी कि वे लोकरचित हैं, किन्तु पुनरुत्थान के फागकारों और खासतौर से ईसुरी ने इस कुहरे को साफ कर

दिया है। इस कारण फागों की रचना-प्रक्रिया पर विचार करना उचित है। फागकार एक तो एकान्त में फागें रचता है, दूसरे सम्वाद की स्थिति में। सम्वाद का मतलब है—किसी से कुछ कहने या उत्तर देने अथवा किसी के द्वारा कही या गायी फाग के जोड़ में फाग की तुरन्त रचना करना। इसे आशु-कवित्व भी कहते है। यह गुण अधिकांश फागकारों में मिलता है। फड़ के प्रतियोगी दलों के अपने-अपने कवि और कविगुरु होते हैं, जो कि तुरन्त जोड़ की फाग बनाकर अपने दल को पराजय से बचा लेते हैं और विजयश्री वरण कराने में सहयोग देते हैं। वास्तव में आशुकवित्व अखाड़ों और फड़ों की ही देन है।

ईसुरी आशु-कवि थे और फड़ों में नयी फागें रचने में सिद्धहस्त। प्रमाण के रूप में चन्दपुरा के ठाकुर गम्भीर सिंह को लिखे पत्र से फाग की एक पंक्ति उद्धृत है—'दरवाजे पै बना ईसुरी नई-नई फागें गावें।' ईसुरी फड़ों में गाते भी थे। प्रतिद्वन्द्विता के अलावा सम्वाद की दो स्थितियाँ और हैं। एक तो बेड़िनी जब नृत्य करती थी, तब कवि का मन फाग रचने को मचल पड़ता था। नृत्य उसकी प्रेरणा बन चुका था। दूसरी, बात-की-बात में फाग सुना देना कवि की विशेषता थी। एक बार हाकिम के सामने मुकदमे की एक पेशी में उन्होंने फाग में गवाही दी थी। वे कभी-कभी फागों में अपने पत्र लिखा करते थे, जो तुकबन्दी न होकर टकसाली बन पड़े हैं। इस प्रकार सम्वाद की स्थितियों में ईसुरी ने अगणित फागें लिखी होंगीं, किन्तु उनमें अधिकांश उपलब्ध नहीं हैं।

फागों की रचना-प्रक्रिया में सम्वाद की स्थिति अधिक महत्त्व की है, क्योंकि उसमें रचनाकार की मानसिकता पूरी तरह उसी तरफ लगी रहती है। उसके सामने विषयवस्तु का एक खास टुकड़ा रहता है और उसमें डूबी या पगी एक विशिष्ट भावदशा उसके मन को चुम्बक की तरह खींचे रहती है। मतलब यह है कि उन चुने हुए क्षणों में वह उसी में लीन रहता है और उसकी कल्पना चील की तरह खुले आसमान में उड़ती हुई भी अपनी पैनी आँख उसी वस्तु की तरफ गड़ाये तुरन्त झपट्टा मारती है। चुनौती-सी होने के कारण बुद्धि सजग रहती है और कथ्य की भंगिमा का राजमार्ग भी प्रशस्त रहता है। ऐसे विशिष्ट क्षणों में कवि किसी बेजोड़ फाग की रचना करने में सफल होता है, लेकिन एक खतरा यह है कि अतिरिक्त सजगता के कारण यदि हृदय की जगह बुद्धि या भावना के आसन पर तर्क बैठ जाता है, तो रचना में चमत्कार अधिक होता है। दूसरी बात यह है कि कवि का मन एक सीमित दायरे में

बँधे होने से रचना भी बँधी-बँधाई सरणियों में चक्कर लगाती रहती है। फड़काव्य की निर्बलताओं के चक्रव्यूह से कोई निराला अभिमन्यु ही निकल पाता है। ईसुरी ऐसे ही अभिमन्यु थे। उन्हें लोकानुभूति की अमोघ शक्ति मिली थी, इसी से वे तमाम चक्रव्यूहों का भेदन कर सके।

फागकार एकान्त में कम लिखता है, क्योंकि उसका हर क्षण लोक से घिरा रहता है। फिर भी ऐसे पुण्य नक्षत्र आते हैं कि रचनाएँ अवतरित होती हैं। फर्क केवल इतना है कि लोककवि का लोकमानस किसी भी लोकानुभव से सम्वेदनशील होकर अपनी लोककल्पना के पंखों पर विचरण करने लगता है, उसे बहुत गहरे सोच या अनुभूति के गहन स्तर की जरूरत नहीं होती। इसीलिए बहुत सहज रूप में लोकसंवेद्य लोकभावों को वह तुरन्त ही लोकधुन में ढाल लेता है। उसके सामने न तो कोई निजी आग्रह होता है और न आयासित अभिव्यंजन-शिल्प। इतना अवश्य है कि फाग की लोकधुन इतनी रचपच जाती है कि वह उसके अंतर्मन में गूंजती रहती है। किसी भी क्षण एक-दो बार गुनगुनाने के बाद फाग के चरण ऐसे निकल पड़ते हैं जैसे कविता स्वतः प्रस्फुटित हो रही हो। इसीलिए ईसुरी बात-बात में फाग कह उठते थे, मानो उनकी 'जीभ में भुमानी' (सरस्वती) बस गयी हों।

कवि की एक पंक्ति—'मैं अपड़ा अच्छर ना जानों भूली कड़ी मिलइये' के आधार पर कुछ लोग कह सकते हैं कि ईसुरी पढ़े-लिखे न थे। ऐसी बात नहीं है, यह तो कवि का सरस्वती के प्रति विनम्र निवेदन है, अपनी लघुता दर्शाने के लिए। उनकी कुछ फागों से ऐसा आभासित होता है कि उन्हें काव्यरीति तक का थोड़ा-सा ज्ञान था, भले ही रीतिकालीन छंदों के स्वाध्याय से हुआ हो। यह भी संभव है कि कवि ने कोई नायिका भेद शैली का छंद सुना हो और उसका भाव लेकर फाग रच दी हो। कुछ उपमाओं के सहज जड़ाव से भी पता चलता है कि काव्यत्व के प्रति उनकी सहज रीझ थी। इस तथ्य की पुष्टि अन्य फागकारों और खासतौर से फाग के फड़ों की नायिकाभेद वाली चर्चाओं से की जा सकती है। मतलब यह है कि ईसुरी और अन्य फागकार अपनी फागों की रचना के प्रति कुछ सजग भी थे। फड़ों में उनकी सजगता और अधिक बढ़ जाती थी। इस कारण कुछ फागें उतनी अनगढ़ नहीं हैं। कुछ फागकारों में तो शास्त्रीय रंग भी दिखाई पड़ता है। लेकिन ईसुरी की विशेषता यह है कि वे अपनी सहजता में बेजोड़ हैं। उनकी सहज लोकानुभूति और लोकाभिव्यक्ति ने उनकी फागों को इतना लोकप्रिय बनाया है, इसमें कोई संदेह नहीं।

शुक्लाना,
छतरपुर (म० प्र०)

ईसुरी की फागों में रूप-सौन्दर्य

● डॉ० रामशंकर द्विवेदी

ईसुरी रसिक कवि थे। रूप के प्रति उनमें असीम ललक थी। उन्होंने नारी-रूप का सरस और विविधमुखी वर्णन किया है। उनके रूप-वर्णन में कहीं तो परम्परित पद्धति का अनुसरण मिलता है और कहीं लोकहृदय में उठनेवाली रूप के प्रति ललक की सहज प्रेरणा। ईसुरी के रूप-चित्रण को नायिका-भेद परिपाटी का नहीं कहा जा सकता, यद्यपि नख-शिख-वर्णन में इस तरह का आभास कहीं-कहीं मिलता अवश्य है। उनकी फागों में रूप का द्रष्टा ईसुरी का मन है। उन्होंने परकीय अनुभूति का चित्रण न करके स्वानुभूति का चित्रण किया है, जिससे उनका सौन्दर्य-चित्रण जीवन्त और सहज है। गोपिकाओं और कृष्ण-प्रसंग में अवश्य रूपद्रष्टा कृष्ण या गोपिकाएं हैं, किन्तु लोक में सहज रूप का भावक ईसुरी ने अपने मन को ही बनाया है। वे अपनीनारी-सौन्दर्य-चित्रण की फागों में सदा पाठक के साथ-साथ चलते हैं। उनके वर्णन का केन्द्रबिन्दु स्वयं उनका मन है। इससे दो लाभ हुए हैं। एक तो नारी-रूप-चित्रण के शृंगारी प्रसंगों में अगर कुछ कहे, तो उन सारे आक्षेपों को ईसुरी अकेले अपने पर ओढ़ लेने को तैयार है। दूसरे, ऐसा करके ईसुरी ने अपने इस लोकहृदय का परिचय दिया है, जिसके बिना लोकानुभूति का साधारणीकृत रूप उपस्थित नहीं किया जा सकता।

नारी की देह सौन्दर्य की आगार है। शोभा का अनुप्राणक धर्म यौवन माना गया है— तत्रापि नवयौवन। शरत्चन्द्र के 'चरित्रहीन' उपन्यास की नायिका दिवाकर को समझाती है कि युवावस्था में ही आकर्षण क्यों होता है। उसने मनोवैज्ञानिक धरातल पर इसका कारण सर्जनशक्ति का नारी-देह-यष्टि में अविरल प्रवाह माना है। उसी का विस्फोट यौवन है, उसी की अभिव्यक्ति नारी-देह-यष्टि को एक आरोह-अवरोह, रूप की लय, अंगों का सुन्दर विनिवेश प्रदान कर देती है। ईसुरी ने भी नारी-रूप-चित्रण में इस तथ्य की ओर संकेत किया है— बचपन के यौवन में रस कहाँ (विहारी—अली-कली ही सों बँध्यो)[१]।

१—'ईसुरी'—इन वारे जोवन पै रस कांसें आ जावै।

जब तक मदन-भूप रूप का प्रमाण-पत्र न दे, तब तक कली कच्ची रहती है, उसमें कोई रस नहीं रहता। बिना गुरुजन का कोट फीका दिखाई देता है। शरत् की किरणमयी कहती है—नारी का बाल्यरूप पुरुष को अपनी ओर आकृष्ट भले ही करे, लेकिन उसे मतवाला नहीं बना देता। सृष्टि करने की क्षमता ही उसका रूप और यौवन है (यह सृष्टि करने की इच्छा ही उसका प्रेम है)।[१]

ईसुरी रूप-चित्रण मे कहीं-कहीं प्रतीक पद्धति का सहारा लेते हैं। वे यौवन-सौन्दर्य का चित्र बाग के माध्यम से खींचते हैं। फूलों और लताओं में एक तरह का हरियालापन, लहलहाने का भाव होता है। लताएँ पुष्प-भार से लद कर लफ जाती हैं। बाग फूलों से हँसने लगता है। ईसुरी कहते हैं—यह शरीर प्रियतम का सुन्दर बाग है। सौभाग्य के अमृत से यह सिंचा है।[२] इसी कारण अँगिया के भीतर श्रीफल फलित-विकसित हो रहे हैं और मद रस स्रवित होता रहता है। कमल-कली विकसित हो चुकी है। मधुकर अधरों का रस ले रहा है। ईसुरी सहज परिहास में 'बलम' को एक सीख देते हैं कि हे बन्धु ! इसकी रक्षा किये रहना जिससे गली का छैल इसे छू न पाये। ईसुरी को नैतिकता का कितना ध्यान था, साथ में मानव की सहज प्रवृत्ति का और जीवन का अनुभव कितना खरा था— राखिये नारि जदपि उर माँही युवती शास्त्र नृपति वश नाहीं।[३] एक फाग में स्वयं कहती है—हे प्रियतम ! तुम्हारा बाग तैयार है इसका किसे रसवाला बनाते हो ! मेरा यौवन नारियल की तरह है, इन्हें कोई उजार न दे। ईसुरी यौवन को कहीं श्रीफल कहते हैं, कहीं नारियल और कहीं अनियारा।[४]

यौवन छाये सौन्दर्य का चित्रण ईसुरी ने कई स्थानों पर किया है। उनके वर्णन सहज और व्यंजनापूर्ण हैं। अवयवों से झलकते सौन्दर्य को ईसुरी 'पानी' कहते हैं, जो मोती की छाया तरलता की तरह अंगों से झरते-छलकते रूप तथा छवि को द्योतित करता है—आ गई रजउ पै भरदर ज्वानी, दुनिया देख ललानी।[५] यौवन का चित्र देखिये— हुमसे फिरत उड़हनी ऊपर, छतरी-सी घर तानी। केवल इतना ही नहीं। युवावस्था के साथ मन में चाह का भी विकास हो चुका है इसलिये—जो मिल जात गैल-खोरन में, देखते ही मुस्कराने लगती है। ईसुर का अनुभव देखिये— ईसुर कईयक फिरत पियासे, कबै मिलै

१—चरित्रहीन—पृष्ठ २८७—हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर। २—प्रियेषु सौभाग्य फलाहि चारुता—कुमार सम्भव, ५वाँ सर्ग। ३—तुलसी—रामचरित मानस। ४—कात ईसुरी सुन लो प्यारी, जुबन उठो अनयारो। ५—ईसुरी प्रकाश—१८६वीं फाग।

जो पानी। यह पानी साधारण नहीं। यह रूप का जल है, जिसे पीने से चखने की तृष्णा बढ़ती जाती है—

नैन सलोने रूप की जु न चख तृषा बुझाय।
त्यों-त्यों प्यासेई रहत, ज्यों-ज्यों पियत अघाय ॥[1]

पूरी देह को ईसुरी ने कहीं-कहीं सोने की और यौवन को कञ्चन का कहा है—सोने की जा बनी देइया, कंचन जुबना दोई।[2] लेकिन प्रिय के बिना इनका सौन्दर्य बेकार है। ईसुरी के मत से प्रिय के सन्दर्भ में ही नारी-रूप-सौन्दर्य की सार्थकता है। इसीलिए वे उसे सौभाग्यरूपी अमृत जल से सींचते हैं। इसके पीछे भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी आस्था व्यक्त हो रही है। पर-कीया रति को ईसुरी इसी कारण बहुत मान नहीं देते हैं—भोंरा जात पराये बागन। अपनी कली जो खूब फली है, रसदार है, वे उसी के प्रति समर्पण को अच्छा समझते हैं।

ईसुरी का नख-शिख-रूप-चित्रण विविधमुखी है—कहीं तो उन्होंने राधा के माध्यम से नख-शिख-चित्रण किया है, कहीं रजउ के माध्यम से और कहीं किसी भी नारी के माध्यम से। राधा की नख से शिख तक देहयष्टि भली लगती है। विभिन्न अंगों के सौन्दर्य-चित्रण के लिये ईसुरी परम्परित उपमानों को चुनते हैं—केहरि, कदली, श्रीफल, दाड़िम और गतिमण्डल के सामने गज का गमन भी फीका लगने लगता है। आनन्दकन्द मन्द मुस्कान से तो कृष्ण का मन मुग्ध हो जाता है। सुकृत की सुबास उड़ रही है, क्या ही शोभा की सिरमौर है।[3]

ईसुरी ने द्रष्टा के सन्दर्भ में ही नारी-रूप के चित्र खींचे हैं। इसलिए उनके सौन्दर्य-चित्रण में प्रभाव का अंकन सर्वत्र है। उनका रूप-चित्रण सहज और रूढ़ि से मुक्त है। उन्होंने रूप-चित्रण में किसी खास परिपाटी का अनुसरण न करके एक साथ समूचे सौन्दर्य का चित्रण किया है। ईसुरी कहते हैं—बिसरत नहीं बिसारी, हेरन-हँसन तुमारी।[4] हँसकर हेरने का चित्र भला ईसुरी क्या कोई भी सहृदय कैसे भूल सकता है। ईसुरी को इसके साथ विसाल यौवन, मतवारी चाल, इकहरा शरीर, पतली कमर, कमान-सी भौंहें, तिरछी नजर अच्छी लगती है। वे याचना करते हुए कहते हैं—हे प्रिय ! मेरी ओर थोड़ा देख लो।

१—विहारी सतसई। २—१५८वीं फाग। ३—६६वीं फाग।
४—१३२वीं फाग।

सुन्दर, सुडौल देहयष्टि पर भी ईसुरी को नजर पड़ी है। रजउ का एक-एक अंग कितना सुडौल है। कैसा बंदवारा बना है।[1] ईसुरी की पूरी देहयष्टि मानों साँचे में ढली हुई मूर्ति की तरह है। जघन प्रदेश मसीला है, उदर त्रिवली से युक्त है। पेट भी सुविकसित है। गोर वर्ण, श्याम परिधान पहनने में कितना प्यारा लगता है। चलती हैं, तो नृत्य का छन्द बज उठता है। ऐसा लगता है जैसे मतवाला हाथी झूमता चला आ रहा हो। इसमें गति, त्रिवली, उदर, जघन प्रदेश और अंगों के सुडौलपन का चित्र है।

नख-शिख का एक और चित्र देखिये—विधाता ने तुम्हें खूब रूप दिया है। ऐसा किसी का नहीं है। इसका मुँह लमछारा-लम्बा है। गोरवर्ण वाली नारी छवि की कान्ति से युक्त और पानीदार है। कपोल गेंदा के फूल-से खिले हैं। इतनी सुन्दर कि बलइयाँ ले लें। लाल धोती इसके शरीर पर कितनी फबती है ! बाँहें कनकलता की तरह हैं। ईसुरी कहते हैं—तुम लालच दे-देकर मिलने के लिए फिर रही हो।[2] सोचिये ईसुरी का मनोविज्ञान कितना अनुभूत रहा होगा इसलिए ईसुरी का सौन्दर्य-चित्रण सपाट नहीं। उन्होंने अपने रूपवान् का बाह्य सौन्दर्य ही नहीं, उसके मन की भी झाँकी देने का प्रयास किया है, जो उनकी लोकजीवन की पकड़ को सिद्ध करता है। ईसुरी सचमुच लोककवि थे।

ईसुरी ने नख-शिख-चित्रण के साथ रूप की अनवद्यता, अनुपमेयता लोकोत्तरता का संकेत कई फागों में किया है। ईसुरी ने नारी-रूप-चित्रण में उसकी दीप्ति, वातावरण को प्रोद्भासित कर देने के गुण का चित्रण किया है। उसके आनन में ओप है, उजास है, चमक है, कान्ति है।

ईसुरी की राधा की देह दिवारी के दीपक की तरह जगमगा रही है। नेत्रों को देखकर कमल सम्पुटित हो जाते हैं और चकोर मुखचन्द्र की ओर एकटक देखने लगते हैं।[3] वयः सन्धि का सौन्दर्य देखिये—चलतीं कर खाले खाँ मुइयाँ, रजउ बैस लरकइयाँ।[4] और चलते समय कमर तीन जगह से लचक जाती है। हँसती हैं तो फूल-से झर पड़ते हैं। ईसुरी हँसी की अनुपमेयता के लिए कहते हैं—ये फूल किसी बाग में नहीं मिलते।[5] ईसुरी के मत से वे

१—१८४-वीं फाग। २—३५८वीं फाग। ३—४३वीं फाग।
४—१६०वीं फाग।
५—हँसतन मुख झर परत फूल-से, जो बागन में नइयाँ।
धन्य भाग्य वे सइयाँ 'ईसुर' जिनकी आयँ मुनइयाँ।१६०।

धन्य हैं जिनकी ये प्रिया हैं। ईसुरी कहते हैं—तुम मुझे संसार में अकेली दिखा[ई] दीं। तुम ऐसी अलबेली 'सुन्दर' हो कि संसार में तुम्हारे जैसा कोई दिखा[ई] नहीं देता—सूजी इन आँखन अलबेली, जग में रजउ अकेलो।[1] ईसुरी [की] 'रजउ' का सौन्दर्य वातावरण को प्रोद्भासित करने वाला है। ईसुरी कहते हैं, तुम्हारे सौन्दर्य का चमत्कार मैं कहाँ तक वर्णित करूँ। तुम जहाँ ठाड़ी हो जा[ती] हो, वह धरती तक दिपने लगती है—

हम पै इक मुख जात न बरनी, रजउ तुमायी करनी।
जाँ ठाड़ीं हो जातीं जाकें, दिपत लगत बा धरनी।[2]

रजउ के मुख की ज्योति से चकाचौंध मच जाती है। ऐसा तेज है उसमें, ऐसा लगता है श्याम घटा के अन्तराल से बिजली कौंध उठी हो।[3] ईसुरी की रजउ संसार में अकेली है। वैसो दूसरी कहाँ! ऐसो बनो रजउ लासानी, दूजो नहीं दिखानी।[4] रजउ के मुंह की दीप्ति से सारा संसार दीप्त हो र[हा] है—रजउ से मोंसें दिपत ईसुरी, मातावन की भबकी।[5] यही नहीं, ईसुरी का कहना है—मेरी रजउ से बढ़चढ़ के सुन्दर कौन है, जो डगर चलते प्राणि[यों] को मोह लेती हो। रजउ के अंगों में कोल-कोलकर विधाता ने ईंगुर भरा है। उनके कपोलों पर गुदना तिल का आभास करा रहा है। उठता हुआ यौवन [रूप] और विरहा का जोर बढ़ा देता है।[6] ईसुरी कहते हैं—रजउ की शोभा का वर्णन कैसे करूँ? किसकी उपमा दूँ। यह तो बड़कें चोज है। इकीसई सोन[ा] है, इसे क्या परखना। यह तो बारहबानी सोना है।

यहाँ तक निरलंकृत रूप-सौन्दर्य का चित्र हमने देखा। ईसुरी की नारी आभूषणों से भी सज्जित होती है। उसके गहने लोक-प्रचलित हैं। प्रसाधन का उसका अपना तरीका है। ईसुरी ने गँवई-गाँव की शब्दावली के सहारे उसके प्रसाधित, आभूषणों से सज्जित रूप का चित्रण किया है। उनकी नारी गुदना गुदवाती है, पटियाँ पारती है, वेंदा लटकाती है, पान खाती है, केशों को सँवारती है, पैंजना पहनती है, माथे को बिन्दी से सजाती है। कानों में त[र]कुला, हाथ में बजुल्ला, उँगलियों में छल्ला धारण करती है। नेत्रों में काज[ल] की कोर देना उसका प्रिय आभूषण है। गले में मोतियों की माला, लोककला से छपी अँगिया, नीली-लाल-स्यामली साड़ी उसका सहज परिधान है। तिरछी चितवन, मृदु मुस्कान, अदाभरी चाल उसकी मुद्राओं का सौन्दर्य है।

१—१६१वीं फाग। २—१६२वीं फाग। ३—१७८वीं फाग।
४—१९६वीं फाग। ५—१९८वीं फाग। ६—१९९वीं फाग।

प्रतीक्षारत नयन, प्रेमरंग से भीगे अरुणारे कोये, अंजन-रंजित नेत्र, आड़े-तिरछे तिलक से सज्जित भाल ईसुरी के रूप-चित्रण के प्रिय प्रतिमान हैं।

वृषभान लली के मुख पर काला बूँदा उसके नीचे केशर की बिन्दी और ऊपर झलमलाता सोने का बेंदा जैसे शनि, गुरु और भानु चतुर्मण्डल में एकत्र हो गये हों। ईसुरी की सौन्दर्य-दृष्टि ने परस्पर शत्रुओं में भी मैत्री उत्पन्न कर दी है। ईसुरी कहते हैं—राधा ने धमाके के साथ अपना मुख ढँक लिया, जिससे नजर न लग जाय। ईसुरी के अनुसार मुख ढँककर भी लाड़िली ने गिरिधर का मन हर लिया।[1] छनकदार पैंजना से तो ईसुरी का रोम-रोम खिल उठता है—मन धीरज खो देता है। पैंजनों में ककरा पड़े होते हैं। ईसुरी कहते हैं—हाय किसने ये कसकन भरे कंकड़ इन पैंजनों में डाल दिये हैं—

चलतन परत पैंजना छनके, पाँवन गोरी-धन के।
सुनतन रोम-रोम उठ आउत, धीरज रहत न तन के।
ईसुर कौन कसाइन डारे, जे ककरा कसकन के।[2]

ईसुरी ने कई फागों में केशों के सौन्दर्य का चित्रण खींचा है। सजे-सँवरे केशों के साथ मुक्त, खुले और सद्यःस्नाता के केशों तक पर ईसुरी की दृष्टि गयी है। केश नारी रूप को और उद्भासित कर देते हैं। वे उसके गोर मुख-मण्डल को एक परिवेश प्रदान करते हैं, जिससे उसके मुखमण्डल का सौन्दर्य और निखर उठता है। राधा के केश इतने श्याम हैं कि भौंरों को भी उन्हीं से कृष्णता मिली है और माँग इतनी स्वच्छ है कि खल का कालुष्य भी धुल जाता है। वेणी का सौन्दर्य तो त्रिवेणी के फल को प्रदान करताा है।[3] राधा केश छोरें सरोवर में नहाने जा रही हैं। कुछ लटें कपोलों पै आ गयी हैं, जिससे कपोलों की कोरें दब गयी हैं। उस समय मिट्टी से सिर धोने का चलन था। गाँव में शैम्पू या आँवला आदि क्या उपलब्ध होगा। ईसुरी ने अपने आस-पास की वस्तुओं का उपयोग किया। इसलिए वे लिखते हैं—

करन, नहान जात सरवर खाँ, सीस मृत्तिका घोरें।
मनो फनीं पै मढ़ी काँचरी, लामी लटें करोरें।

केश, बाँह, कमर, देहयष्टि, वेंदा, पैंजना, वर्ण सौन्दर्य के साथ ईसुरी ने सर्वाधिक फागें नेत्र-सौन्दर्य वर्णन पर लिखी हैं। ईसुरी की नारी काजल आँजने की बड़ी शौकीन है। नेत्र चाहे अवगुण्ठन में रहें, चाहे खुले, उनकी मारक

१—६४वीं फाग। २—२७३वीं फाग। ३—४२वीं फाग।

शक्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। ईसुरी ने हँसोहें, तिरछे, चंचल, अंजन-रंजित, प्रेम भरे नेत्रों का चित्रण किया है। उनकी दृष्टि में नारी सौन्दर्य नेत्रों के द्वारा ही सवाक् हो उठता है। नेत्र ही आकर्षण के प्रधान कारण हैं। नेत्र ही सौन्दर्य के प्रति उठी चाह का प्रत्युत्तर देते हैं। नेत्र सौन्दर्य की वाणी हैं। इसलिए ईसुरी ने अपनी कला की अञ्जलि सर्वाधिक नेत्रों को समर्पित की है।

नेत्रों में जब काजर की कोर डारी जाती है, तो उनकी मारक शक्ति बढ़ जाती है और मुखमण्डल का सौन्दर्य, रूप की छवि कई गुनी हो जाती है। उसका प्रभाव वश में करने वाला होता है—

> डारी रूप-नयन की फाँसी, दै काजर बिस्वासी।
> कोरन कोर डोर काजर की, मन-मोहन कैं आँसी।[1]

अलबेली के नेत्रों का सौन्दर्य क्या कहें। सम्मुख जो पड़ जाता है, बिंध जाता है। लक्ष्य पर चोट लगती है। पक्षी उड़ नहीं पाता।[2] ईसुरी को पता है किन नेत्रों का सौन्दर्य अधिक बेधक होता है। स्थिर नेत्रों का सौन्दर्य एक बात है, लेकिन जब वे तिरछे होकर भंगिमायुक्त भौंहों के साथ चलने लगते हैं, तो उनकी उपमा बाणों से ही देते बनती है। वे बरछी-से नुकीले और तीक्ष्ण हो जाते हैं। ईसुरी कहते हैं—हे पथिक! यदि कुशल चाहो, तो उस गली से मत जाना। मैंने आगाह कर दिया, करोड़ों घायल पड़े हैं।[3] ईसुरी ने आँखों को बाण, बरछी, पिस्तौल, तलवारें कहा है। इन उपमानों के आधार पर उन्होंने आँखों की तीक्ष्णता, नुकीलापन, अनियारापन, दीर्घता, अपांगों की चंचलता, मुद्राओं का सौन्दर्य वर्णित किया है।

नेत्रों के सौन्दर्य के सामने ईसुरी की दृष्टि में उपमानों का सौन्दर्य फीका पड़ जाता है। एक फाग में उन्होंने व्यतिरेक अलंकार की इस रूढ़ि का अनुसरण किया है। वे कहते हैं—तुम्हारे नेत्रों की अरुणिमा को देखकर सरोज छिप गये हैं। मृग शिशु भी भय त्यागकर वन में कहीं दूर जा बसे हैं। नेत्र खंजनों से भी अधिक चंचल हैं, इसलिए उनकी उपमा नहीं दी जा सकती।[4]

ईसुरी ने रूप-वर्णन में वर्ण-सौन्दर्य की दृष्टि से केवल गौर वर्ण को ही महत्त्व नहीं दिया है, कृष्ण वर्ण के सौन्दर्य को भी उरेहा है। काली तो प्राणों से भी प्यारी लगती है। वे कहते हैं—कृष्ण वर्ण की नारी के सौन्दर्य में क्या कमी है और गोरी में क्या अधिक है। वे कहते हैं—मेरे मन में तो काली का ही सौन्दर्य बस गया है।[5]

१—९५वीं फाग। २—१२२वीं फाग। ३—१२३वीं फाग।
४—१३७वीं फाग। ५—३३५वीं फाग।

रवीन्द्र की एक कविता है कृष्ण कली। उसमें वे कहते हैं—वह कितनी भी काली हो, उसके मैंने काले-काले नेत्र देख लिये हैं। ईसुरी का भी ऐसा ही अनुभव था। उन्होंने कृष्ण वर्ण के अन्तराल में खिले रूप के प्रगाढ़ दर्शन कर लिये थे।

ईसुरी ने अपनी फागों में मुख-सौन्दर्य का भी वर्णन किया है। शिल्प की दृष्टि से यदि ईसुरी के काव्य का अनुशीलन किया जाय, तो उनकी विलक्षण सूझ-बूझ, कला की पच्चीकारी, वर्ण-सौन्दर्य, कल्पना विधान, उपमानों का सौन्दर्य देखने योग्य है। ऐसा लगता है ईसुरी ने डूबकर चित्र खींचे हैं।

रजउ के नग-नग में गोराई छा गयी है। उनका मुखमण्डल ऐसा दिपने लगा है मानो उस पर सोने का वर्क लगा दिया हो अथवा रजउ ने केशर खायी हो, जिससे रंग और दमकने लगा हो। ऐसा कहकर भी ईसुरी को संतोष नहीं होता है। वे कहते हैं—जैसे भोर की छटा हो अथवा उदित होते रवि की आभा। एक साथ कितने उपमानों और बिम्बों को घटाकर ईसुरी 'रूप' का चित्रण करते हैं। सोने के वर्क, केशर, घूंघट से छन कर पड़ती धूप, भोर की छटा और उगते सूर्य की झाईं, एक साथ कितने व्यापार।

नारी-रूप सौन्दर्य के साथ-साथ ईसुरी की दृष्टि प्रकृति-रूप-सौन्दर्य पर भी पड़ी है। यद्यपि फागों में ईसुरी ने रूप-सौन्दर्य-चित्रण में प्रकृति का उपयोग किया है, किन्तु कुछ फागों में वे प्रकृति को ही केन्द्र बनाकर जीवन-संवेदना का चित्र खींचते हैं। प्रकृति के चित्र यद्यपि उद्दीपनकारी हैं, फिर भी उनसे ऋतु-सौन्दर्य की एक झलक मिल जाती है। ईसुरी ने वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त के बड़े सजीव, मानव संवेदना में रँगे चित्र खींचे हैं।

अब तो वासन्ती बहार की ऋतु आ गयी है। डालें, पत्तों, फूलों, फलों से लद गयी हैं। आमों में लगे बौरों के ऊपर भौंर गुंजार करने लगे हैं। जिनके प्रियतम बाहर हैं, उनकी आफत ही समझिये। और कोयल के शब्द सुनकर तो योगी तक अपना वैराग्य भूल गये हैं। शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु तो प्रीति को बढ़ाने वाली है। एक फाग में तो ईसुरी यहाँ तक कह देते हैं कि अब ललित वसन्त के दिन नजदीक आ गये हैं। टेसू और कदम्ब दोनों फूल गये हैं। क्या ही अच्छा होता, ईसुरी को धीरे पण्डा के साथ यमुना-तट पर बसने को मिलता। और दोपहर वह भी गर्मी की कटाई नहीं कटती। एक में नायिका कहती है—चले जाना, लू के थपेड़े जरा पटा जान देओ। अब तक घर में बिलम लो।

> जइओ पटा जान दो लूकें, घरइ में डारें फूंकें।[1]

१—१०९वीं फाग।

और बरखा तो बैरिन है। सखी को सीख देत है—चढ़कें अटा, घटा देखें, पटा देउ अंगनाई। और बूंदें तीर-सी लगती हैं। अन्यत्न तो प्रकृति का उपयोग उन्होंने प्रतीक रूप में ही अधिक किया है।

पीछे संकेत किया जा चुका है कि ईसुरी ने रूप का चित्नण सदैव किसी-न-किसी द्रष्टा के सन्दर्भ में किया है। बिना सराहने वाले के सौदर्न्य का मान कहाँ ? सौन्दर्य की यही सार्थकता है कि उस पर प्रिय की स्नेह-दृष्टि पड़े। बिना स्नेह के उसे सौभाग्य नहीं मिलता। ईसुरी इस तथ्य से अवगत थे। इसलिए उन्होंने रूप का जो भी चित्नण किया है, वह मर्यादित है और प्रिय की स्नेह-संवलित दृष्टि से सौभाग्यवान्। ईसुरी ने रूप-चित्नण में उसके प्रभाव की गहराई, बेधकता, आकर्षण और उसकी शक्ति का संकेत अवश्य किया है। सौन्दर्य का प्रभाव कैसा होता है, इसकी कुछ बानगी ईसुरी द्वारा प्रयुक्त शब्दावली के माध्यम से ली जा सकती है।

रंग-रूप प्राणों को मुग्ध करने वाला है, इसका स्वाद स्नेह-अमृत का सुख देने वाला है, रूप व्याकुल कर देने वाला है, रूप-सौन्दर्य वर्णन से परे है, इस पर नजर पड़ते ही बार-बार देखने की इच्छा होती है—उनखाँ चलो देखिए फिरकें, भरकें एक नजर कें। रूप का रंग तो कोयों के अन्दर तक भर जाता है। लाज खो जाती है, नेत्न घूंघट के वश में नहीं रहते हैं। नेत्न-सौन्दर्य-वर्णन में तो एक प्रकार से रूप के प्रभाव को ही आँका गया है। नेत्न शिकारी हैं, करोड़ों घायल हो गये हैं, ये अनियारे हैं, वार करने वाले हैं। एक में तो प्रभाव वर्णन में ईसुरी ने यहाँ तक कह दिया है—नैना काजर भर कें मारे

हाय हाय कर गिरे 'ईसुरी' गिरनत आये तमारे।

रूप में मन इतना लुभा जाता है कि उसके बिना प्राण भड़भड़ाते फिरने लगते हैं। देह काँपने लगती है।

ईसुरी की फागों का शिल्प की दृष्टि से भी अपना एक सौन्दर्य है। कला का भी अपना एक रूप होता है। वर्णन की भंगी या कहने का मुहावरा भी उपेक्षा की वस्तु नहीं है। जैसे ईसुरी ने कहा कि मुझे तुम्हारा हँसकर हेरना भूलता नहीं है, उसी तरह ईसुरी का बात कहने का ढंग भी भूलने की वस्तु नहीं है। ईसुरी की भाषा बहुत मधुर है। कहने का ढंग अत्यन्त प्रभावकारी है। सुनते ही सब बेसुध हो जाते हैं। ईसुरी की फागों की कला को जब नाचने वाली अपनी लय पर उतारने लगती है, तो छमाका मच जाता है। ईसुरी में मुहावरों, प्रतीकों, बिम्बों, शब्द-चयन और अलंकारों का अपना अलग सौन्दर्य है, उस पर फिर कभी, आज इतना ही।

—नारो भास्कर, जालौन, उ० प्र०

ईसुरी के काव्य में प्रेम-तत्त्व

● डॉ० वीरेन्द्र 'निर्झर'

लोककवि ईसुरी रससिद्ध शृंगारी कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। वे प्रेम के सच्चे उपासक, सौन्दर्य के कुशल पारखी और पाठक के हृदय में सहज ही घुल-मिल जाने वाले सिद्धहस्त कलाकार हैं। प्रेम, ईसुरी के काव्य की सबसे बड़ी प्रेरणाशक्ति है और सौन्दर्य उनके जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि। फागों में उन्होंने प्रेम और सौन्दर्य के जो चित्न अंकित किये हैं, उनमें कवि-हृदय की युवावस्था सुलभ उद्दाम रूपासक्ति एवं गहरी प्रेमानुभूति सहज ही भाषा का छोर पकड़ समाज की निषेधात्मक दीवारों को धकियाती उमड़ पड़ी है।

आलम्बन-भेद से प्रेम के अनेक रूप हो सकते हैं, किन्तु प्रेम के अन्य भेदों की अपेक्षा स्त्री-पुरुष का प्रेम अधिक प्रभावशाली, तीव्र एवं व्यापक होता है। ईसुरी के काव्य में यही वासनामूलक प्रेम दो व्यक्तियों की परिधि तक ही सीमित न रहकर विभाव, अनुभाव, संचारी आदि से समन्वित शृंगार रस के रूप में सहृदय मात्न का आस्वाद्य बन गया है। ईसुरी के इस प्रेम-चित्नण में न तो भक्त कवियों के काव्य की-सी आध्यात्मिकता ही है और न रीतिकालीन नायक-नायिका, कृष्ण-राधिका की-सी अनन्यता। ईसुरी के नायक-नायिक तो नितान्त लोक-सामान्य व्यक्तित्व हैं। उनका प्रेम इसी धरती के स्त्री-पुरुष का प्रेम है, जिसका आधार है रूप और यौवन। ईसुरी की स्वीकारोक्ति है—

जौ लौं मदन भूप न आबैं, रूप सनद न पावैं।
कच्ची कली भली बालापन, रस काँ सैं आ जावैं।

ईसुरी का प्रेम वासनाजन्य लौकिक प्रेम है, जो नारी के स्थूल-सौन्दर्य पर ही अधिक रमा है। यद्यपि प्रेम के विकास में वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य—शारीरिक आकर्षण का अपना एक महत्त्व है, उसे झुठलाया नहीं जा सकता, तथापि प्रेम केवल वस्तुनिष्ठ ही नहीं है। वह आत्मिक भी है, जहाँ पहुँचकर शारीरिक आकर्षण की अपेक्षा आत्मिक सौन्दर्य के प्रति मन की ललक अधिक दिखायी पड़ती है। इससे उत्पन्न उल्लास से एक व्यापक सौन्दर्य चेतना आविर्भूत होती है। एक संवेदना, एक संवेग जागृत होता है। प्रेम की इस अन्तर्वृत्ति, प्रेम के

इस विशुद्ध और उदात्त सौन्दर्य के अनुभावन तक पहुँचने का शायद ईसुरी को अवकाश नहीं रहा। यह ईसुरी की ही बात नहीं, समूचे रीति-काव्य में घनानन्द जैसे कुछ एक को छोड़कर किसी ने भी प्रेम की इस आत्मिक सौन्दर्य की रेखा को भी नहीं छुआ। छूते भी कैसे ? नायिका के रूप-लावण्य से आगे देखने की उन्हें फुरसत ही कहाँ रही। बिहारी ने स्वीकार किया है—

तो तन अवधि अनूप, रूप लग्यो सब जगत को।
मो दृग लागे रूप, दृगनि लगी अति चटपटी॥

नायिका के रूप-लावण्य पर दृगों की यह अनुरक्ति बिहारी या ईसुरी की ही बात नहीं, सहृदय का सहज धर्म है। किन्तु प्रेम केवल रूप के प्रति आकर्षण ही नहीं है, वह उससे कहीं व्यापक है, उदात्त है। शरीरी सम्बन्ध उसकी एक सीमा है और आत्मिक दूसरी। ईसुरी के समूचे काव्य से यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रेम के प्रति उनकी मान्यताएँ लौकिक स्तर पर ही सर्वथा सिमट कर रह गयी थीं, प्रेम की पहली सीमा पर ही। लौकिक स्तर का मतलब यह नहीं कि यहाँ पर किसी पारलौकिक या अलौकिक स्तर की माँग की जा रही है। बल्कि यह कि उनके प्रेम-वर्णन में हृदय को व्यापक बनाने वाली प्रकाश की किरण नहीं है। ईसुरी प्रेम को खेल और रूप-सौन्दर्य को खिलौने से अधिक महत्त्व नहीं देते—

जो मों रजऊ लाड़लो तोरो, भओ खिलौना मोरो।
देखत में खबसूरत लागे, लगन थयोलत कौंरो।
गालन पै हैं पड़ीं गलूरियाँ, नईं लछरीं दौरो।
ईसुर जब सें जा छब देखी, हमें कछू न औरो।

सचमुच ईसुरी का मन इस खेल में खूब रमा है। खेल के लिए आवश्यक दाँव-पेंच, हाव-भाव, इशारों आदि में भी ईसुरी को काफी कमाल हासिल है। उनकी बहुत-सी फागें इन्हीं हावों-भावों की अभिव्यंजना रूप प्रस्फुटित हुई हैं। प्रेम के इस खेल में सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण लुक-छिपकर कार्य सिद्ध करने में—प्रेम का वह आवेग, वह उच्छलन नहीं है जो इन प्रतिबन्धों को अपनी प्रखर धारा में बहा ले जाता। यह तो एक उद्वेग बनकर रह गया है, जो कभी-कभी छोटे बच्चों जैसा खिलौने के लिए ठिनकता दिखायी पड़ता है—

मोरी रजऊ पठे दई गौने,
हा हा करतन हाँतन में से, लीनी छुड़ा खिलौने।

नायक में आत्मबल की कमी है, वह शायद इसलिए कि नायिका परकीया है और इसीलिए यह प्रेम एक खिलवाड़ बनकर रह गया है शारीरिक सम्बन्धों में सिमटा वासना की धरोहर जैसा।

फागों में प्रेम को खेल मानने वाले ईसुरी प्रेम की महत्ता और गहराई से पूर्णतः परिचित थे। उनका विचार था कि प्रेम कभी पुराना नहीं होता। ज्यों-ज्यों समय बीतता है वह और-और गहराता है उसकी सुगन्धि और-और गमकती है—

मधुकर होत न प्रीत पुरानी, उत्तम मन की जानी।
पथरी आग तजत है नइयाँ, रहै जुगन भर पानी।
जैसें फूल गुलाब पखुरिया, सूकें अधिक बसानी।
ईसुर कयें प्रीत उत्तम की, निबहै भर जिंदगानी।

किन्तु यह सज्जनों की बात है जो प्रेम को खेल नहीं जीवन का अंग बना लेते हैं और दूध में पानी की तरह एकप्राण हो जाते हैं—

जैसें मिलै दूध में पानी,......
हमरो और तुमारो जीजिउ, एकइ जाने रइयो।

संसार की ऊष्मा में सच्चे प्रेमी कभी पीछे नहीं हटते। जीवन के हर संघर्ष में प्रेम उनका प्रेय होता है—"करकै प्रीति मरे बहुतेरे, असल न पीछू हेरे।" पर यह सब प्रेम का सैद्धान्तिक पक्ष है, व्यावहारिक पक्ष में तो ईसुरी की रुचि प्रेम के नाम पर सौन्दर्य के उपभोग की ही रही है, जिसका उन्होंने आदर्शों की शालाकाओं से दूर उन्मुक्त रूप में चित्रण किया है।

ईसुरी के प्रेम का मुख्य आकर्षण केन्द्र शरीरी सौन्दर्य है, जिसको रूपायित करने के लिए कवि ने चार प्रकार के साँचों का उपयोग किया है—प्रभावात्मक रूप में, परम्परा के मेल में, वस्त्राभूषणों के बीच में तथा घरेलू और ग्राम्य वातावरण में।

प्रभावात्मक रूप में :—सौन्दर्य किसी अंग-विशेष की वस्तु नहीं है और न अंगों के सुषमा संस्थान में ही उसकी संस्थिति स्वीकार की जा सकती है। वह तो कुल मिलाकर एक ऐसा प्रभाव है, जो हमारी ऐन्द्रिय चेतना को, हमारी रागात्मिका वृत्ति को जगाने में पूर्णतः समर्थ होता है। एक चित्र देखें—

नंग नंग बने रजऊ के नोंने, ऐसे कीके होने।
गाल नाक औ भोंय चिबुक लग, अँखियाँ करतीं टोने।
ग्रीवा, जुबन, पेट, कर, जाँगें सब ही बहुत सलोने।

नायिका के अंग-प्रत्यंग की छवि, उनकी कान्ति, उनकी सुषमा सम्यक् रूप से हृदय पर एक ऐसा शहदीला प्रभाव छोड़ती है कि हमारी विचारणा के पंख उस सौन्दर्य मधु में ही चिपककर रह जाते हैं। कल्पना थम जाती है और बुद्धि उस लावण्य के आस्वाद्य को—'सब ही बहुत सलोने' से आगे व्याख्यायित नहीं कर पाती। ऐसा प्रभाव है इस 'सलोने' शब्द में जिसकी कान्ति में सभी अंग जगमगा उठे हैं। नायिका के अंग-अंग से उभरती हुई उस छवि की चमक को उचित रूप में प्रस्तुत करने में कविकर्म यहाँ असमर्थ दीख पड़ता है और वह बस इतना कहता है—

हम पै इक मुख जात न बरनी, रजऊ तुमाई करनी।
जाँ ठाँड़ी हो जातीं जाकैं, दिपन लगत बा धरनी।

उक्त पंक्तियों में छवि के स्फोट का वर्णन हुआ है। पर जहाँ पहले उदाहरण में रूप-सौन्दर्य का प्रभाव आस्वाद्यपरक बिम्ब के द्वारा जीवन और जगत् के अधिक निकट से बाँधा गया है वहीं दूसरे का प्रभाव मिथ्या एवं काल्पनिक सत्य से। तात्पर्य यह कि प्रथम उदाहरण जिस सहजता से हमारे राग तत्त्व को उद्बुद्ध कर सका है, दूसरा उदाहरण चमत्कार-विधायक होने से देह तथा प्रकाश का वह अन्तस्सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सका है। ऐसे ही कुछ अन्य फागों में भी ईसुरी ने नायिका के अलौकिक प्रभाव को प्रतिभासित किया है।

परम्परा के मेल में :—परम्परा से तात्पर्य नायिका के परम्परागत नख-शिख-वर्णन से है। यद्यपि ईसुरी की फागों में इस प्रकार की किसी परम्परा का आग्रह नहीं है, तथापि रूप-विधायक अवयवों का जो चित्रण उन्होंने प्रस्तुत किया है, वह परम्पराओं से मेल अवश्य खाता है। नायिका के मुख, आँख, पयोधर, मांसलता, उँगली, गुदना आदि के जो मादक चित्र उन्होंने उरेहे हैं उनके कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं—

नेत्र : बाँकी रजऊ तुमाई आँखें, रओ घूँघट में ढांकें।
हमने अबै दूर से देखीं, कमल फूल-सी पाँखें।
अँखियाँ पिस्तौलें-सी भर कें, मारत जात समर कें।
दारू दरस लाज की गोली, गज कर देत नजर सें।

भौंह : चुभ रई भाल गाल के ऊपर, भौंय भामिनी भें कें।

मुख : जौ मौ रजऊ लाड़ली तोरौ, भओ खिलौना मोरौ।
देखत में खबसूरत लागै, लगत थथोलत कोरौ।

गाल : गाल फूल गेंदा से फूले लैबे लाक बलैयाँ।

तिल : तिल की तिलन परन सें हलकी, बायें गाल पै झलकी।
कै मकरन्द फूल पंकज पै, उड़ बैठन भई अलि की।
कै चू गई चन्द के ऊपर, बिन्दी जमना जल की।

मांसलता : मोरी रजऊ सें नोंनी को है,
अंग-अंग में कोल-कोल कै ईंगुर रंग भरो है।

हाथ : फबतीं खूब लाल धुतिया में, कनक लता-सी बइयाँ।

हथेली : आई हाँथन पै अरुणाई, मेंहदी मनो लगाई।

उँगलियाँ : पतरे सोनें कैसे डोरा, रजऊ तुमाये पोरा।

शरीर के अन्याय अवयवों को भी ईसुरी की प्रेम-साधना ने बड़े नजदीक से देखा है। उरोज तो यौवनावस्था के जैसे पर्याय हैं। यौवन से जौबन-जुबन के रूप में ईसुरी की दृष्टि इन पर विशेष रूप से केन्द्रित हुई है। उभरते हुए उरोजों का केवल एक चित्र देखें—

जुबना कड़ आये कर गलियाँ, बेला कैसी कलियाँ।
सोने कैसे तवक चढ़े हैं, बरछी कैसी भलियाँ।

वस्त्राभूषणों के बीच—वस्त्राभूषण नायिका के सौन्दर्य के अभिवर्द्धक और नायक के प्रेम के उद्दीपक हैं। वे अपनी चमक-दमकयुक्त कलात्मक आभा से नायिका के सहज सौन्दर्य को और अधिक मादक तथा सम्मोहक बना देते हैं। ईसुरी की रति भी इस प्रकार के उन्मादक चित्रों में कुछ अधिक रमी है। वस्त्राभूषणों के बीच से प्रस्फुटित नायिका के रूप-सौन्दर्य का एक चित्र देखें—

लोलक सबी कान रतनारे, लगें लटकत प्यारे।
कसकें काम करे कारीगर, कौन दुकान समारे।
नग जड़ दये जड़ाऊ बिच-बिच, हीरन के उजियारे।
ऐसो लगत लाड़लो आनन, चन्द्र गरे गये तारे।

नायिका ने कानों में लोलक पहन रखे हैं, जिससे उसके मुख की शोभा बढ़ गयी है। ईसुरी ने इसकी उपमा तारिकाओं के बीच सुशोभित चन्द्रमा से दी है। चन्द्रमा वैसे भी कम सुन्दर नहीं। उसका शीतल संस्पर्श, उसकी सौम्य और मादक चाँदनी, कलधौत कलेवर सभी कुछ हृदय को अपनी ओर आकर्षित करता है, किन्तु तारिकाओं के बीच चन्द्रमा का सौन्दर्य जिस प्रकार मादक हो उठता है, ऐसे ही लोलकों की कामदारी और नगों से परावर्तित प्रकाश की जगर-मगर में नायिका के मुख की शोभा-राशि विकीर्ण हो उठती है।

प्रभावात्मक चित्र की अपेक्षा यह अधिक रंगीन और रंजक है। एक अन्य चित्र देखें—

१. पटियाँ कौन सुगर ने पारीं, लगीं देखतन प्यारीं।
आकें तनी सीस के ऊपर स्याम घटा-सी कारीं।
२. देखो रजऊ खाँ पटियाँ पारें, सिर सबयार उँगारें।
मोतिन माँग भरी सेंदुर सें, वेंदा देत बहारें।
मानो रूप कनक कसबे खाँ, कनक कसोटी धारें।

पटियों (केश-विन्यास) के बनाव शृङ्गार से नायिका का रूप-लावण्य और अधिक निखर उठा है। कवि ने इनकी छवि के उन्मेष के लिए उपमा और उत्प्रेक्षा का साहाय्य लिया है। पहले उदाहरण में रूपराशि के ऊपर केश-बिन्यास रूपी श्यामघटा का आच्छादन जहाँ एक ओर सौन्दर्य के उद्भास को उन्मीलित करता है, वहीं मेघों से घिरे वातायन का बिम्ब अपने सरस और मादक स्वरूप में मन को बड़ा भला लगता है। दूसरे चित्र में इन्हीं पटियों के बीच रूप-सौन्दर्य कसौटी में कसी गयी कञ्चन रेखा की तरह अपनी पवित्रता और निखालिस होने के भाव को द्योतित करता जगमगा उठा है।

ईसुरी सहजता के कवि हैं। इसलिए उनके रूप-चित्रण में उपमा, उत्प्रेक्षा जैसे संबंध स्थापक कृत्रिम उपधानों की तड़क-भड़क की अपेक्षा वस्त्राभूषणों की कलात्मक कान्ति उद्भासित हृदयजन्य सहज सौन्दर्य की ही छवि अधिक है। एक उदाहरण देखें—

पैरें फिरै लाल परदनियाँ, पुंछीली-सी धनियाँ।
जगमग होत पोत को गजरा, झिलमिलात दरपनियाँ।
जगा जोत जरबीली लागी, माथे पै मोहनियाँ।
ईसुर खात चली गई झोंका, ठनकारे पैजनियाँ।

घरेलू और ग्राम्य वातावरण के बीच—प्रेम में प्रिय के हाव-भाव, क्रिया-कलाप, उठना-वैठना, चलना,-फिरना, ऐंड़ाना आदि सभी बड़े सम्मोहक और सुखद प्रतीत होते हैं। ईसुरी ने घरेलू और ग्राम्य वातावरण के बीच नायिका की इन्हीं भंगिमाओं के भिन्न-भिन्न कोणों से बड़े ही मादक और सजीव चित्र उरेहे हैं। एक चित्र देखें—

बिखरे डरे केश अनगोये, आज लाड़ली धोये।
बूंदा चुअत नितम्बन ऊपर, कम से गये निचोये।

अभी-अभी बालों को धोकर खड़ी हुई नायिका का यह चित्र—धुले हुए बालों की चमक और उनसे निचुड़कर नितम्बों पर बूंद-बूंद गिरते पानी का बिम्ब नारी के सहज सौन्दर्य में अपनी सहजता से एक सम्मोहन-सा फूंकता है। कुछ अन्य भंगिमाओं के उदाहरण देखें—

१. आई हाँतन पै अरुणाई, मेंहदी मनो रचाई।
मींजत आँग निचोरई कपड़ा कर दूनर करयाई।
ईसुर छैल छिपे छत्र देखें, ऐसो जरव लुगाई।

२. गुदना गुदवाउत रो दओ तो तनक दरद न सओ तो
अँसुआ चुए गिरे गालन पै, रनबन काजर बओ तो
आँखें मींच नंद वारो खाँ दोऊ हाँतन भर लओ तो।
ईसुर प्रान छनक गये मोरे बिदना आड़ें भओ तो।

३. मोहन भर पिचकारी खींचें, खोंचें जाँग दुत्रीचें।
लगतन पीक लौट गई सारी गई तिन्नी के नीचें।
हाँत लगाय भुवन के भीतर चली गई दृग मीचें।

४. चलतीं कर खाले खाँ मुँइयाँ, रजऊ वैस लरकैयाँ।
हेरत जात उँगइयन मैं हो, तकती हैं परछैयाँ।

ईसुरी की फागों में प्रेम के इस उद्भव और विकास के अनगिनत चित्र अपनी मौलिक एवं अनूठी भाव-भंगिमाओं के साथ बड़े आकर्षक और हृदय-स्पर्शी बन पड़े हैं। ईसुरी ने इन चित्रों में प्रेमी हृदय के सुख और दुःख दोनों ही किनारों को स्वर दिया है। संयोग और वियोग दोनों ही मनोदशाएँ उनकी तूलिका के रंगों से सहज ही प्रेम की गहराई को अभिव्यक्ति देने में समर्थ हो सकी हैं।

संयोग—अपने प्रेमास्पद से मिलने की उत्कण्ठा का आधारबिन्दु मूलतः शारीरिक आकर्षण है। यह आकर्षण अपने अनेक रूपों, भंगिमाओं, चेष्टाओं, वाचिक और कायिक विकारों, मनोदशाओं आदि में संयोग की भाव-भूमि को और-और पुष्ट करता है। नायक-नायिका की मनःस्थितियाँ आकर्षण के बिन्दुओं से उठकर सुरति, दर्शन, श्रवण, संलाप, स्पर्श आदि के मार्ग से एकाकार हो जाने के लिए मचल उठती हैं। ईसुरी की फागों में संयोग की भावना इन्हीं विविध रंगों से अपने प्रेम को उजागर करती है।

ईसुरी की फागों में नायक-सामान्यतः कवि स्वयं और नायिका-रज्जू रजुआ प्रेम के आश्रय और आलम्बन हैं। संयोग सुखाभिलापी वयःप्राप्त नायक-

नायिका के रूप-गुणजन्य पारस्परिक आकर्षण से उद्भूत यह प्रेम विकास की ओर उन्मुख होता है। यौवनावस्था इसकी प्रथम शर्त है। इसीलिए रसिक कवि ईसुरी की दृष्टि मदन-महीप से सनद प्राप्त रूप-लावण्य पर ही अधिक रमी है। नायिका के बालिका रूप से उन्हें कोई सरोकार नहीं रहा। और यदि कभी आक्षिप्त हुई है तो वहाँ भी वे उसमें—मन्मथ के अँकुओं को कुसुमित होते तो नहीं किन्तु पीका फोरते अवश्य देखते हैं—

बहुतक हलकी-सी ननदुलिया, लागी देन बिंदुलिया।
ऐसी निगन निगत लरकन में, डारें हांत हुँतुलिया।

यौवन के आगमन से अनभिज्ञ किन्तु उसके सहज साहचर्य में टिकुली, बेंदी आदि के प्रति बालिका का आकर्षण, मन्मथ का पहला अनुबन्ध है। धीरे-धीरे उसका यौवन से परिचय बढ़ता है। और तब—

छाती भये जुबनवां जारी, रजऊ रईं न बारी।
लरकन संग खेलबा छोड़ो, जुबनन में सुद डारी।

यौवन का यह चरण निक्षेप बाला के हृदय को विचित्र भाव-भंगिमाओं से भर देता है। उसकी बाल्यसुलभ चेष्टाओं—हँसने, चलने, बोलने आदि में परिवर्तन आ जाता है। शारीरिक विकास के साथ-साथ उसके क्रिया-कलाप, उसकी भंगिमाएँ, उसकी चेष्टाएँ सभी एक सम्मोहन-सी भरने लगती हैं। यौवन के सम्भार को सम्हालने में असमर्थ नायिका की एक हलकी-सी मुस्कान—'जो मिल जात गैल खोरन में देखत ही मुस्क्यानी'—पर नायक का हृदय बरबस ही उसके हाथ से फिसल जाता है। नैनों के वे तीखे कटाक्ष—'कड़तन हनी नैन तरवारें'—हृदय की न जाने कितनी परिधाओं को चीर कर गहरे, गहुत गहरे अन्तर्तम को भेद जाते हैं। किन्तु न जाने कैसा आनन्द है इस घायल होने में भी, जहाँ बार-बार नैन-बाणों से बेधे जाने के बाद भी प्रेमी उसी मुस्कान और नैन-बाणों की मनुहार करता है—

हमखां बिसरत नहीं बिसारी, हेरन हँसन तुमारी।
भौंय कमान बान-सी ताने, नजर तिरीछी मारी।
ईसुर कात हमारी कोदाँ, तनक हेर लेव प्यारी।

नायक नायिका की इस एक झलक के लिए अपने अनगिनत प्रतीक्षा के पल घण्टों कल्पना की उधेड़-बुन में ऐसे गुजार देता है जैसे उसके लिए समय का चक्का जाम हो गया हो। जब तंद्रा भंग होती है, तो उसकी मनःस्थिति—

"भर गओ कितनी बेरां पानी, रजऊ न आज दिखानी।
कै गये हूते गाँव में कऊँ हम, बेरा बखत न जानी।
कै बैठे रये पीठ दयें ही, कै कड़ गई चिमानी।
मनतक गये कुआ न ईसुर, लयें लबन की खानी।"

विचारों के न जाने कैसे-कैसे ताने-बाने नायक को चारों ओर से घेरते हैं और वह उनमें फँसता जाता है। विकलता और बढ़ती है। पर जैसे ही उसे उस उलझाव में कहीं साँस मिलती है, वह दौड़ पड़ता है कुआँ की तरफ। किन्तु क्या? निराशा ही हाथ लगती है। इस स्थिति में नायक की मनोदशा एक चकरी की हो जाती है—

तोरे नैन करेजे खटकें, मार कँदेला डटकें।
बीज विचित्र ढंग माथे पै, बड़ो चुटीला लटकें।
साँसी कै कें हाथ हिला दो, काये करतीं चटकें।
ईसुर चकरी भओ फिरत है, बात न मानै हटकें।

नायिका के मादक और मांसल रूप-लावण्य से बिद्ध नायक की मनोदशा की अभिव्यक्ति उक्त पंक्तियों में बड़ी मार्मिक और सहज बन पड़ी है। 'साँसी कै कें हाथ हिला दो' में जहाँ एक विश्वास पनपता है वहीं 'काये करतीं चटकें' में नायिका के व्यवहार से एक अपमानजनक टीस भी उभरती है। परन्तु इसके बाद भी प्रेम की असीमता हर अपमान के घूंट को पीकर नायिका को देखते रहने की कायल है। वह नायिका के चारों ओर घूमती रहती है। क्योंकि—

हमपै इक मुख जात न बरनी, रजऊ तुमाई करनी।
जाँ ठाँड़ी हो जातीं जाकें, दिपन लगत बा धरनी।
सोभा रजऊ की कीसें कइये, किये उँनारन जइये।
बड़कें चीज इकीसई सोनो,............।

इसी प्रकार नायिका भी नायक के रूप-लावण्य पर मुग्ध है। नायक के बिना दर्शन किये उसे चैन नही पड़ती। प्रिय के मुख चन्द्र का सौन्दर्य-पान करने के लिए उसकी आँखें चकोर की तरह उसी ओर दौड़ पड़ती हैं। हृदय का प्रेम छिपाने पर भी नही छिपता। अपने प्रेमास्पद के दर्शन की लालसा नायिका को भी कम व्यथित नहीं करती—

बिन देखे अँखियां नई राती, बारे के सनेहिरा कों चातीं।
तनक बीच के बिछरन परतन, गाँव गली ढूंढ़न जातीं।
सब कछु रहत हँसत खेलत में, रोय रोय बतियां कातीं।

प्रिय दर्शन को यह लालसा, हृदय की यह अकुलाहट प्रियतम से मिलने के लिए, उसकी एक झलक पाने के लिए नायिका को क्या कुछ करने को विवश नहीं करती। लोककवि ईसुरी ने इस मिलनाकांक्षा का एक अपूर्व चित्र निम्नांकित पंक्तियों में किस सहजता से उरेहा है, देखें—

जातीं हर हर बेरै पाने, नये यार के लाने।
भरो धरो लुड़कावें घर को, जोनो नाहीं चाने।
द्वारें बैठो देख आइये, करकें कई बहाने।
बिन देखें न चलै ईसुरी, चलजै बिगर बताने।

कितनी सहज अभिव्यक्ति है नायिका के प्रेम की। वह अपनी स्थिति को स्पष्ट करती हुई कहती है कि बिना बतियाये तो चल सकता है किन्तु बिना प्रिय के दर्शन के जीना कठिन है। इसीलिए जब उसे कोई उपाय नहीं सूझता तो वह प्रिय के 'छल्ला' होने की कल्पना करती हुई कहती है—

जो तुम छैल छला हो जाते, परे अंगुइयन राते।
मों पोंछत गालन हाँ छूते, कजरा देत दिखाते।
घरो घरी घूंघट खोलत में, नजर सामने राते।
मनचाही लख में तुम बिदते, हाँत जहाँ जब जाते।
ईसुर दूर दरस के लानें, ऐसें काये ललाते।

किन्तु ईसुरी के काव्य की यह नायिका ऊढ़ा परकीया है, राधिका की तरह कृष्ण के लिए पूर्ण समर्पिता नहीं। वह अनेकानेक बहानों से अपने उपपति से मिलना तो चाहती है पर घर की मर्यादा और समाज की कटूक्तियों का उसे डर भी है। बड़ी विचित्र स्थिति है उसकी। एक ओर पति का भय और दूसरी ओर प्रेमी का दिल टूट न जाय, इसकी चिन्ता। दुविधा की यह स्थिति बड़ी कठिन है—

रोजऊं हँस-हँस के मन भरतीं, मन की कभऊं न करतीं।
करतीं नइँ दगाबाजी भी, बातें बहुत अखरतीं।
छिपा न राखो खुलकें के दो, कौन बात हाँ डरतीं।

वियोग—ईसुरी में संयोग पक्ष जहाँ स्थूल और मांसल अधिक है, वियोग उसकी अपेक्षा स्वच्छ और उदात्त। वस्तुतः विरह की आग में तपकर प्रेम अपनी स्थूलता खो बैठता है। संयोगावस्था का वह ऐकांतिक प्रेम वियोगावस्था में प्राणिमात्र के साथ ही नहीं, जड़ पदार्थों के साथ भी तादात्म्य स्थापित करता है। उसके हृदय की अनुभूति रेचन के अभाव में घनीभूत और तीव्रतर होती चली जाती है। ईसुरी की विरहात्मक फागों में प्रेम की यही अनुभूति नायिका के हृदय की आकुलता, विवशता, दैन्य, क्षोभ, निराशा आदि को अभिव्यंजित करती फूट पड़ी है। वियोग की विवशता और अकुलाहट का एक चित्र देखें—

प्रीतम बिलम विदेस रये री, दोऊ दृग नीर बये री।
निपट अकेली निबल पाय दिन, अंग-अनंग दहेरी।
बागन और द्रुमन बन बेलिन, कोयल शब्द कहेरी।
ईसुर लख दुख विकल हो रई, सब सुख बिसर गये री।

विरह की इस अग्नि को बुझाने का ज्यों-ज्यों प्रयास होता है, वह और अधिक तीव्र ही होती है। कोई भी सान्त्वना का जल उसे बुझाने में समर्थ नहीं। इससे तो दुःख की ही अभिवृद्धि होती है। विरह का यह उत्ताप तो केवल प्रिय के संस्पर्श से ही ठण्डा हो सकता है—

होनै जबइँ करेजो ओरो, मिलै मिलनियाँ मोरो।
परचत रये विरह के अंगरा, छनक रकत रओ थोरो।
जल के परत भभूका छूटत, कितनऊं सपरो खोरो।
और और परचत हैं ईसुर, पंखन पवन झकोरो।

प्रेम के उद्दीपक तत्त्व, प्रकृति के विविध आयाम नायिका के विरह-उत्ताप को और अधिक प्रचारित करते हैं। किन्तु इस उत्ताप में प्राणों की तड़प नहीं, मदन की पीरा अपना जोर दिखाती दीख पड़ती है। पंक्तियाँ देखें—

तलफत बिन बालम जो जीरा, तनक बंदत न धीरा।
बोलन लागे मोर पपीरा, बरसन लागो नीरा।
आदी रात पलँग के ऊपर, उठत मदन की पीरा।
ईसुर कात बता दो सजनी, कबै मिलैं जी हीरा।

ईसुरी का प्रेम तत्त्व वासना प्रधान होने से उसमें वियोग की उतनी गहराई नहीं जितनी सम्भोग की लालसा है, विरह की उतनी अधीरता नहीं जितनी शारीरिक सम्बन्ध स्थापन की अकुलाहट है। नायक के हृदय की विरह-व्यंजना तो अपने सभी तटबन्धों को तोड़कर उस नद की तरह उद्दाम वेग से बह कढ़ी है, जो थोड़े ही समय में रीत जाता है। ऊहात्मक वासना की गन्ध इनमें अधिक है। कहीं-कहीं तो ईसुरी के ये चित्रण विकृत मानसिकता के शिकार हो गये हैं। यथा—

नैना देकें काजर कारो, रजऊ ने हमखाँ मारो।
ईसुर हमसें साँसी कै दो, का लेतीं हौ भारो।

इस प्रकार ईसुरी ने प्रेम की प्रायः सभी अनुभूतियों का चित्रण बड़े सहज और स्वाभाविक रूप में किया है। नायक-नायिका की प्रेमभरी चेष्टा हाव-भावों, मुद्राओं और उनके प्रेम-विभोर हृदय की अगणित दशाओं के मा चित्र उनकी फागों में देखने को मिलते हैं। संयोग और वियोग की वि परिस्थितियों में नायक-नायिका के प्रेम का विकास कवि ने सुन्दर ढंग से कि है। नारी सौन्दर्य कवि का प्रिय विषय रहा है, जिसे ईसुरी ने विभि परिस्थितियों और विविध भाव-भंगिमाओं की कलम से तराशा है। इसमें संदेह नहीं कि ईसुरी काम-वासनाजन्य प्रेम पार्थिव प्रेम के पुजारी हैं। का स्वतन्त्र रूप ही उन्हें अधिक प्रिय है। इसके सामने वे कुल, धर्म औ समाज के प्रतिबन्धों की मर्यादाएँ तोड़कर कहते हैं—

करले प्रीत खुलासा गोरी, जा मन्सा है मोरी।
ऐसी करले ठोंक तारिया, फिर टूटै न टोरी।

—सर्राफा बाजार, मह

ईसुरी की फागों में भाव-सौष्ठव

● डॉ० बलभद्र तिवारी

ईसुरी की फागों का भाव-सौष्ठव आँकने हेतु एक ऐसे सहृदय बनने की शर्त निभानी होती है, जो ग्रामीण परिवेश का हो, जिसने ठेठ बुन्देलवासियों के बीच रहकर वहाँ की माटी और संस्कारों को समझा हो तथा जिसके हृदय में प्रेम तत्त्व की स्वस्थ कल्पना हो। ईसुरी की फागों में ईसुरी का ही हृदय तरंगायित नहीं हुआ है बल्कि एक सच्चे, निष्ठ और भोले बुन्देलवासी की भावनाएँ मुखरित हुई हैं, इसीलिए ईसुरी की फाग बुन्देली कण्ठ की पर्याय बन गयी हैं। जनसमाज में प्रचलित है—

रामायण तुलसी कही, तानसेन ज्यों राग।
सोई या कलिकाल में, कही ईसुरी फाग।

ग्रामीण जनता के तुलसी या तानसेन, ईसुरी की फागों में जीवन के प्रति एक ऐसी आसक्ति है जो लोककाव्य में दुर्लभ है, इसीलिए सभी को उनकी फागें अच्छी लगती हैं। मौलिकता उनके भावों में है, सरलता और निष्ठा उनकी ऐसी विशेषताएँ हैं जो वैयक्तिक भावनाओं को सार्वजनीन बना देती हैं। भाषा में जितनी सपाटबयानी और आमने-सामने का आदान-प्रदान है, वह रीतिकाल में प्रेम-काव्य-रचयिताओं में भी नहीं मिलती है। ईसुरी ने जिस किसी भी विषय को उठाया है, अपनी प्रतिभा की छाप अवश्य छोड़ी है। मूलतः ईसुरी प्रेम और श्रृङ्गार के कवि हैं, पर रामावतार या कृष्णावतार विषयक फागों में भी वे अपने व्यक्तित्व के अनोखेपन को छिपा नहीं पाये हैं। प्रेम तत्त्व का प्रयोग उन्होंने प्रतीक रूप में भी कर डाला है। प्रेम का अर्थ स्नेह = तेल होता है। अपनी एक फाग में कवि ने स्पष्ट कहा है—

लम्बरदार चतुरभुज जू के, हम कारिन्दा आयें।
अपनी लाँच खायबे कों वे, नायँ की मायँ मिलायें।
गड्डी गाड़े ढँड़कत नइयाँ, ओंगन बिना लगायें।

ओंगन (स्नेह = तेल) की आवश्यकता जड़ वस्तुओं को भी होती है, फिर तो मनुष्य को यह अनिवार्य है। मनुष्य-जन्म बड़े भाग्य से मिलता है, अतः इसका उपयोग जतन से करना चाहिए—

अपने मन मानिक के लानें, सुगर जोहरी चानें।
नर तन रतन-खान सें उपजो, चढ़ो प्रेम खरसानें।
बेंचो ओइ दुकानें जैये, जो कीमत पहिचानें।
'ईसुर' कैउ़ों जग धर हारे, कोउ धरत ना गानें।

स्नेह = प्रेम का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। वह सामान्य-जीवन से लेकर भक्ति तक फैला हुआ है। भक्ति सिद्धान्त में इसे महाभाव के रूप में जाना गया है। इसके विकास-क्रम में अनेक रूप दिखते हैं। उदय होता हुआ रति भाव स्नेह कहा जाता है, वही आगे चलकर मांग, प्रणय, राग और अनुराग रूपों में विकास लेता हुआ जब दृढ़ता प्राप्त करता है, तो उसे प्रेम कहते हैं। उज्ज्वल नीलमणि में रूप गोस्वामी ने सामान्यतः इन छह को प्रेम की संज्ञा दी है। स्नेह, मान, प्रणय (प्रणय और मान), राग सभी प्रेम हैं। इनकी विवृत्ति सामान्यतः या विशिष्ट रूप में प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में होती है। ईसुरी के जीवन में भी ये कम या अधिक रूप में रहे हैं। इनके काव्य में आने वाले विविध भावों का सौन्दर्य इन्हीं के अन्तर्गत मूल्यांकित किया जा सकता है। जहाँ वे कृष्णावतार विषयक फागों में अपनी बात कहते हैं ऐसा प्रतीत होता है कि वे अनजाने में भक्ति सम्बन्धी शृंगार रस की अभिव्यक्ति करते हैं। भक्ति सम्बन्धी शृङ्गार रस में मधुर रति ही स्थायी भाव होता है। इस रति के आविर्भाव के अनेक कारण माने गये हैं—अभियोग से, विषय से, सम्बन्ध से, अभिमान से, नायक की विशेषताओं से, उपमा से और स्वभाव से कृष्ण विषयक रति स्फुरित होती है। इनमें उत्तरोत्तर कारण उत्तम माने गये हैं। ईसुरी के काव्य में प्रायः सभी कारणों से रति भाव का उदय मिलता है।

१. अभियोग से रति का आविर्भाव वहीं स्वयं मिलने से, वहीं सखी आदि के सहयोग से मिलन होने से उत्पन्न होता है। उदाहरण—

राधा आउत जात क्वाँरी, दई बेचन गिरधारी।
देउ अगोट गैल गोकुल की, मिल जै प्रान प्यारी।
जाँचो चलो जान न पावै, जा सबकी हुसियारी।
लेउ चुकाय जगात जनम की, है माखन बेपारी।
ईसुर होत चोर की सौ लों, साउ की एक मुरारी।।

२. रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द इन पाँच विषयों में से एक या अनेक विषयों के आधार पर रति महाभाव का आविर्भाव होता है। कृष्ण में लोकोत्तर प्रभाव होता है, अतः उनसे सम्बन्धित सभी विषय भावजनक होते हैं—

भींजी फिरै राधका रंग में, मनमोहन के संग में।
दध की धूमर धाम मचा दइ, मजा उड़ावत मग में।
कोउ माजूम धतूरे फाँकें, कोउ छका दई अंग में।
तन कपड़ा गये उगर ईसुरी, करी ढाँक सब ढंग में।।

३. कुल, रूप इत्यादि के गौरव के सम्बन्ध से होने वाला मधुर भाव सम्बन्ध से उत्पन्न कहा जाता है। राधा कृष्ण के प्रति अनुरक्त हैं क्योंकि वे उत्तम कुल के गोप हैं। राधा ने यह नाम पहले सुन रखा था। कृष्ण भी राधा पर अनुरक्त हैं। राधा के रूप की चर्चा यहाँ मुख्य है—

कानन डुलें राधिका जी के, लगें तरकुला नीके।
आनंद कंद चंद के ऊपर, दो तारा गन झींके।
परतन पसर परत गालन पै, तरें झूमका जी के।
जिनके घर से जो पैराओ, और जनन नें सींके।
स्याम सनेह ईसुरी देखत, ब्रजवासी बसती के।।

४. अभिमान से रति भाव वहाँ माना जाता है जहाँ असंख्य रमणीय वस्तुओं में से एक प्रेमावलम्बन का निर्णय कर लिया जाता है। राधिका के व्याज से इस भाव को ईसुरी ने प्रस्तुत किया है—

अपनों तुमें जान गिरधारी, हमने कीनी यारी।
काउ ओर सें करनें होती, बहुत हती संसारी।
हर-हर तराँ तुमारे ऊपर, तबियत भरी हमारी।
तुलसी गंगा जामिन जाकी, जनम जिन्दगी हारी।
ईसुर तकी स्याम की मूरत, गोरी नईं निहारी।।

५. कृष्ण के चरण, गोष्ठी, प्रियजन आदि विशेषताओं से रति भाव का उदय देखा जाता है। कृष्ण के सुन्दर रूप के व्याज से यह भाव द्रष्टव्य है—

रेखा श्याम मंजनी काढ़ी, भोंय दुबीचें आड़ी।
भालचन्द्र के ऊपर हो, मदकन ने लट छाँड़ी।
ब्रज के लोगन के बैवे खाँ, मानों जमुना बाड़ी।
सुखकर सुन्दर श्रीकृष्ण की, मुख पै मूरत ठाँड़ी।
बल जाऊँ घर बैठे ईसुर, डेरे कर पै डाड़ी।।

६. उपमा या सादृश्य द्वारा मधुर भाव का उदय देखा जाता है। राधिका के रूप वर्णन में प्रस्तुत है—

जग में होय उजेरो जी कौ, राधा कौ मुख नीको ।
उतै हिरात परब हीरन की, कुंदन कौ रंग फीको ।
जो रंग रूप पाइये कासें, बिरन करेजो झींको ।
ईसुर सदा स्वाद बानी लयँ, सुख्ख सनेह अमी कौ ।।

७. सर्वोत्तम मधुर भाव वह है, जो स्वभाव से उत्पन्न होता है। रू गोस्वामी ने गोपियों का रति भाव स्वभावज माना है। गोपियों की स्वाभाविक रति कौस्तुभ मणि के समान समर्थ रति है, जिसे प्राप्त करने का दूसरा अधिकारी नहीं है या अत्यन्त दुर्लभ है। इसमें प्रेम का घनीभूत रूप देखा जाता है। यही प्रौढ़ रति है, जो महाभाव कहलाती है। मुक्त और श्रेष्ठ भक्त, प्रेमी इसी की खोज करते हैं—

ब्रज में खेलें फाग कनाई, राधे संग सुहाई ।
चलत अबीर रंग केसर कौ, नभ अरुनाई छाई ।
लाल-लाल ब्रज लाल-लाल बन, वीथन कीच मचाई ।
ईसुर नर-नारन के मन में, अति आनंद सरसाई ।।

अथवा

भाल भाग गैरो भयो, भओ गिरधारी यार ।
रमत हमारे संग में, सखी ब्रह्म औतार ।
सखी री भाग हमारे भारी, हार भये गिरधारी ।
दस औ चार भुवन चौदा में, जिनें भजत संसारी ।।

कृष्णावतार विषयक फागों के सिवा उनकी अन्य फागें रति भाव के विविध रूपों को प्रस्तुत करती हैं। यहाँ वे लौकिक स्तर पर हैं और प्रेम के सुन्दर स्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं। ग्रामीण परिवेश में ईसुरी का हृदय इतनी सहजता एवं स्वाभाविकता से खुला है कि फागों में एक अद्भुत आकर्षण हो गया है। प्रेम को व्यक्त करने में कहीं कोई लाग-लपेट नहीं है। युवा मन हो या प्रौढ़, इसे विस्मृत नहीं कर पाता है क्योंकि जीवन की यथार्थपरक बातों की व्यंजना प्रत्येक पंक्ति में है।

ईसुरी का प्रिय पात्र रजऊ काल्पनिक हो या वास्तविक, पर उसके माध्यम से व्यंजित प्रेम की विभिन्न दशाएँ अत्यन्त सजीव और हमारे-आपके जीवन में घटित होने वाली स्थितियाँ हैं। ग्रामीण मन—युवा मन का ऐसा सुन्दर चित्रण, भावना के पीछे का मनोविज्ञान, उत्कट लालसा और फिर प्रेमिका की प्राप्ति न होने पर उसके प्रति प्रकट उद्गार आदि सभी एक साथ

सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भों को उद्घाटित करते ही हैं। साथ ही, एक ऐसा प्रभाव छोड़ जाते हैं, जो सार्वकालिक होता है। ईसुरी की फागों में ईसुरी का कवि-मन ही जिन्दा नहीं रह गया है, साक्षात् प्रेम साकार हो गया है, जिसकी आज भौतिकवादी सभ्यता में अतीव आवश्यकता है। प्रेमाभिव्यंजनाओं के कुछ महत्त्वपूर्ण एवं मनोवैज्ञानिक पक्षों पर संक्षेप में ध्यान आकृष्ट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। यही वे पक्ष हैं, जिनमें ईसुरी जनप्रिय, सहज, प्रेमिल और निष्ठ मानव के चरित्र का उद्घाटन करते हैं। रजऊ विषयक ३६० फागों में प्रेमिका के सौन्दर्य का वर्णन है। ईसुरी का नायिका-भेद से कतई परिचय नहीं रहा है, पर सामान्य जन के भीतर व्याप्त सौन्दर्य-संवेदन और उसकी नायिका के अंग-प्रत्यंगों को सुन्दर देखने की आकांक्षा में व्यक्त भाव उसे अपना नायिका-भेद विकसित करने का अवसर देते हैं। जहाँ जो अच्छा लग गया, लग गया, उसी को कवि ने कह डाला। नायिका के पैजना अच्छे लगे, कवि ने कह दिया—

चलतन परत पैजना छमके, पाँवन गोरी धन के ।

इसके बाद वस्त्र अच्छे लगे तो कवि गा उठा—

पैरें फिरै लाल परदनिया, पंछीली-सी धनिया ।
जगमगात पोत कौ गजरा, झिलमिलात दरपनिया ।
जगा जोत जरबीली लागी, माथे पै मोहनिया ।
ईसुर खात चली गई झोंका, ठनकारें पैंजनिया ।।

अथवा तिल की तिलन परन सें हलकी, बाँय गाल पै झलकी ।

या गोदौ गुदनन की गुदनारी, सबरी देय हमारी ।
गालन पै गोविन्द गोद दो, कर में कुंज बिहारी ।
बँहयन भौत भरी बनमाली, गरें धरौ गिरधारी ।
आनंद कंद लेउ अँगिया में, माँग में भरौ मुरारी ।
करवा कोद कदइयाँ ईसुर, गोद मुखन मनहारी ।।

आदि में नायिका के सौन्दर्य—निष्कलंक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है, इसीलिए कवि को उसकी स्मृति यदि आधी रात को भी आ जाती है और सूफी नायिका की भाँति विरह में सूख जाता है तो अत्युक्ति नहीं है—

खबरें आधी रात पै आवें, कां लौं मन बिसरावें ।
निसदिन चरचा करें तुमायी, सोउत में बर्रावें ।

जो तन हो गओ सूक टटेरो, न्यारे हाड़ दिखावें ।
ईसुर कहत तुमारो होकें, कओ की कौ हो जावें ।।

इसी निष्ठा और प्रेम की पीर का उल्लेख कवि ने विविध प्रकार से किया है। वह सारी झंझटों को जड़ नैनों को मानता है। यदि आँखें न लगतीं तो सब ठीक रहता। अब लग गयी हैं तो—

अँखियाँ जब काऊ सें लगतीं, सब-सब रातन जगतीं।
झपतीं नईं, झोम न आवै, काँ उसनीदे भगतीं।
बिन देखे सें दरद दिमानी, वकें खता-सीं दगतीं।
ऐसो हाल होत है ईसुर, पलकन पलतर दबतीं।।

प्रेम तब फलीभूत होता है, जब दोनों ओर से एक-सी भावना हो। यदि एक पक्ष कमजोर पड़ता है, तो दूसरे को इसका परिणाम भोगना पड़ता है। प्रेमी का गलत कार्य उसे समाज में भी दण्डित करता है जैसे परस्त्रीगमन से बिरादरी में हुक्का बन्द हो जाता है, भले आदमी निन्दा करने लगते हैं और उच्च कुल की अपेक्षा उचक्कों में नाम आ जाता है आदि सब का एक फाग में स्पष्ट और अन्य फागों में प्रकारान्तर से वर्णन है—'खा गये पर नारी सें चुक्का, बन्द जात में हुक्का।'

इसलिए प्रेम में निष्ठ होना अत्यन्त आवश्यक है, तभी वह अभिलाषा कर सकता है कि—

जो कऊँ छैल छला हो जाते परे उँगरियन राते।
मौं पोंछत गालन कौं लगतें, कजरा देत दिखाते।
घरी-घरी घूँघट घालत में, नजर सामने राते।
ईसुर दूर दरस के लाने ऐसें काय ललाते।

जब यह सब नहीं हो सकता है तो कम-से-कम प्रेमिका के घर की देहरी बनने में क्या हानि है—'विधना करी देह ना मोरी, रजउ के घर की देरी।'

पर यह सब होना सम्भव नहीं है, अतः चिन्ता और विरह की तीव्रता में प्रेमी की हुलिया ही बदल जाती है—

हड़रा घुन हो गए हमारे, सोसन रजऊ तुमारे।
दौरी देह दूबरी हो गई, करके देख उगारे।

ईसुरी की प्रत्येक फाग में एक चित्र उभरता है और उसके साथ एक भाव जुड़ा हुआ है, जो विस्तृत व्याख्या की अपेक्षा रखता है। विरह की अधिकता और प्रेमिका के सान्निध्य के अभाव में कवि ने महाप्रयाण की तैयारी का चित्र दिया है—

लै लो सीताराम हमारो, चलतो बेरा प्यारो।
ऐसी निगा राखियो हम पै, होय न नजर दुआरी।

प्रेम पंथ को कवियों ने तलवार की धार पर चलने के समान माना है। इसे सँभालकर ही अपनाना पड़ता है। ईसुरी ने मांसल श्रृंगार के साथ-साथ आध्यात्मिक और शान्त रस के भी उत्कृष्ट भाव प्रदर्शित किये हैं। रसशास्त्रीय व्याख्या की अपेक्षा की जाती है। पर कुल मिलाकर, ईसुरी अपनी कृष्णावतार एवं रामावतार विषयक फागों में अनजाने में शास्त्रीयता के आधार पर प्रेम के विविध रूपों एवं भावों को व्यक्त करते हैं। अन्य सौन्दर्य विषयक, विरह एवं सामाजिक विषयों की फागों में वे यथार्थवादी एवं व्यावहारिक जीवन के हामी हैं। ईसुरी का भाव-सौष्ठव जिन्दगीनामा प्रस्तुत करता है, जिसे अभी व्याख्या नहीं दी गयी है।

—रीडर हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर

ईसुरी की फागों में लोक रंग

● श्री श्रीनिवास शुक्ल

ईसुरी का समूचा फाग साहित्य एक नयनाभिराम मनमोहक चित्र है, जिसमें सहज रूप से लोक-रुचि के अनुरूप विविध रंग उभरे हैं। यह ऐसा चित्र है, जिसका बहिरंग और अंतरंग लोक संस्कृति से अनुरंजित है। विशेषता यह है कि इसमें ईसुरी के बहुआयामी जीवन की अनुभूतियाँ मुखर हैं। इसलिए यह मात्र जड़ चित्र नहीं हैं अपितु एक जीवन्त, प्राणवन्त चित्र हैं। इसमें ईसुरी को प्रीति-केन्द्र रजऊ के प्रति संयोग-वियोग की व्याकुलता-विकलता, रजऊ के अंग-अग का लावण्य बुन्देली लोक जीवन के रसस्वी अंग-पनघट पर कामिनियों के हास-परिहास, उनकी अंग-भंगिमाओं का अंकन, वसन्त-वेला में करौंदा-महुआ की मादक सुगन्ध, वर्षा में चातक का आलाप, मदन यूप के दल समान बादलों की गर्जना, होली फाग की उन्मुक्त थिरकन, स्थूल-सूक्ष्म प्रेम का गुञ्जन, यहाँ की प्रथा-परम्पराओं की रीति-नीतियों का संकेत, राम-कृष्ण-शिव के प्रति भक्तिभावपूरित सुमनांजलि, जीव-जगत्-जगदीश की सत्ता का बोध, आत्मा और देह को नित्यानित्यता का विवेचन और नीति तथा आध्यात्मिक नाद-निनाद रूपायित हुआ है।

प्रधानतः ईसुरी श्रृंगार के कवि हैं। ईसुरी ने अपनी प्रेमाभिव्यक्ति का केन्द्र रजऊ को बनाया है। उनकी यह रजऊ कोई देहधारी लौकिक प्रेमिका है या उनकी पत्नी राजावेटी ही है या किसी अलौकिक कल्पित प्रेमिका की प्रतीक है यह ठीक-ठीक निरूपण तो नहीं हो सका है, किन्तु उनके साहित्य का अनुशीलन करने पर यह तो निर्विकल्प रूप से निष्पन्न होता है कि उनके मन में प्रीति का स्फुरण किसी सुन्दर देह ने ही किया और उन्होंने उसी देह में अलौकिक छवि के दर्शन किये और लौकिकता में जन्मी अपनी प्रीति को अलौकिकता में रूपान्तरित कर दिया, उनका प्रेम देह से उठकर विदेह में रम गया। किन्तु प्रारम्भ में तो रजऊ के अंगांग के लावण्य ने ही ईसुरी को आकर्षित किया था—

नग नग वने रजऊ नौने, ऐसे की के होने।
गाल नाक उर भौंहें, चिबुक लग अँखियाँ करतीं टौने।

ग्रीवा जुवन पेट कर जाँगें सब ही भौत सलोने।
ईसुरी दूजी रची न विधना छानो त्रिभुवन कोने।

अपनी प्रिया का अधिकाधिक संसर्ग-संस्पर्श हो, ऐसी ललक इन पंक्तियों में अभिव्यञ्जित है—

विधना करी देह ना मेरी, रजऊ के घर की देरी।
आउत जात चरन की धूरा लगत जात हर वेरी।

यह लालसा केवल नायक की नहीं, बल्कि नायिका की भी है। वह चाहती है कि—

जो तुम छैल छला हो जाते परे उँगरियन राते।
मो पोंछत गालन खाँ लगते कजरा देत दिखाते।
घरी-घरी घूंघट खोलत में नजर के सामें राते।
ईसुर दूर दरस के लानें ऐसे कायँ ललाते।।

भले ही ईसुरी की प्रीति का उद्भव कारण कोई देह हो, किन्तु उस प्रीति के चरमोत्कर्ष का आभास तब मिलता है, जब वे स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर इंगित करते हैं और उनकी देहधारी रजऊ अदेह में परिणत हो जाती है—

नइयाँ रजऊ काऊ के घर में बिरथा कोउ न भरमें।
सब में है सब सें है न्यारी, सब ठौरन में भरमें।
को कय अलख खलक की बातें लखी न जाय नजर में।
ईसुर गिरधर रँय राधे में राधे रँय गिरधर में।

प्रेम मन्दिर में जब समर्पण भाव का उदय हो जाय तभी प्रेम की सार्थकता है। ईसुरी ने अपने प्राण ही रजऊ के लिए समर्पित कर दिये हैं। 'जो जो रजऊ रजऊ के लानें का काऊ से बानें।' ईसुरी का प्रेम परिस्थिति सापेक्ष नहीं था कि परिस्थितियों में अनुकूलता हुई तो प्रेम का आवेग बढ़ चले और किञ्चित् प्रतिकूलता आने पर प्रेम का सारा उफान ठण्डा पड़ने लगे। उनका प्रेम परिस्थिति निरपेक्ष था। किसी भी प्रकार की विपरीतता हो,उनका प्रेम अक्षुण्ण है, एकरस है, उसमें कोई उतार-चढ़ाव नहीं।

ईसुरी के श्रृङ्गार को कतिपय समीक्षकों ने अमर्यादित कहा है, किन्तु वे भूल जाते हैं कि ईसुरी लोककवि थे और लोक जीवन के साथ पूर्णतः समरस थे। सामान्य जन-जीवन के आचार-विचार, रीति-नीति, सुख-दुःख, आशा-आकांक्षाओं, रुचि-अभिरुचियों के साथ उनका जीवन सम्पृक्त था, जुड़ा हुआ

था। जो शृङ्गार लोक-रुचि के अनुरूप हो, जो शृङ्गार लोक-मानस में सहजानन्द की अनुभूति जगा सके, उसी को ईसुरी ने रासायित किया है। उनसे आभिजात्य वर्ग की आरोपित मर्यादाओं की अपेक्षा करना किसी प्रकार संगत नहीं है। और फिर जब हम शृङ्गार में नायक-नायिका के भेद-विभेद आदि का दिग्दर्शन कराते हैं तब ये ओढ़ी हुई मर्यादाएँ भी कहाँ ठहरती हैं।

अब ईसुरी की चित्र-रचना के दूसरे रंग देखिये। बुन्देली नारी अपनी विशिष्ट वेश-भूषा में जब घूंघट को अपनी अँगुलियों से किञ्चित् उठाकर कनखियों से देखती बतियाती है, तो उस छवि का आस्वादन करता कवि उसे धन्य मानता है, जिसकी ऐसी सुन्दर नारी है—

चलती कर खोल खाँ मुइयाँ रजउ वयस लरकइयाँ।
हेरत जात उंगरियन मे हो तकती है परछइयाँ।
लचकें तीन परें करया में फरकें डेरी बइयाँ।
बातन मुख झर परत फूल से जो बागन में नइयाँ।
धन्य भाग वे सैयाँ ईसुर जिनकी आयँ मुनइयाँ॥

पैरों में पैजना और पैजना में कंकरा, फिर गाँव रूपगर्विता की ठसकभरी चाल, कैसा मनभावन चित्रण है—

दोरें कड़तीं रोज रजऊआ, हाँती कैसो छोआ।
छीताफली पैजना पैरें होत जात अरौंआ।
कुकरिजिया धोती पै लटके करदोनी को टोआ।
ईसुर गैल गलो उड़ जातीं जैसें कारो कोआ॥

यहाँ अरौंआ शब्द ने पैजना के स्वरों की जो व्यञ्जकता दी है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। हाँती कैसो छोआ कह कर कवि ने रजऊ का गजगामिनी होना और उसकी देह-रचना की सुडौलता का भी दिग्दर्शन कराया है। गहरे बैंगनी रंग की धोती और उस पर करधनी यह यहाँ की नारी की अभिरुचि का पहनावा है।

नारी जीवन में वह दिन भी आता है जब उसके मन में यह ललक जागती है कि वह किसी की पत्नी बने। और जब वह दिन आता है उसकी सहेलियाँ उसे विदा देती हैं। ससुराल जाने पर उस समय का बुन्देली वधू का चित्र देखिये—

वे दिन गौने के कब आवें, जब हम ससुरे जावें।
वारे बलम लिवौआ होकें डोला संग सजावें।

गा गा गुइयाँ गाँठ जोर कें दोरें लौ पौंचावें।
हाँते लगा सास ननदी के चरनन सीस नवावें।
ईसुर कवै फलाने जू की दुलहिन टेर कहावें॥

इस फाग में फलाने जू की दुलहिन में वही भाव अभिव्यञ्जित हुआ है, जो कभी तुलसी की ग्राम-वधूटियों द्वारा सीता के हाव-भाव से राम का परिचय प्राप्त होने पर व्यञ्जित हुआ था। सपत्नियों में परस्पर सौमनस्य विरल ही होता है। बुन्देलखण्ड के ऐसे घर का दृश्य देखिये, जिसमें सपत्नियाँ हैं—

सो घर सौत सौत के मारें साँज बने ना न्यारें।
नारी गुपता भीतर करतीं लगो तमासो द्वारें।
अपनी-अपनी कोदें झींकें खसमें फारे डारें।
एक म्यान में कैसें पटतीं ईसुर दो तरवारें॥

यदि कोई व्यक्ति कोई कदाचार कर बैठता है, तो बुन्देलखण्ड समाज में और आज की छोटी जातियों में उसे किस प्रकार दण्डित करते हैं और उसकी क्या स्थिति होती है, उसको भी ईसुरी ने अपनी फागों में समेटा है—

खा गये पर नारी से चुक्का, बन्द जात में हुक्का।
नाँव धरत हैं बड़े आदमी सबरै कात उचक्का।
डाँड़ मामले होन लगे हैं साव टीप दआ रुक्का।
ईसुर कात करे जो यारी सा कहलावे लुक्का॥

जब चार समवयस्क युवतियाँ परस्पर मिलती है तो अपने-अपने पति विषयक चर्चा करती हैं—'कओ जू कीके कैसे सैयाँ, चार बताती गुइयाँ।' इसी प्रकार एक नारी अपनी ससुराल का त्रास व्यक्त करती है, जो आज भी यहाँ के परिवारों में कम नहीं है—हम खाँ मानस के वन मइयाँ, कछू न सुख भयो गुइयाँ/सास बेंडाल लरंकू ननदी मिले लजाउन सइयाँ/जिठ जेठानी दोऊ रूखे घर भर साजा नइयाँ ईसुर भई सो भई करमगत अब ना होय गुसइयाँ।

विवाहोत्सव आदि में सभी सगे सम्बन्धी एकत्र होते हैं। किसी पाहुनी ने कवि का मन आन्दोलित किया। कौतूहलवश उसका परिचय पूछा गया है, उसमें एक कहावत का कैसा अनूठा प्रयोग हुआ है, देखें—

जो नई आई पाउनी काँसें, कड़ी तुमाये ना सें।
हेरत गई उँगरियन मे हो कर घूंघट की साँसें।

७

जानी जात नेह जो करहै परे प्रेम की फाँसें।
कहत ईसुरी चलो जान दो सुर काँसे को काँसें ।।

बुन्देलखण्ड के लोक-जीवन का एक और मनोहारी दृश्य प्रस्तुत है। पनघट पर इस क्षेत्र की हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर नारियों का जमघट होता है और वे कुआँ से पानी खींचतीं हैं—

देखी पनहारिन की भीरें, कुआँ गाँव के नीरें।
ऐसी धनी आउतीं जातीं, गैल मिलै ना चीरें।
दो-दो जनीं एक ज्योरा सें, घड़ा ऐंचती धीरें।
ईसुर ऐसी देखी हमनें, दई की खाई अहीरें ।।

यहाँ के लोक-जीवन में सामान्य चलन है कि जब अपने किसी आत्मीय प्रिय जन को अथवा लाडले बाल को सजा-सँवार कर तैयार करेंगे, तो उसके सुन्दर रूप पर किसी मलिन दृष्टि का कुप्रभाव न हो सके, इस उद्देश्य से काजल का डिठौना उसे दे देते हैं और इस पर भी किसी कुदृष्टि का प्रभाव हो गया, तो उसे नजर लगना कहते हैं। यहाँ ऐसा सामान्य विश्वास है कि जादू-टोना के जानकार गुनियों की झार-फूंक भले ही बेअसर हो जाय, किन्तु राई-नोन उतारने से इस नजर का कुप्रभाव समाप्त हो जाता है—

नौंने नई नजर के मारें, राती रजऊ हमारें।
रोजइ रोज झरैया गुनियाँ दस-दस बेराँ झारें।
मंत्र पढ़ा कें लट बँदवाई, जंत्र गरे में डारें।
ईसुर रोजऊँ रजउ के ऊपर, राई नौंन उतारें ।।

यह ईसुरी की ही विशेषता है कि वह असामान्य को बड़े सहज रूप में सामान्य बना लेते हैं। राधा-कृष्ण को प्रेम-लीलाओं को वह बुन्देली लोक रंग में अनुरंजित करके, बुन्देली स्वभाव में ढालकर उसे सर्वसाधारण की निकट वस्तु के रूप में प्रस्तुत करते हैं। ब्रज में राधा औ गिरधारी खुलासा यारी कर रहे हैं, वे बिगड़े जा रहे हैं और उनके बाप-महतारी उन्हें रोकते नहीं। ब्रजवासी परस्पर विचार करते हैं कि उनके घर शिकायत कर दें, इसमें कोई बुराई नहीं। व्यर्थ में चारों ओर काना-फूसी हो रही है। वे कहते हैं कि इसमें दोनों (राधा और कृष्ण) दोषी दिखायी देते हैं, ताली एक हाथ से कभी नहीं बजती, कितनी सहज अभिव्यक्ति है—

ब्रज में राधा औ गिरधारी, करें खुलासा यारी।
बिगरे जात नैक ना हटकें उनके बाप-मतारी।

कै गुन लेव हुये कैबे खाँ कये की नइयाँ गारी।
अपनी-अपनी आँगन जुरकें घेर करत नर-नारी।
ईसुर कयें बजत नईं देखी एक हाँत की तारी ।।

बुन्देलखण्ड में बाल-विवाह की प्रथा खूब रही है। कुछ जातियों में तो विवाह-सम्बन्ध पुत्र-पुत्रियों के जन्म के पूर्व ही तय हो जाते थे। दो परिवार इस प्रकार का पूर्व अनुबन्ध कर लेते थे कि यदि हमारे यहाँ पुत्र और तुम्हारे यहाँ पुत्री अथवा तुम्हारे यहाँ पुत्र और हमारे यहाँ पुत्री का जन्म होगा, तो पहली वर्षगाँठ में ही विवाह रच लिया जायेगा। अनमेल विवाह अर्थात् आयु में वर छोटा, वधू बड़ी या वर बुड्ढा और वधू बालिका। एक छोटे वय का वर और युवती वधू के अनमेल विवाह पर वधू के अनुभव स्वयं वधू कहती है। उसे ससुराल जाने का क्या सुख मिला। उसका पति तो इतना छोटा है कि सास का दूध पीने को अब भी उसी के साथ सोता है, ससुर की कैयाँ चढ़ा रहता है और उसे देख-देख कर रोने लगता है—

का सुख भओ सासरे मइयाँ, हमें गये को गुइयाँ।
परबू करै दूद पीबै कों सास के सँगै सइयाँ।
दिन भर बनी रात संकीरन, चढ़ै ससुर की कैयाँ।
भर-भर दैबो करै ईसुरी देखत हमें तरइयाँ ।।

बुन्देली गोरियों में गोदना गुदाने का चाव है और रिवाज भी। एक नारी गोदनारी से कहती है कि उसके अंग-अंग में कृष्ण गोद दो। भिन्न-भिन्न अंगों में कृष्ण के विभिन्न नामों का कैसा आनुप्रासिक संयोग किया है—

गोदौ गुदनन की गुदनारी, सबरी देह हमारी।
गालन पै गोबिन्द गोद दो, कर में कुंज बिहारी।
बइयन भौंत भरो बनमाली गरे धरो गिरधारी।
आनंद कंद लेव अँगिया में, माँग में लिखो मुरारी।
करया कोद करइयाँ ईसुर गोद मुखन मनहारी ।।

कुल की मान-मर्यादा को रक्षा बनाये रखने की चिन्ता में घर-परिवार का वरिष्ठ सदस्य नयी वधू को किस प्रकार सिखावन देता है—

बाहर रेजा पैर कड़ें गये, नीचो मूड़ करें गये।
जी सें नाव धरें ना केऊ ऐसी चाल चलें गये।
हवा चहै उड़ जैहै झूना, घूँघट हाँत धरें गये।
ईसुर इन गलियन में बिन्नू, धीरें पाँव धरें गये ।।

बुन्देलखण्ड की अधिकांश भूमि पथरीली है, कृषि योग्य कम है और इसलिए यहाँ का किसान और श्रमिक वर्ग प्रायः महुआ, बेर, अचार आदि पर गुजारा करता है। जो छोटी-मोटी खेती-बाड़ी होती है, वह भी किसी साल प्रकृति की कोप-भाजन बन जाती है। जीवन-निर्वाह के आधार महुआ, बेर पर समय रूठ जाय, तब फिर यहाँ के जन-जीवन की दुर्दशा की कल्पना की जा सकती है। ईसुरी ने लोक-जीवन के इस कठिन पीड़ा पक्ष को भी बड़ी संवेदनशील मानसिकता से चित्रित किया है—

आसों दै गओ साल करोंटा, करौ खाव सब खौंटा।
गोंउ पिसी खाँ गिरुआ लग गओ मउअन लग गओ लौंका।
ककना दोरो सब घर खाये रै गओ फकत अनौंटा।
कहत ईसुरी बाँदें रइओ जबर गाँठ को घौंटा॥

गेहूँ-पिसी में गेरुआ लग गया, महुआ लौंका से नष्ट हो गये, तो घर-गृहस्थी तो बिकेगी ही और ऐसी विपन्नावस्था में जो कुछ बचा-खुचा है, उसकी रक्षा के लिए मोटी गाँठ का घौंटा ही एक सहारा है। इसी तरह अकाल के दुष्परिणाम ने जन-जीवन की क्या दयनीय दशा कर दी है कि दो-दो दिन के फाँके पड़ते हैं, घरों में चूल्हे तक नहीं जलते—

आसों हौस सबई के भूले कइयक काँखे कूले।
कच्चे बेर बचे तक नइयाँ कँगीरन नें रूले।
फाँके परत दिना दो-दो के परचत नइयाँ चूले।
मारे-मारे फिरें ईसुरी बड़े-बड़े दिन दूले॥

बुन्देलखण्ड के लोक-जीवन का एक संत्रासपूर्ण पक्ष भी है, जो काफी पुराना प्रतीत होता है। घनी डाँगों में, जंगलों में, सूने मार्गों में, राहगीरों की लूट-पाट यहाँ होती रही है और अब तो इसका नया संस्करण एक विकराल राक्षस के रूप में आया है, डकैती, हत्या, बलात्कार जिसके बहुमुख हैं। डाँग और जंगलों के अतिरिक्त अब इसका कर्मक्षेत्र हर ग्राम और नगर हो गया है, जहाँ इसका अविराम निर्भय ताण्डव होता है और सुरक्षा के सारे प्रहरी एवं उपाय निश्चेष्ट खड़े हैं। निरुपाय, असहाय जो वीर बुन्देले कभी अपने पराक्रम, शौर्य और संघर्षशील स्वभाव के लिए प्रख्यात थे, उनकी इस छवि को आज की यह अपराधी मनोवृत्ति कलंकित कर रही है। ईसुरी ने अपने समय के लोक-जीवन पर इस संत्रास की छाया को भी अंकित किया है—

अब ना जाव मुसाफिर आगें, जात बिदा दिन माँगें।
मिलनें नहीं गाँव कोसन लों परती इकदम डाँगें।
है अँधयारी रात गैल में चोर चवाई लागें।
परों सुनत दो जनें लूट लये मार-मार के साँगें।
ईसुर कात रओ उठ जइयो अरुन सिखा जब जागें॥

वसन्त ऋतु के आगमन पर और विशेषतः होली के अवसर पर यहाँ का लोक-जीवन आमोद-प्रमोद और मौज-मस्ती में झूमने लगता है। फागों के फड़ जमने लगते हैं। रात-रात भर ढोलक की थाप और नगड़िया के ताल में बंध कर विविध रंग की ऐसी फागों के झला पै झला बरसते हैं कि जन-मानस और सारा वायुमण्डल रस से शराबोर हो जाता है। और कहीं राई का अखाड़ा जम गया, तो क्या कहना। इन गम्मतों में ईसुरी-ही-ईसुरी दिखायी देते हैं। ईसुरी की फागें इन आयोजनों में विशेष आकर्षण का केन्द्र होती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि ईसुरी की फागों में लोक-जीवन की अनूठी छटाएँ सहज रंग में, उन्मुक्त परिवेश में उभरी हैं, जो बुन्देली लोक-मानस में वही रस-प्लावन करती हैं, जो मैथिल क्षेत्र में विद्यापति-वाङ्मय और संस्कृत-जगत् में जयदेव का गीत-गोविन्द।

—शुक्लाना, छतरपुर, म० प्र०

ईसुरी की फागों में लोक-दर्शन

● डॉ० हरिसिंह घोष

शाश्वत सत्यों का साक्षात्कार करने वाले तत्वद्रष्टा मनीषियों की दार्शनिक ज्ञान-गंगा युगों-युगों से लोक-जीवन को आप्लावित कर रही है। लोक-मन ने उसे अपने ढंग से आत्मसात् किया, जिसकी वाणीगत अभिव्यक्ति लोक-गीतों और लोक-कथाओं में बिखरी पड़ी है। इसे ही हम लोक-दर्शन की संज्ञा देते हैं। लोक-दर्शन किसी विशिष्ट दार्शनिक सम्प्रदाय के सिद्धान्तों में नहीं बँधा होता, बल्कि विभिन्न विचारकों के सिद्धान्त-सूत्र जन-अनुभूतियों के साँचे में ढल कर लोक-विश्वास में घुल जाते हैं।

लोक काव्य लोक-विचारों से प्रभावित होता है और अपनी पूर्ववर्ती परम्पराओं, विचारों एवं सिद्धान्तों के प्रभाव के कारण लोक-विचारों में विविधता होती है। अतः लोक कवि की अभिव्यक्ति में विविधता होना तो स्वाभाविक ही है, तत्कालीन विचारधारा भी कवि को प्रभावित करती है। बुन्देली के अलहड़ कवि ईसुरी की फागों में लोक-हृदय की दार्शनिक भावना नदी के बहाव में धार की तरह दर्शित होती है। उसमें कहीं उपदेशात्मकता अथवा विचारात्मकता का पुट परिलक्षित नहीं होता, केवल सहजता है। उन्हें दर्शन के आईने में परखा जा सकता है।

परम तत्त्व का स्वरूप

उपनिषदों के अनुसार जगत् का सार और परम तत्व ब्रह्म है। ब्रह्म के दो रूपों का वर्णन किया गया है,यथा--पर अर्थात् निर्गुण ब्रह्म और अपर अर्थात् सगुण ब्रह्म। पहला सत्, चित् और आनन्द है। दूसरा नित्य, सर्वव्यापी, सर्वज्ञानी, सर्वशक्तिमान, कर्म का अधिष्ठाता, जगत् का स्रष्टा, पालक और संहारक तथा अन्तर्यामी है।[1] वैष्णवाचार्यों और संतों के प्रभाव से राम और कृष्ण लोक विश्वास में समा गये हैं और उक्त ब्रह्म के स्वरूप निरूपण को लोक-हृदय ने अपनी तरह से जाना यथा —दशरथ अजिर बिहारी राम और यशोदा नन्दन कृष्ण ही उनके ब्रह्म हैं, उन्हें सबकी खबर है, वे भूखा किसी को नहीं

१. भारतीय दर्शन के मूल तत्त्व--डॉ० रामनाथ शर्मा, पृ० ४६-४८, १९८०-८१।

भुलाते, धरती-आसमान का सब भार उन पर है। ईसुरी की फाग में यही दार्शनिक भावना सहजरूप में अभिव्यक्त हुई है—

जो है नेम अवधपति जू को एकउ दिना न चूको।
सबको ध्यान रात दिन राखत जल, थल, अग, जग, हूको।
खावे देत साँज लो सब खाँ कोउ परत न भूँको।
वे ही आसमान खाँ थामें भार धरें सब भू को।
ईसुर ऐसे ही मालिक के कदमन के ढिंग झूँको।

लोक-मन का यह विश्वास है कि ईश्वर घट-घटवासी है, दीन हृदय की पुकार वह अवश्य सुनता है और उसकी इच्छा के बिना पत्ता तक नहीं डुल सकता। ईसुरी ने भी अपनी फाग में यही कहा है—

जिनखाँ दीन द्रोपदी रोई सुनें कृष्ण जाँ होई।
ईसुर बचा लाज लई उनने वे चाहें सो होई।

आचार्य रामानुज के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रभाव भी जन सामान्य पर अत्यधिक हुआ। उनके दर्शन में मानसिक पक्ष से हृदय पक्ष अधिक प्रबल है, भक्ति तो उनके दर्शन का प्राण है।[1] उससे प्रभावित लोक-मन में यह सिद्धान्त बन गया है कि ईश्वर जिसकी रक्षा करता है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। ईसुरी इसकी पुष्टि में अन्य उदाहरणों के साथ-साथ अपना अनुभव भी बड़ी सहजता से कह जाते हैं—

जीके रामचन्द्र रखवारे, को कर सकत दगा रे।
धर नरसिंग रूप कड़ आये हिरनाकुस खाँ मारे।
राना जहर दओ मीरा खाँ पीतन प्रान समारे।
मसकी उतै ग्राह की गरदन झट गजराज उबारे।
ईसुर बचा लई है उनने सिर सें गाज हमारे।

माया

नाम एवं रूप की प्रतीति माया से है। माया अनिर्वचनीय है, परन्तु अनादि होते हुए भी ज्ञान के द्वारा उसका अंत होने से उसकी सत्ता नहीं है।[2] समर्थ स्वामी रामदास जी ने लिखा है कि केवल आत्मा ही सब जगह व्याप्त है

१. भारतीय दर्शन के मूल तत्त्व, पृ० १४।

२. हिन्दू-संस्कृति और दर्शनशास्त्र—हिन्दू संस्कृति अंक, कल्याण—पृ० २८३।

और बाकी सब चर और अचर मायिक या मायापूर्ण हैं।[1] माया के बन्धन का आभास होने पर भी जीव उससे छूट नहीं पाता, किन्तु मरने पर यह कटु सत्य प्रत्यक्ष दिखायी देता है; अरथी पर परते समय कोई साथ नहीं होता। जन-जन के हृदय में छिपे इस सत्य को कवि एक निराले ढंग से उजागर करता है—

जो है नदी नाव को भेरो, कउँ हम कउँ तुम खेलो।
मरती बेर धरत अरथी पै दिखा न परत दुकेलो।
घर जैबे की घरी आज जब एक घरी ना हेलो।
ईसुर कोउ काउ को नइयाँ सब संसार अकेलो॥

शास्त्रों में श्री भगवान् की तीन शक्तियों का उल्लेख मिलता है—अन्तरङ्गा, बहिरङ्गा और तटस्था। इनमें बहिरङ्गा प्रभु की माया शक्ति है। लोक-मन भी इस सत्य को अच्छी तरह जानता है कि संसार मे जो कुछ दिखायी देता है, वह प्रभु की माया ही है। ईसुरी ने इन पंक्तियों में यही कहा है—

जो तन पर स्वारथ के लाने जो कोउ करकें जाने।
नई जे महल दुमंजिला अपने ना बखरी दालाने।
जे सब माया के हैं चक्कर विरथा फिरत भुलाने।
कैंडा कैसो छोड़ ईसुरी हंसा होत रमाने॥

संसार और जगत्

वेदान्तादि शास्त्र में जीव-सृष्टि तथा ईश्वर-सृष्टि में भेद किया गया है। जीव-सृष्टि मिथ्या है, यह संसार रूप है, कल्पित है। किन्तु ईश्वर-सृष्टि सत्य है, यह जगत् रूप है। मुक्त होने पर संसार निवृत्ति होती है, किन्तु जगत् तब भी रहता है।[2] महाप्रभु श्री निम्बार्काचार्य ने जगत् को ब्रह्म का परिणाम बताया है। श्री वल्लभाचार्य ने भी जगत् के मिथ्यात्व का खण्डन किया है। अद्वैतवाद में दृश्य जगत् को प्रतीति मात्र माना गया है। बौद्ध दर्शन में विश्व के सभी पदार्थों को क्षणिक कहा गया है। किन्तु सामान्य जन-मानस इतने सूक्ष्म विवेचन को नहीं समझता, वह तो केवल यही जानता है कि संसार मिथ्या है और इसकी स्थिति क्षणिक है। ईसुरी ने भी संसार को ओस की बूँद का रूप देकर उसकी नश्वरता को दर्शाया है—"जो संसार ओस को बूंदा पवन लगे सें ढरने।"

---

१. हिन्दी दासबोध—समर्थ स्वामी रामदास जी, पृ० १३८, सं० २०१३।
२. मनीषी की लोक यात्रा—डॉ० भगवती प्रसाद सिंह, पृ० ४६२, १९६८।

लोक-हृदय किसी एक दार्शनिक सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से पूर्णतः बंध नहीं पाता। वह समय-समय पर भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों से प्रभावित होता रहता है। अद्वैतवाद का 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या', पूर्वमीमांसा दर्शन का कर्मफल विधान और लोकायत दर्शन का 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत' के सिद्धान्तों का सम्मिलित प्रभाव लोक-हृदय पर एक व्यावहारिक परिवर्तन के साथ दिखायी देता है, जिसे ईसुरी ने भी एक ही फाग में समेट लिया है—

राखें मन पंछी ना रानें, इक दिन सब खाँ जानें।
ना ये अटा अटारीं अपने ना बखरी दालानें।
खालो पीलो दैलो लैलो जेई लगे ठिकानें।
कर लो धरम कछू वा दिन खाँ जा दिन होत रमानें।
ईसुर बात मान लो मोरी लगी हाट उठ जानें॥

जीवात्मा और शरीर

जीव के सम्बन्ध में दार्शनिकों में मतभेद है। द्वैतवाद जीव और ब्रह्म को दो पृथक्-पृथक् सत्ताएँ मानता है और अद्वैतवाद जीव को ब्रह्म का अंश कहता है। विशिष्टाद्वैतवाद में कहा गया है कि जीव नित्य मुक्त शुद्ध ब्रह्म है। जीवतत्व के विषय में पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में जामाता मुनि कहते हैं कि जीव ज्ञान का आश्रय है। ज्ञान उसका गुण है। वह चेतन है और प्रकृति के परे है। वह ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता है, कर्मानुसार उसका गमनागमन होता है। सामान्य जन-मानस इतने गरिष्ठ ज्ञान को इसी रूप में आत्मसात् नहीं कर सका, किन्तु उसने अपनी भावभूमि के अनुरूप इसे रूपान्तरित कर लिया है। जीव के लिए 'हंसा' शब्द का प्रयोग लोक में व्यवहृत है। ईसुरी ने जीव को हंस और ब्रह्म को समुद्र का रूप देकर ब्रह्म-मिलन में परमानन्द की बात को अपने ढंग से कहा है—

हंसा उड़ चल देस बिरानें सरवर जायं सुकाने।
इतै रमे में कौन भलाई जितै बकन के थाने।
समद भरे हैं अगम उतै चल सुक पावै मनमाने।
बचत बने तो बचो ईसुरी ताने काल कमाने।

पुनः—

हंसा फिरें विपत के मारे अपने देस बिना रे।
समुदन के जे आयं रबइया पुखरन में तन गारे।

वैशेषिक दर्शन में कहा गया है कि जीव का जगत् में कर्त्तव्य है कि धर्म

का पालन करे। धर्माचार का विधान वेदों में भी है।[1] लोक-मन अधिक गहराई में नहीं जाता, किन्तु धम पर चलने की बात को मानता है। ईसुरी ने व्यावहारिक बुराइयों को गिनाते हुए धर्म पर चलने की बात कही है—

अपने संवर-संवर पग धारो, संसारी में यारो।
चलवू करे धरम को मारग रामै नईं बिसारो।
बुरए काम चुगली सें हरदम कढ़ियो काट किनारो।
जो कलजुग को वक्त ईसुरी जतन-जतन सें टारो।

शुद्धाद्वैतवाद में जीव के लिए ब्रह्म से प्रीति करना श्रेष्ठ माना गया और उसके अनुसार इस प्रीति की चरम परिणति श्रीकृष्ण में पति भाव की प्राप्ति है। इस सिद्धान्त ने लोक-मन को प्रभावित तो किया, किन्तु सूफियों की प्रेम-प्रणाली और कबीर की ज्ञान-प्रणाली ने भी अपना प्रभाव डाला, जिससे लोक-मन में यह सिद्धान्त मच-सा गया। जीवात्मा (प्रिया) ब्रह्म (प्रियतम) से मिलने को तड़प रही है।[2] यह तड़पन ईसुरी रचित फाग की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

"तलफत बिन बालम जो जीरा, तनक बंधत ना धीरा।"

पुनः—

"जब सें भई प्रेम की पीरा सुखी नहीं जो जीरा।
ओइ नीम में मानत ईसुर ओइ नीम को कीरा।"

आत्मा देह में रहती है, अनेक प्रकार के सुख-दुःखों का भोग करती है और अन्त में अचानक यह शरीर छोड़कर चली जाती है। आत्मा के बिना शरीर व्यर्थ होता है।[3] संचित कर्मों का भोग समाप्त होते ही मृत्यु निश्चित है। लोक-मन इसे अच्छी तरह जानता है और लोककवि के हृदय से ज्यों-के-त्यों भाव उमड़ पड़ते हैं—

"तन को कौन भरोसो करनें, आखिर इक दिन मरने।
जौं लौं जी की जियन जोरिया ऊबाँ वे दिन भरने।"

सभी देशों के धर्म सम्प्रदायों ने समवेत कण्ठ से यह घोषित किया है कि मानव-जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। चौरासी लक्ष स्थावर तथा जंगम देहों के भेद

१. हिन्दू-संस्कृति और दर्शनशास्त्र, पृ० २८१।
२. वही, पृ० २८५।
३. हिन्दी दासबोध, पृ० ४०८।

के उपरान्त ही प्रकृति के क्रम-विकास के नियमानुसार मनुष्य देह की प्राप्ति होती है।[1] मानसकार ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि—"कबहुँक कर करुना नर देही। देत ईस बिन हेत सनेही॥"

लोक-हृदय में यह सिद्धान्त दृढ़ विश्वास के रूप में ज्यों-का-त्यों प्रतिष्ठित है। ईसुरी रचित फागों की इन पंक्तियों में यही कहा गया है—

"मानुस बड़े भाग सें होवै, रजउ छोड़ दो लोवै।"

पुनः,

"मानुस होनें के ना होने, रजउ बोल लो नोंने।"

दार्शनिकों ने इस शरीर को पाँच तत्त्वों-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के मेल से निर्मित माना है। लोकायत दर्शन इसमें आकाश तत्त्व को नहीं मानता। किन्तु लोक-मानस का चिन्तन अनूठा है, वह इसे सामान्य झोपड़ी की तरह देखता है और उस पर भी अपना नहीं, प्रभु का अधिकार मानता है। ईसुरी का कवि-मन कितने चमत्कारिक ढंग से इसे प्रस्तुत करता है—

बखरी रइयत हैं भारे की, दई पिया प्यारे की।
कच्ची भींत उठी माटी की छाँह फूस चारे की।
बेबंदेज डरी बेवाड़ा ओइ में दस द्वारे की।
नईं किवार किवरियाँ एकउ बिना कुची तारे की।
ईसुर चाय निकारो जिदना हमें कौन वारे की।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ईसुरी व्यक्तिगत रूप से किसी विशेष दार्शनिक सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से बँधे नहीं थे। उनकी कविताई लोक के लिए थी और लोक-मनोभावना को वाणी देने का कार्य उन्होंने लोककवि होने के नाते बड़ी ईमानदारी से किया। उनके काव्य के दार्शनिक तथ्य लोक-दर्शन की अभिव्यक्ति हैं।

• घोषयाना मार्ग, छतरपुर (म० प्र०)

१. मनीषी की लोक यात्रा, पृ० ३७३।

ईसुरी के काव्य में सांस्कृतिक चेतना

● श्री प्रमोद पाठक

लोककवि ईसुरी बुन्देली भूमि की महानतम देन हैं, जिनके काव्य में संस्कृति, साहित्य और लोकजीवन अपनी समग्रता से रूपायित हुआ है। कवि का वैशिष्ट्य यह है कि उसने शिष्ट साहित्य से भाव उधार लेकर अपने काव्य को नहीं सजाया, इसीलिए उसमें लोकजीवन बड़ी स्वाभाविकता से अङ्कित हो गया है। लोकजीवन और लोकसंस्कृति की निकटता और सीधी-सादी अर्थपूर्ण व्यञ्जना के कारण ईसुरी का काव्य शिक्षित और अशिक्षित समाज में लोकप्रिय हो गया है।

आध्यात्मिक मूल्य—जीव, जगत् और ईश्वर क्या है, इसे ईसुरी ने बहुत अच्छी तरह भोगा और परखा था, इसीलिए इनके काव्य में यदि प्रियतमा के घर की देहरी बनने का जबरदस्त आग्रह है[1] तो कालिदास और कबीर की तरह निर्वेदपरक वैराग्य भावना भी। देह गेह, नेह के नाते सत्य अवश्य लगते हैं, पर वे परम सत्य तो नहीं हो सकते। परम सत्य तो ईश्वर ही है जिससे एक-न-एक दिन साक्षात्कार होना ही है—

तन कौ कौन भरोसो करनें, आखिर इक दिन मरनें।
जौ संसार ओस कौ बूंदा, पवन लगे सें दुरनें।
जौ लौ जी की जियन जोरिया, की खाँ जे दिन भरनें।
ईसुर ई संसारै आकें, बुरे काम खाँ डरनें॥

दया, धर्म, निःस्वार्थ भाव, मातृभूमि पर श्रद्धा और बलिदान आदि अनेक सांस्कृतिक मूल्य ईसुरी के काव्य के मूल्य बने हैं। युद्ध में शत्रु से पीठ न दिखाने का आदर्श है,[2] वहीं मैत्री में जन्म-जन्मान्तर साथ निबाहने की बात उन्होंने कही है।[3] परमार्थ भारतीय संस्कृति का मूलमन्त्र है, जिसका चित्रण करने में ईसुरी चूके नहीं हैं —

---

१. विध ने करी देह न मोरी, रजऊ क घर की देरी।
आवत जात चरन की धूरा, लगत जात हर बेरी।
२. जो कोऊ समर भूमि लड़ आवै, तन तरवारन खोवै।
देय न पीठ लेय छाती में, घाव सामने होवै॥
३. यारी सदा निबायें जइयो, बीच बसर जिन लइयो।

जो तन परस्वारथ के लानें, जो कोऊ करकें जानें।
नईं जे महल दुमंजिला अपने, ना बखरी दालानें।
जे सब माया के है चक्कर, बिरथा फिरत भुलानें।
कोंड़ा कैसो छोड़ ईसुरी, हंसा हुए रमानें॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चतुर्विध दर्शन मे ईसुरी का विश्वास है, इसीलिए एक ओर वे मदन-महीप के चारण दिखायी देते हैं[1] तो वहीं 'बखरी रैयत है भारे की', 'छूटो आज जगत सें नातो', 'नइयां रजउ काऊ के घर में' आदि फागों में निर्गुणिया सन्तों से प्रभावित दीख पड़ते हैं—

दीपक दिया धरम को जारो, सदा रात उजयारो,
धरम करे बिन करम खुले ना, बिना कुची ज्यों तारो।

लोकादर्श — लोकादर्शों की यों तो कोई सीमा नहीं है, फिर भी कर्मशीलता, उदात्त मानवता, पत्नीव्रत धर्म, पतिधर्म, प्रेमी और आराध्य के प्रति अनन्य और एकात्म भाव आदि सांस्कृतिक मूल्यों का वर्णन ईसुरी ने किया है। बुन्देली संस्कृति में विवाहित स्त्री के लिए सोलह शृङ्गार का विधान है, पर पति के परदेश जाने पर इसी शृङ्गार से कुल की मर्यादा जाती रहती है—

बाँके नैन कजरवा आँजौ, बलम बिना ना साजो।
दुलहन घरै दिखैया को है, बो परदेस बिराजो।
आई बड़ी बड़न खाँ ब्याही, अपने कुल खाँ लाजो।
करती कौन काम का कहिये, कजरौटी न माँजो।
साजौ नईं लगत है ईसुर, बेऔसर कौ बाजो॥

इसी प्रकार उत्सव भी पति के बिना फीके हैं—

हम पै नाहक रंग न डारो, घरै न प्रीतम प्यारो।

सत्य और प्रिय बोलना संस्कृति में आदिकाल से है, तभी ईसुरी कहते हैं—

सबसें बोलौ मीठी बानी, थोड़ी है जिंदगानी।
एई बानी सें तरे ईसुरी, बड़े-बड़े मुनि ग्यानी॥

कर्मशीलता बुन्देली संस्कृति का प्रमुख अंग है, यहाँ पुरुष भी क्या ललनाएं भी कठोर श्रम करती हैं किन्तु जब जीवन के अमूल्य शृंगारिक क्षण कर्म करते-करते ही बीतते हैं, तब सौन्दर्य-भोगी मन खीझ ही उठता है—

---

१. ईसुरी प्रकाश, पृ० २०।

ऐंगर बैठ लेओ कछु कानें, काम जनम भर रानें।
सबखाँ लागो रात जियत भर, जो नईं कभऊँ बढ़ानें।
करियो काम घरी भर रै कें, बिगर कछू नईं जानें।

भारतीय दाम्पत्य जीवन को कवि ने आदर्श जीवन माना है, इसीलिए जहाँ वह परकीया स्त्री की दुर्दशा का चित्रण करता है, वहीं परस्त्रीगामी पुरुष और बहु-पत्नीवादी पुरुष की दुरवस्था का चित्र भी खींचता है—

जो घर सौत-सौत के मारें, सोंज बनै न न्यारें।
गारीं गुफता भीतर करतीं, नगो तमासो द्वारें।
एक म्यान में कैसें पटतीं, ईसुर दो तरवारें।

प्रेम का आदर्श—प्रेम मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता और मूल प्रवृत्ति है। ईसुरी ने प्रेम का आदर्श नीर-क्षीरवत् निरूपित करते हुए लिखा है—

करकें नेह टोर जिन दइयो, दिन-दिन और बढ़इयो।
जैसें मिलै दूद में पानी, ऊसई मनै मिलइयो।
कात ईसुरी बाँय गये की, खबर बिसर जिन जइयो।

नेह का नाता एक बार जोड़कर पुनः तोड़ना प्रेम का आदर्श नहीं, सच्चा प्रेमी तो दिन-रात, उठते-बैठते, चलते-फिरते प्रिय का सान्निध्य चाहता है। लेकिन सामाजिक निषेध की दीवार से टकराकर उसमें एक असंतोष पनपता है जिसका परिणाम है तीव्रतम भावव्यंजना। ईसुरी की रजऊ विषयक प्रेम की पराकाष्ठा ने ही उन्हें उस मंजिल पर लाकर खड़ा कर दिया है, जहाँ से उन्हें अपनी रजऊ की मोहिनी में विश्वमोहिनी की झलक दिखायी पड़ने लगी है—

नइयाँ रजउ काऊ के घर में, बिरथा कोऊ भरमें।
सबमें है औ सबसे न्यारी, सब ठौरन में भरमें।
को कय अलख खलक की बातें, लखी न जाय नजर में।
ईसुर गिरधर रयँ राधा मे, राधा रयँ गिरधर में।

लोक विश्वास और बौद्धिक उन्नति—देवी-देवता, पीर-पैगम्बर, टोना-टोटका, झाड़-फूंक आदि पर विश्वास बुन्देलखण्ड में बहुत अधिक प्रचलित है। पनघट पर जाती रूपवती नायिका को एकाएक नजर लग गयी, उसका प्रभाव तो देखिये —

लचकी करहाईं जल भरतन, नीची गरदन करतन।
ना मालूम काउ पापी की, निघा बदन पर परतन।
खाकें झोंक गिरो तिरछोंहीं, बनी नहीं डग भरतन।

नजर लग जाने पर गुनियाँ या तांत्रिक अपना तंत्र-मंत्र विद्या से नजर को उतारते हैं। इन सभी स्थितियों का चित्रण बुन्देली फागों में मिलता है—

नोनें नई नजर के मारें, रातो रजउ हमारें।
रोजउ रोज झरइया गुनियां, दस-दस बेरा झारें।
मंत्र पढ़ाकें लट बंधवाई, जंत्र गरे में डारें।
बिधना-उदना अलफ बचावें, जिदना पटियाँ पारें।
ईसुर रोजउ रजउ के ऊपर, राई नोन उतारें।

इसके अतिरिक्त भाग्य और कर्म पर विश्वास भी ईसुरी की फागों में व्यक्त हुए हैं। सामाजिक बुराइयों पर दृष्टिपात बौद्धिक उन्नति का परिचायक है। इस प्रकार की फागें नीतिपूर्ण और शिक्षाप्रद हैं—

गाँजा पियो न प्रीतम प्यारे, जर में कमल तुमारे।
जारत काम बिगारत सूरत, सूखत रक्तनि मारे॥

महुआ बुन्देलखण्ड का मेवा है, उसकी उपयोगिता और विनाश को देखते हुए वे कह उठते हैं—

इनपै लगे कुलरियाँ छालन, महुआ मानस पालन।
इनैं काटबो ना चइयत तो, काट देत जो कालन।

जन-रुचि और सौन्दर्य-बोध

बुन्देलखण्ड में वस्त्रों के अन्तर्गत औरतों में घाघरा, चोली, चूनर, धोती तथा पुरुषों में धोती, कुरता, मिरजई आदि विशेष रूप से प्रचलित हैं। स्त्रियों का आकर्षण आभूषणों के प्रति अधिक होता है। ईसुरी ने सभी प्रकार के आभूषणों से सज्जित नायिका का चित्रण किया है। सिर पर बेंदी, कानों में कर्णफूल, कान में झुमका, नाक में बेसर, गले में साँकर, हार, हाथ में गजरा, ककना, दोहरो, कमर में करधनी, पैरों में पैजना, झाँझें, बिछिया, छल्ला आदि से सज्जित नायिका का रूप ही कुछ और हो जाता है जिसे सब लोग मुग्ध भाव से देखते ही रह जाते हैं —

कानन डुलें राधिका जीके, लगें तरकुला नीके।
आनन्द कन्द चन्द के ऊपर, दो तारागन झींके।

परतन पसर करत गालन पै, तरें झुमरा जीके ।
जिनके घर में जो पैराओ, और जनन ने सीके ।

ये वस्त्राभूषण सौन्दर्य को तो द्विगुणित करते ही हैं, उस स्त्री-विशेष की पारिवारिक सम्पन्नता-विपन्नता को भी प्रकट करते है। गुदना गुदवाने का प्रचलन ग्रामीण जन-जीवन में आज भी है। ग्रामीण स्त्रियाँ तो उन्हें स्वर्ग-प्राप्ति का साधन भी मानती हैं। इसलिए वे अंग-प्रत्यंग में राधाकृष्ण, रामसीता विषयक झाँकियाँ और विविध प्रकार के फूल गुदवाती हैं। कुछ विशेष अंगों पर गुदवाये गुदनों का सौन्दर्य-बोध में विशेष महत्व है—

गुदना लगत गाल पै प्यारो,
हमरवाँ रजउ तुमारो।

कला-सृष्टि—ईसुरी जनता के शृंगार और उल्लास का कवि है। लोक-नृत्य, वाद्य, संगीत और साहित्य उसकी प्रतिभा को पाकर निखर उठे हैं। ईसुरी की फागों पर एक विशेष प्रकार का नृत्य प्रचलित है, जिसे राई कहते हैं। इस नृत्य में पुरुष गाता है और बेड़नी नृत्य करती है। राई में एक विशेष धुन प्रचलित है, जिसे सुनते ही बेड़नी के ही पैर नहीं, सामान्य मानव के भी पैर थिरक उठते है, अनायास ही हाथ बाँहों पर पहुँच जाते हैं और मन पूरी तरह उसमें डूब चुका होता है—

नैना रँगरेजिन ने मारे, कर दये प्रान दरारे ।
दबे रात अलफा के भीतर, जुबन दोउ अनियारे ।
गिरवी लेत दिखाने हमखाँ, तोरे छूटा कारे ।
ईसुर बड़े भाग हैं उनके, जो इनसें ना हारे ।।

लौकिक और पारलौकिक लीलाएँ भी इस नृत्य का आधार बनती हैं। संगीत की दृष्टि से ईसुरी ने फाग साहित्य को एक नवीन विधा चौकड़याऊ फागों के रूप मे दी, जो लोकधुन में गायी जाती है। अब इन्हें लोग यमन, वागेश्वरी और वृन्दावनी सारंग में भी गाने लगे हैं। द्वापर, राधाकृष्ण और नेत्र विषयक फागों में साहित्य की दृष्टि से उच्चकोटि की भावव्यञ्जना दिखायी देती है। नेत्र व्यापार विषयक चित्रण तो साहित्य की अक्षुण्ण निधि है। यहाँ तक कि रूप और नेत्रों के साँगरूपकों में उन्होंने रीति युग के अच्छे-अच्छे आचार्यों को भी मात दे दी है।

सामाजिक सम्बन्ध और व्यवहार

ईसुरी के काव्य में सामाजिक सम्बन्धों का विशद चित्रण है। कहीं गम्भीर

निर्वेदपरक सामाजिक सम्बन्धों का चित्रण है, तो कहीं हास-परिहास पूर्ण प्रसंगों की अवतारणा—

नइयाँ कोऊ को कोऊ सहाई, सब दुनिया मँजियाई।
बिपत समय में एक राम बिन, काऊ न होत सहाई।

नायिका जा रही है, सामने गुरुजन हैं। इधर नायक आकुल है। उस समय की स्थिति का चित्रण देखिये —

चलती बेर नजर भर हेरो, मन भर जावै मेरो।
मिला लेव आँखन सें आँखें, घूँघट टनक उघेरो।
टपटप अँसुआ गिरत नैन सों, चितै-चितै मुख तेरो।
ईसुर कात बिदा की बेरा, होत विधाता बैरो ।।

उत्सव और संस्कार

उत्सवों में फागोत्सव का चित्रण ईसुरी ने किया है। बुन्देलखण्ड में होली-दाह के दूसरे दिन पूर्वाह्न में कीच-गिलाये की होली होती है और अपराह्न से रंग की होली। पिचकारी द्वारा एक दूसरे पर रंग डालने का उत्साही वर्णन ईसुरी के काव्य में खूब मिलता है। गाँवों में द्वार-द्वार पर फाग मण्डलियाँ होती हैं। गृहस्थ औरतें भी फाग खेलने निकलती हैं। रंग की प्रधानता होती है, अतः इसे रंगोत्सव के रूप में ग्रहण किया जाता है। जो फागें बसन्तोत्सव के बाद गायी जाती हैं, वे रंग-अबीर से शराबोर होती हैं—

सूजै इन आँखन अलबेली, जग में रजउ अकेली।
भरकें मूठ गुलाल धन्य वे, जिनके ऊपर मेली।
भाग्यवान जिनने पिचकारी, रजउ के ऊपर ठेली।
अबकी बेरा उनने ईसुर, फाग सासरे खेली।

जन्म, विवाह और मृत्यु जीवन के शाश्वत परिवर्तन हैं। यौवन मदमाते क्षणों से अधिक सम्बन्ध रखता है, इसलिए उसमें विवाह संस्कार का चित्रण अधिक है —

जिदना सोने के दिन होवें, बिदा होत में रोवें।
सीस नवाय उबटनों करकें, माँग भरो सिर गोवें।
देवें लगा महाउर हरदी, पावन पुतरी पोवें।
डोला संग बारपुर जावें, नाउनियाँ माँ धोवें।
ईसुर जबई पतिव्रत पूरो, पति के संगै सोवें।

इन स्थलों पर सामाजिक दोषों (वाल-विवाह के दोषों) को गिनाने से भी वे नहीं चूके हैं। मृत्यु परम सत्य से एकाकार की घड़ी है, इसलिए मृत्यु संस्कार भी वुन्देली संस्कृति में उतना ही महत्व रखता है, जितने कि जन्म और विवाह-संस्कार। लौकिक व्यामोह और स्वजनों से विछाह के कारण मृत्यु प्रियकर नहीं है, पर सत्य तो वही है—

इक दिन होत सबई को गौनों, होनो और अनहोनो।
जानें परत सासरे साँसऊँ, बुरऔ लगे चाय नोनों।

विविध परिदृश्य

सांस्कृतिक परिदृश्यों में राम और कृष्ण विषयक लीलाओं का चित्रण हुआ है। राम और कृष्ण की सरस लीलाएँ जहाँ मर्यादा और पूज्य भाव से प्रेरित हैं, वहीं राधाकृष्ण की लौकिक जीवन से घुलमिल गयी हैं। उत्सवों पर मेलों का आयोजन भी संस्कृति का अभिन्न अंग है। देहातों के मेले विशेष प्रकार के होते हैं। पुरुष-नारी, बाल-वृद्ध सभी में विशेष उत्साह आ जाता है। देखने की लालसा प्रत्येक जन-मन में जाग्रत हो जाती है। ऐवे चित्र उरेहने में भी ईसुरी नहीं चूके, देखिये—

मेला खजुराहो को भारी, चलो देखिये प्यारी।
महादेव के दरसन करियो, पूजे आस तुमारो।
भाँत-भाँत के लाग जुरे हैं, कर-कर अपनी त्यारो।
कात ईसुरी चलई कें देखो, दिल खुस हो जैहे भारी।।

ईसुरी ने केवल जीवन के आदर्श का ही नहीं, यथार्थ का भी चित्रण किया है। ऋतुओं का परिवर्तन जहाँ समृद्ध जनों में मस्ती और उल्लास भर देता है, वहीं निर्धनों को प्रतिपल जीवन-निर्वाह की चिन्ता में जलाता रहता है—

फाँके परत दिना दो-दो के, परचत नइयाँ चूले।
मरे जात भूँकन के मारे, अँदरा कनवा लूले।

समग्रतः ईसुरी के काव्य में वुन्देली संस्कृति का चित्रण वड़ी सजीवता से हुआ है। लोक जीवन से निकटता के कारण उसमें भावुकता और वैचारिकता का मणिकाञ्चन योग है। इसलिए रूप-सौन्दर्य से लेकर ऐन्द्रिक उत्तेजना के दृश्य, ईश्वरोन्मुखी वैचारिक सत्यता, जन-जीवन के आदर्श, उनके विश्वास, इच्छाएं, कलाएँ आदि सभी का चित्रण ईसुरी ने अपने काव्य में किया है। केवल इतनी फागों में संस्कृति के इतने आयामों को समग्रता व सजीवता से चित्रित कर देना बहुत बड़ी वात है।

—नरसिंह पुरवा, छतरपुर

ईसुरी की फागों का पाठ-निर्धारण

● श्री घनश्याम कश्यप

किसी साहित्यिक कृति का पाठ-निर्धारण करना रचनाकार और उसके प्रामाणिक अभिलेख के अभाव में बहुत कठिन काम होता है। मुश्किल तब और बढ़ जाती है, यदि वह रचना लोकगायकों के अनेक कण्ठों में तैरती स्मृति के थपेड़े खाती बदलती रही है। विगत चालीस-पचास वर्षों से ही ईसुरी की फागों के लिखित रूप सामने आये हैं, जब कि ईसुरी को हुए लगभग डेढ़ सौ वर्ष हो चुके हैं। दीर्घकाल तक कवि की फागें लोकगायकों के कण्ठों में बसी रहीं। इन फागों के मूल रूप लिपिबद्ध रूप से कितने बदल गये, यह निर्धारण करना अधिकारी जानकारों का काम होना चाहिए, किन्तु फागों की लोकप्रियता के कारण अनधिकारी भी उन्हें मनमाने रूप में लिखकर प्रस्तुत कर रहे हैं। अतः आज ईसुरी की फागों के अनेक विकृत पाठ हमारे सामने हैं जो कुछ उदाहरणों से स्पष्ट होगा।

ईसुरी ने ठेठ वुन्देली शब्दों का प्रयोग किया है। ठीक से न समझकर लोगों ने उन्हें खूब तोड़ा-मरोड़ा है, जिससे अर्थ का अनर्थ तो हुआ ही, रचना के काव्य-सौन्दर्य को भी क्षति पहुँची। नीचे उदाहरणों में रेखांकित अशुद्ध शब्दों की जगह ठेठ वुन्देली में सुप्रचलित ये शब्द होने चाहिए थे :—

उसीसें = सिरहाने, सबहार = सब ओर, उवाराने = उपद्रव करने लगे, वासन = बसने, ढारी = जल चढ़ाया, धार = रंग की धार।

१—आपुन आय उसो में ठाड़े, झपट परी मैं पइयाँ।
२—देखो रजउ खों पटियाँ पारें, सिर सब यार उघारें।
३— कात 'ईसुरी' ई गोकुल में, जदुबंसी उमदानें।
४—बांकन लगे काम महलन पै, चंबोदरे परेवा।
५—मन आनंद गई मंदिर में, शिव की मूरत धारो।
६—लगतन पीक लौट गई सारी, गइ तिन्नी के नीचें।

पंक्तियों में रखे गलत शब्दों के स्थान पर यदि ऊपर दिये शब्द रखकर अर्थ समझा जाय, तो भाव बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। महाकवियों का शब्द-

सामर्थ्य और पदविन्यास नपा-तुला होता है। ईसुरी का शब्द-लाघव और उनकी सहज प्रेषणीयता विद्वानों में चर्चित है। वे भला ऐसे गलत शब्द प्रयोग क्यों करते, जो अर्थ ही गड़बड़ा दें ? अब जरा इस फाग के पाठ पर ध्यान दीजिए—

हो गये फुनगुनियन सें फोरा, पैलउं हते ददोरा।
एक के ऐंगर दूजो हो गओ, दो के भये दो जोरा।
अंगुरन धरे गदेरी सूजो, मिथल गये सब फोरा।
ईसुर अब के दुक्ख देह भो, ऐसी परो बिलोरा।

यह फाग अधूरी है और इसका पाठ भी विकृत है। रेखांकित पंक्ति में अंगुरन शब्द उंगलियों के लिए आया है। बुन्देली में एकवचन में उंगरिया बहुवचन में उगरियां शब्द प्रचलित हैं। इसी तरह गदेरी शब्द बुन्देली में नहीं है। यह तो गदिया और हथेली शब्दों की वर्णसंकर सन्तान है। फिर पोरा शब्द को बदलकर फोरा किया और उन्हें मसल डाला। कैसा खिलवाड़ किया लेखक ने ? मेरे संग्रह में इसी फाग का यह पाठ है :—

हो गओ फुनगुनियां से फोरा। पैलें हतो ददोरा।
एक के ऐंगर भओ दूसरो, दो के भये कइ जोरा।
गदिया तरें उंगरियां सूजों, सूज गये सब पोरा।
दबा होत रइ दर्द गओ ना एक मास दिन सोरा।
फोरा से भओ खता 'ईसुरी' जो रओ आन बिलोरा।

दोनों फागों की तुलना करने पर दूसरा पाठ ही उपयुक्त है, जिसमें भावान्विति की पूर्णता है तथा कृत्रिमता और क्लिष्टता कहीं नही। कवि ने रोग का क्रमिक विकास दिखा कर कैसा सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। ईसुरी के एक प्रशंसक बता रहे थे कि ईसुरी ने अपनी फागों में तुकों की ऐसी योजना की है कि कहीं पुनरुक्ति नहीं हुई है। पहले पाठ में फोरा की तुक पहली और तीसरी पंक्ति में रखने से पुनरुक्ति दोष भी हुआ है। शब्द-सम्पदा के धनी ईसुरी ऐसी भूल क्यों करते ?

ईसुरी की फागों का पहला ज्ञात संग्रह सन् १९०५ में छपा था, जिसे बाबू वृन्दावनलाल वर्मा ने देखा था। उसमें कुल ५०-६० फागें थीं। कवि की लोकप्रियता के कारण ऐसे ही १०-५ पन्नों के छुटपुट संग्रह छपते रहे हैं जो गारी, गजल, बारहमासी की किताबों के साथ हाट बाजार में आज भी बिकते हैं। ऐसे बाजारू संकलनों में शुद्ध पाठ की आशा ही व्यर्थ है। चौथे दशक में श्री कृष्णानन्द जी गुप्त ने ईसुरी की फागों का एक प्रामाणिक संग्रह निकाला था

जो मुझे देखने को नहीं मिला किन्तु 'ईसुरी प्रकाश' एक अन्य बड़ा संग्रह झांसी से छपा, जिसके दोनों संस्करणों में क्रमशः ३५० और ४५० फागें थीं। इस पाठ के कुछ नमूने ऊपर दिये गये हैं। ईसुरी प्रकाश का पाठ कैसा है, ये दो फागें देखने से स्थिति और स्पष्ट हो जाती है—

अटकर प्रीत करे से जाने कये से झूटी मानें
इतते निगत जात हैं उतखां, हाल वे हाल भुलाने।
कातन कछू कछू के आवे रअत न बुद्धि ठिकाने।
दाबत देख दूरे सें नकुआ लासुन बांई बसाने।
ईसुरी कात कोउ ना बिगरों हम बेतरा नसानें।
(फाग क्र० ३२६)

अब फाग क्रमांक ३२९ भी देखिए—

करकें प्रीत करे सो जाने, कात की कोउ न मानें।
दाबन लगे दूर से नकुआ, लासुन भरे बसाने।
काने कछु कछु के आबे ना रई बुद्धि ठिकाने।
बिगरे कैउ अदिन सें ईसुर हम बेतरा नसानें। (ईसुरी प्रकाश)

ये दो फागें वस्तुतः एक ही फाग के दो प्रक्षिप्त रूप हैं। क्या पंक्तियों को ऐसे उलट-फेर कर एक फाग को दो बना देना किसी बाजीगरी से कम है ? पर यह खिलवाड़ उस महाकवि की गरिमा को कैसे बढ़ायेगा, समझ में नहीं आता।

अव्यवस्थित और दूषित पाठ वाले ऐसे संग्रहों को साहित्य-जगत् नहीं स्वीकार सकता। अतः यह आवश्यक था कि महाकवियों से टक्कर लेने वाले इस कवि की फागों का व्यवस्थित संकलन तैयार किया जाय। इसीलिए मैंने ईसुरी की ज्ञात समस्त फागों का संकलन और वर्गीकरण किया। एक ही फाग के भिन्न पाठों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया, भर्ती की पंक्तियों की काट-छांट की, उक्तियों-पक्तियों का क्रम-निर्धारण कर एक परिष्कृत पाण्डुलिपि तैयार की। संकलन छपवाने से पहले मैंने कुछ सिद्धान्त स्थिर किये और उनके निष्कर्ष पर फागों को कस कर बार-बार देखा-परखा। इन सब बातों की चर्चा यहां अत्यन्त प्रासंगिक है।

लोक गीत और मिलावट

बुन्देली का विशाल फाग साहित्य भले ही लोकगीत की कोटि में रखा जाय, किन्तु ईसुरी जैसे महाकवि की कृतियाँ उस कोटि में शामिल नहीं की

जानी चाहिए। वे अपनी सहजता और मार्मिकता के कारण बुन्देली जनता में अत्यन्त लोकप्रिय हैं, किन्तु वे लोकगीत नहीं। आचार्यों ने जैसे विद्यापति और सूर के पदों को लोकगीतों की पूर्व प्रचलित समृद्ध परम्परा का पूर्ण विकास कहा है ठीक उसी तरह बुन्देलखण्ड में लोकगीतों के रूप में प्रचलित फागों की पूर्णता हम ईसुरी में पाते हैं। उनकी फागें सर्जनात्मक साहित्य के अन्तर्गत आती हैं, लोकगीतों में नहीं। लोकगीत किसी एक रचनाकार की कृति नहीं होता। उस अनाम कृति को असंख्य गायकों की कला-रुचियाँ परिवर्तित करती रहती हैं। लोकगीत का पाठ वही मान्य होता है जो लोकगायक कहे, भले ही वह घटा-बढ़ाकर पेश किया गया हो। कबीर, सूर और मीराँ की रचनाओं के मनमाने रूप लोकगायकों में प्रचलित हैं, पर साहित्य-जगत् में वे सभी स्वीकृत नहीं। जिस तरह इन महाकवियों की स्वीकृत कृतियों पर उनके व्यक्तित्व की सुनिश्चित छाप है, उसी तरह ईसुरी की फागों की पहचान अलग है। उन्हें मनचाहे ढंग से तोड़-मरोड़ और घटा-बढ़ा कर लोकगीतों की तरह प्रस्तुत करना एक साहित्यिक अपराध होगा।

कुछ लोकगीतों का कलेवर ऐसा होता है कि गायक उनमें अपनी तरफ से भी जोड़ते चले जाते हैं। उदाहरण के लिए देखिए—

ढुंड़वाय लियो मोरे महराज कि मोरी झूलत बेंदी गिर गई।

गायक बेंदी के विविध पक्षों को जोड़ते चले जाते हैं जैसे बेंदी किस धातु की बनी है, किस शहर में बनी, किसने बनायी और बनवायी, बेंदी को कौन-कौन ढूंढ़ रहा है आदि। जोड़ते चले जाने की यह प्रवृत्ति ईसुरी का फागों में नहीं अपनायी जा सकती है क्योंकि उनकी अपनी सुनिश्चित भावान्वित, भाषा का स्वरूप और छन्द का अपना गठन होता है।

भारतीय साहित्य में एक विचित्र बात दिखायी देती है कि दूसरों की कृतियों में विद्वान् हमेशा कुछ-न-कुछ जोड़ते रहे हैं। शास्त्र पुराण हों या वाल्मीकि, व्यास, सूर, तुलसी, कबीर जैसे महाकवियों की कृतियाँ, सभी में लोगों ने खूब मिलावट की है। तभी तो 'जय' महाकाव्य जो मूलतः २० हजार श्लोकों का था, बढ़कर लक्षाधिक श्लोकों का महाभारत बना और तुलसी के रामचरित मानस में भी रामकलेवा, अहिरावन आदि क्षेपक जुड़े। ऐसे मिलावट वाले मुद्रित ग्रंथ देखे जा सकते हैं। असल में भारतीय मानसिकता ही मिलावटधर्मी है। लोग उपभोक्ता वस्तुओं में मिलावट कर मुनाफा तो कमाते ही हैं, साहित्य में भी मिलावट किये बिना नहीं मानते। जिस तरह 'कहत कबीर सुनो भाई

साधो' छाप के अनेक पद लोग रोज गाते हैं जब कि वे उनके नहीं थे, इसी प्रकार ईसुरी की छाप लगाकर कई फागें लोग कहते हैं।

बुन्देली फाग साहित्य के एक शोधकर्त्ता श्री श्यामसुन्दर बादल ने अपने शोध ग्रंथ में लिखा है कि छतरपुर नरेश की आज्ञा से ठठेवरा के माफीदार श्री नन्ने भैया ने ईसुरी की चार सहस्र फागों का संग्रह किया और बुधवारा के श्री जगन्नाथ गुप्त ने ईसुरी की हजारों फागें संगृहीत की हैं। जब सूरदास के सवा लाख पद कट-छंट कर साहित्य-जगत् में लगभग ५ हजार पद ही मान्य हुए, तो ईसुरी की हजारों फागों की भी यही कहानी होगी। यदि ऐसा नहीं है तो उन दुर्लभ संग्रहों को खोज कर विद्वानों को उनका उद्धार करना चाहिए। ईसुरी रचित साहित्य के अन्तर्गत कुछ सज्जन कवि की कही घनाक्षरी, प्रभाती, कुण्डलिया, दोहा आदि भी बताते हैं। मैंने इन कृतियों को देखा है किन्तु, उनमें साहित्य सुरभि नहीं जैसी कवि की फागों में है। ये रचनाएँ प्रायः संदिग्ध ही हैं।

एक समस्या और है। ईसुरी के समकालीन एक प्रसिद्ध फागकार गंगाधर व्यास भी थे। अन्य और भी हुए, पर वैसे प्रसिद्ध नहीं। ईसुरी की अनेक फागें गंगाधर के नाम से और इनकी उनके नाम से प्रचलित हैं। गंगाधर अधिक पढ़े-लिखे और रीतिकालीन कवियों से प्रभावित फागकार रहे जब कि ईसुरी के साथ यह बात नहीं है।

वे सर्वथा मौलिक कवि हैं। उन्होंने रीतिकालीन कवि तो क्या सूर, तुलसी की प्रबल काव्यधाराओं से भी प्रभाव ग्रहण नहीं किया। ईसुरी की राम और कृष्ण विषयक फागों को पढ़कर यह प्रमाणित होता है। विरहिणी राधा का विषण्ण किन्तु अलमस्त जोगिनी का यह चित्र, जो ईसुरी ने प्रस्तुत किया है, शायद ही कृष्ण काव्य में मिले! देखिये इसका नयापन और गतिमय सौन्दर्य—

जोगिन भई राधका तोरी, बरस बीस की गोरी।
राख लगाये लटें छुटकाये, डरी कँदा पैर झारी।
गाबै, बजत चमीटा चुटकी, चमक रई ना चोरी।
फेरी देत फिरत फिरकी सी, ब्रजवासिन की खोरी।
उन गुपाल सें कइयो ईसुर, जै गुपाल की मोरी।

यही गत्यात्मक भावांकन ईसुरी की मौलिकता की खास पहचान है। फाग में 'चमक' शब्द खड़ी बोली के अर्थ में नहीं, ठेठ बुन्देली के लज्जा के अर्थ में है।

संकुल भावान्विति और व्यापक कल्पना

अब भावान्विति पर जरा विचार किया जाय। मुक्तक रचना कोई दीवानगी या प्रलाप नहीं। उसमें भाव की एकता, कथन की क्रमबद्धता, विचार लाघव और ऐसी कसावट होती है कि भाव सम्प्रेषण में कहीं शिथिलता न रहे। तर्कहीन पदन्यास रचना में बिखराव उत्पन्न करता है, जिससे उसकी शक्ति और सौन्दर्य दोनों नष्ट हो जाते हैं तथा श्रोता और पाठक के चित्त पर उसका संगठित प्रभाव नहीं पड़ पाता। मुक्तककार अपनी रचना को इतना माँजता है कि उसमें भाव पूरी तरह चमक उठता है, फिर ईसुरी जैसे महाकवि की भावान्विति का तो कहना ही क्या? उनकी फागों में विचारों की बुनावट में शैथिल्य कहीं नहीं पाया जाता। यह फाग देखें—

मैने बाट रात भर हेरी, छैल बेदरदी तेरी।
पीकत दई पपीरा जैसी, कहाँ लगाई देरी।
भीतर सें बाहर हो आई, दै दै आई फेरी।
उठ-उठ भगी सेज सूनी सें, आँख लगी ना मेरी।
तलफ-तलफ सो गई ईसुरी, तीतुर बिना बटेरी।

इसी फाग में दूषित और खंडित पाठ का नमूना है—

आउन आदी रात नो हेरी, पिय बेदरदी तेरी।
भीतर से बाहर नों आबैं, छी-छी जाबे देरी।
ऐरो लए परी पलका पै काऊ पहीतें टेरी।
ईसुर सारी रैन तड़प गई, पिया करी काँ देरो।

जिस तरह कवित्त और सवैयों में अंतिम पंक्ति उसकी पूर्व पंक्तियों का मार्मिक समर्थन कर सम्पूर्ण भाव का निचोड़ प्रस्तुत करती है, वैसे ही ईसुरी की अनेक फागों में अंतिम पंक्तियाँ बड़ी प्रभावोत्पादक होती हैं, जिनमें कहीं कोई कहावत, मुहावरा अथवा विलक्षण उक्ति नियोजित रहती है। ऐसी पंक्तियाँ भाव को चरम बिन्दु तक पहुँचा देती हैं। यदि पाठ में ऐसी मार्मिक पंक्तियाँ छूट जाएँ तो भावान्विति का उत्साही ढह जायेगा। फागों के ऐसे अनेक खंडित पाठ जहाँ-तहाँ प्रचलित हैं जिनका परिष्कार अत्यन्त आवश्यक है।

प्रभावी भाव व्यंजना के लिए कवि अपनी व्यापक अनुभूति से ऐसी वस्तु-योजना गठित करता है जो उसके आस-पास जन-जीवन में विद्यमान होती है। किन्तु वह इतने ही संतुष्ट नहीं होता और अपनी कल्पना से जगत् के व्यापक

परिदृश्य उसमें नियोजित कर उसे चमत्कारी बना देता है। कहीं-कहीं कवि ने व्यापक और विषम तत्वों के भाव संगठन से जो चमत्कार पैदा किया है, वह पाठक को विस्मय विमुग्ध ही नहीं करता, समस्त चराचर विश्व की सीमाओं तक उसकी चेतना को प्रसारित कर देता है। भावक की समग्र सत्ता उस व्यापक दृश्य पटल के इन्द्रधनुषी रंगों में रँगकर लोकोत्तर आनन्द में डूब जाती है, फिर वह चित्र भले ही किसी छोटे से भाव पर हो क्यों न टिका हो। कविता का यही तो वरदान है। नीचे के उदाहरण में कवि ने अपनी कल्पना से एक मांसल भाव के पोषण के लिए खाँड के खिलौनों के मिठास, समुद्र की हिलोरों की विशालता, पंछियों की प्यास, दानी की उदारता, याचक की लोलुपता आदि विषम तत्वों को फाग के छोटे-से छन्द में गुम्फित किया है जो द्रष्टव्य है—

जुबना दए राम ने तोरें, सब कोउ आवत दोरें।
आएँ नईं खांड के घुल्ला, पिएँ लेत ना घोरें।
का भओ जात हात के फेरें, नईं लेत कछु टोरें।
पंछी पिएँ घटी नईं जाती, ईसुर समुद हिलोरें।

रसराज शृंगार की ऐसी सृष्टि में कवि विद्यापति और बिहारी से होड़ लेता दिखायी देता है। रस से छलकती ये भावों की प्यालियाँ काव्य रसिकों को भावोन्मत्त कर देती हैं। गलत शब्द विन्यास या वाक्यांश के अनर्गल प्रयोग से कोई लेखक तोड़ कर इनका सारा रस मटियामेट न करे, काव्य-सौन्दर्य के इन दुर्लभ चित्रों को बदरंग न बनाये।

कवि की भाषा का स्वरूप

यद्यपि बुन्देलखण्ड यमुना, नर्मदा, चम्बल और टोंस नदियों तक फैला है, किन्तु ठेठ बुन्देली बोली का सहज रूप झांसी और सागर डिवीजनों के सुदूर गाँवों में ही मिलता है। अब से सौ-सवा सौ वर्ष पहले आवागमन सीमित था, अतः इस बोली का रूप मिश्रित नहीं था। ईसुरी की भाषा हूबहू वही है जो गाँव वाले बोलते हैं। न कृत्रिमता, न क्लिष्टता पर सादगी-ही-सादगी! बोलचाली भाषा का यदि सूक्ष्म विश्लेषण किया जाय तो हम पाएँगे कि अनेक उक्तियों की बहुत आवृत्ति होती है। कुछ आवृत्तिधर्मी उक्तियाँ तो कहावतों और मुहावरों जैसी सशक्त होती हैं और उनके गिने-चुने सीमित शब्दों में गहरी अर्थगर्भिता और व्यंजकता होती है। जब कोई बुन्देलो अपने परिचित से कहता है, 'काए भैया' तो दो शब्दों का यह प्रश्न बहुआयामी टोह लेता हुआ

पारस्परिक सम्बन्धों और मानसिकता का समग्र प्रकाशन करता है। प्रश्नकर्ता की जिज्ञासा में हर्ष, विषाद, कृतज्ञता, करुणा, उत्साह, शंका आदि विविध भाव प्रकट हो सकते हैं। ईसुरी ने इन्हीं व्यंजक उक्तियों को अपनी फागों में बड़े कौशल से नियोजित किया। यह बात एक उदाहरण से भली-भाँति समझी जा सकती है—

वन लों पठै दए दोउ भैया, काए कँकई मैया।
पिता पठै सुरधाम बोर दई, रघुबंसिन की नैया।
हती सुमित्रा कौसल्या कें, एकइ एक डरैया।
ईसुर फिरी अवध में कारी, को पत भाँत रखैया।

यहाँ 'पठै दए', 'काए मैया', 'एक डरैया' बहु आवृत्तिधर्मी उक्तियाँ हैं और नैया बोरना, कारी फिरना, पतभाँत रखैया तो मुहावरे हैं ही। इन पदबंधों के सुविचारित नियोजन से व्यंजकता और प्रेषणीयता तो बढ़ी ही, भाषा का सहज प्रवाह भी रक्षित रहा। रचना न संस्कृत शब्दों से बोझिल, न अलंकरणों से लदी और न अटपटे प्रयोगों से कृत्रिम। कवि की अधिकांश क्या प्रायः सभी फागों की भाषा का यही रूप है। जहाँ भाषा की यह सहजता न मिले समझ लीजिए कि वे उक्तियाँ भरती की हैं और ईसुरी कृत नहीं। कवि के सहज सीधे व्यक्तित्व की छाप उनकी भाषा की खास पहचान है। तभी तो कवि ने अपनी भाषा के विषय में यह गर्वोक्ति की है—

बड़ी मोहनी भाखा।
बाकें बोल लगत औरन खों गोली कैसे ठांका।

कुछ उदाहरण इस नियम के प्रतिकूल भी मिलेंगे पर ऐसी भाषा के नमूने कम और अपवाद मात्र समझे जायँ :—

१. लागै नख सिख सें तन नोको।......
केहरि, कदली, श्रीफल, दाड़िम, गति मराल गज फीको।
२. दोउ नैनन की तरवारें।.......
अलेमान, गुजरात, सिरोही, सुलेमान झकमारे।
३. ऐसी बेइन्साफी आँसा।......
कायम करी रूप रयासत में, अदा अदालत खासी।
४. राधे सजें सखिन की पल्टन!......
राइट लेफ्ट मिचन नैनन की, खोलन खोल फिरंटन।

प्रायः पचास वर्ष तक ईसुरी फागकार के रूप में जनता के कण्ठहार बने रहे। वे कलावन्तों के सम्पर्क में रहे होंगे। नौगाँव छावनी में उन्होंने अंग्रेजी पल्टन भी देखी होगी, संस्कृत काव्य के पण्डितों का सत्संग किया होगा और अरबी, फारसी के जानकार आलिम फाजिल लोगों की भी सोहवत की होगी। यह शब्द प्रयोग इसी का प्रतिफल समझिए। फिर कवि के मन में अपनी बहुज्ञता प्रदर्शन और श्रोताओं को चौंकाने की आकांक्षा भी तो रहती है।

'कोस-कोस पै पानी बदले, तीन कोस पै बानी' के अनुसार ठेठ बुन्देली बोली के रूप में भी क्षेत्रगत प्रभाव से भिन्नता दिखायी देती है। खों/खाँ/खइयाँ इसका अच्छा उदाहरण है। कवि की फागों में ये तीनों रूप मिलते हैं।

१. लिखी कृष्ण खों पाती।
२. अकती खेलन खइयाँ।
३. रंगरेजिन खाँ ल्यावें।
४. मोरी सब खाँ राधा वर की।
५. मोरी राम-राम सब खइयाँ।
६. हम खों पार देव भौं मइयाँ।
७ तान दुपट्टा खइयाँ।

ये कर्म और सम्प्रदान कारकों के रूप में प्रयुक्त होते हैं और झाँसी तथा सागर डिवीजनों के गाँवों में प्रचलित हैं। ईसुरी इस पूरे क्षेत्र में फागें कहते थे। उनके बाद अन्य गायकों ने अपने-अपने क्षेत्र के अनुसार इनको बदला है। पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी में इनके ब्रज और अवधी के रूप क्रमशः कों और कँह/काँ हैं। इसी तरह क्रिया पदों में भी भिन्नता है। उदाहरण देखें—

कै दो **आबो** कै ना **आबो**।
कड़बू करे नजर वरका कें।
चलबू करे धरम को मारग।
केबू करे लगन ना पैहै।

सम्भाव्य भविष्यत् में इनके और भी विकल्प हैं जैसे—आवें, आयँ। खड़ी बोली में ये सभी आकारान्त में होते हैं, जैसे आया, निकला, चला, कहा आदि। इसी तरह अन्य भेद भी हैं। ईसुरी इन भिन्न भेदों को अपनाते हुए चलते हैं। किन्तु जब लोग उनकी फागों से निम्नलिखित रूप प्रस्तुत करते हैं, तो उन्हें कैसे स्वीकार किया जा सकता है—

हाँसा परे आगले **मेरे** रजउ नैन **दुई** तोरे।

इस पंक्ति के रेखांकित शब्दों के बुन्देला रूप हँसा, मोरे और दोई होना चाहिए। 'दुई' का प्रयोग पूर्वी हिन्दी में होता है, बुन्देली में नहीं। 'मेरे' खड़ी

बोली का रूप है और फिर तुक भी तो नहीं मिल रही। ईसुरी की फागों को इस लापरवाही से लिपिबद्ध करना उचित नहीं। बुन्देली के इन दो शब्दों की रचना पर ध्यान दीजिए—

दोरें = द्वार पर, दौरे = दौड़े

अनुस्वार और एक मात्रा के भेद से ही दोनों शब्दों के अर्थ भिन्न हुए। भाषा में अनुस्वार निक्षेप से ही अर्थ भेद हो जाता है। अतः ईसुरी की फागों के पाठ-निर्धारण में ठेठ बुन्देली का समुचित ज्ञान, भाषा तत्वों की ठीक-ठीक जानकारी, काव्य-विवेक और परिश्रम नितान्त आवश्यक हैं।

फाग का कलेवर

मुक्तक काव्य का कलेवर जितना छोटा होता है, उसकी प्रभावोत्पादकता उतनी ही अधिक होती है। इसीलिए दो-दो पंक्तियों के आर्या-अनुष्टुप छंद प्राकृत और संस्कृत में, दोहे हिन्दी में और शेर उर्दू में लोकप्रिय हुए। ईसुरी सफल मुक्तककार के नाते अपनी बात संक्षेप में कहना चाहते थे। नपे-तुले सीमित शब्दों में गहन भाव भर देना ही काव्य-कौशल है।

गीतों के त्यौहार होली के अवसर पर बुन्देलखण्ड में फाग गायकी की पुरानी लोक-परम्परा है, जिसमें अनेक छंदों का प्रचलन है किन्तु ईसुरी ने चार पंक्ति की चौकड़िया फाग को छंद के रूप में प्रवर्तित कर लोकप्रिय बनाया। यह उर्दू की रुबाई की तरह प्रभावकारी छंद माध्यम है, जो श्रृंगारी रचना के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। मेरे सामने आयी ईसुरी की साढ़े पाँच सौ फागों में से अधिकांश चार पंक्तियों की, कई पाँच पंक्तियों की और थोड़ी सी छह पंक्तियों की थीं। दो चार फागें ही इससे अधिक पंक्तियों वाली थीं। इस प्रकार कवि ने प्रायः चार पंक्ति की फागों में ही अपने भाव निबद्ध किये और एक तरह से वही उसका आदर्श रहा।

छंदों की प्रकृति पर ध्यान दिया जाय तो उन्हें दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—एक परिवृत (क्लोज्ड) तथा दूसरी विवृत (ओपेन)। पहली श्रेणी में हम दोहा, रुबाई की तरह चौकड़िया फाग को रखेंगे जिसकी पंक्तियाँ सीमित होती हैं, किन्तु विवृत श्रेणी में प्रबन्ध काव्य के छंदों को रखना उचित होगा जैसे आल्हखण्ड का वीर छंद, मसनवियों के चौपाई दोहे या बारहमासी, लावनी आदि लम्बे गीतों के छंद। इन विवृत छंदों में कवि लम्बे विवरण जोड़ सकते हैं और गायक लोकगीतों में लड़ियों पर लड़ियाँ मिलाते जाते हैं। चौकड़िया फागों में यह नहीं होता। अतएव ईसुरी की छाप से लम्बे आकार

की सभी फागों को, कवि की रचनाएँ बताने वालों को, यह प्रमाणित करना होगा कि वे वस्तुतः उन्हीं की रचनाएँ हैं और उनमें कोई प्रक्षिप्त अंश नहीं हैं, तभी साहित्य-जगत् में उन्हें मान मिलेगा अन्यथा नहीं।

फाग छन्द में तुकों का सहज निर्वाह ईसुरी की खास पहचान है। अच्छे कवियों की शब्दशक्ति की परख सहज तुक निर्वाह में भी होती है। भाव के अनुरूप ईसुरी कैसी कोमल कान्त तुकें चुनकर रखते हैं, इसका एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा—

भौतक छोटी-सी ननदुलिया, लागीं देन बिदुलिया।
ऐसी निगन निगत लरकन में, डारें हात हतुलिया।
छूटी नई लरम मुइयाँ सें, जा तोतरी बतुलिया।
ईसुर फिरत पान सो खाएँ, मिस्सी लगी दँतुलिया।

इस फाग में ननदुलिया, बिदुलिया, हतुलिया, बतुलिया और दँतुलिया सभी तुकें एक दूसरी से भिन्न, ललित और बालजीवन की विशेषताएँ व्यक्त करती हैं। इन तुकों में सहजता है। न कहीं बनावटी शब्दों की जोड़-तोड़, न पुनरुक्ति। ईसुरी की फागों में तुकों का यही सहज निर्वाह सर्वत्र दिखायी देता है। जहाँ इससे भिन्न अन्त्यानुप्रास दिखे, समझना चाहिए वहीं पाठ में कुछ गड़बड़ है।

—४२, खेड़ापति नगर, ग्वालियर, म० प्र०

चौकड़िया फाग में छन्द-योजना

● डॉ० श्याम सुन्दर बादल

फाग-गीत प्रायः वसन्तोत्सव के गीत हैं, पर ईसुरी ने उन्हें व्यापक स्वरूप प्रदान किया है। ये गीत प्रकृति की देन हैं। जिस स्रष्टा ने मानव जाति की सृष्टि की है, उसी ने उसके जीवन में सरसता लाने के लिए, उसी की मानस-गंगोत्री के मुख द्वार से गीतों की गंगा बहाई है। अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ प्रकृति के कवि कहे जाते हैं। उनका कथन है कि कविता अपने आप उमड़ने वाली जोरदार भावों की उमंग है (Poetry is the spontaneous overflow of powerful fealings) आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने जब देखा कि किसी व्याध ने क्रौंच पक्षी के जोड़े में से नर पक्षी को मार दिया और उसकी मादा क्रन्दन करने लगी, तभी उनके मुख से निकल पड़ा कि—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

यही उद्गार काव्य का प्रथम रूप है, बाद में इसे 'अनुष्टुप' छंद का नाम दिया गया और उसके लक्षण बनाये गये। इसी प्रकार चौकड़िया फाग-गीतों का उद्भव ईसुरी के हृदय से हुआ, तदन्तर उनमें छन्द की शोध की गयी, जो निम्न रूप में है।

चौकड़िया फागें सार छन्द के आधार पर रची गयी हैं। चौपाई की एक अर्द्धाली (सोलह मात्रा का एक चरण) तथा दोहे के सम चरण का समन्वय करके अन्तिम ह्रस्व को दीर्घ कर देने के अट्ठाइस मात्रा का 'सार' नाम का छन्द बनता है। इसे 'नरेन्द्र' और 'ललित पद' भी कहते हैं। भक्तिकाल के 'सूर', 'मीरां', 'तुलसी' आदि की पद रचनाओं में प्रयुक्त होने के कारण ही कदाचित इसका नाम 'ललित पद' हो गया है। इस छन्द का लक्षण 'छन्द-प्रभाकर' में इस प्रकार दिया गया है —

"सोलह-रवि-कल अन्तै कर्णा,
सार-छन्द अति नीको।"

अर्थात् सोलह और बारह मात्राओं पर विराम देकर अन्तिम ह्रस्व को दीर्घ कर देने से २८ मात्राओं का 'सार' छन्द होता है। अन्तैकर्णा का अर्थ है कि अन्त में दो दीर्घ भी रखना चाहिए, पर यह आवश्यक नहीं है। यथा—

"सादर सुनिये सादर गुनिये,
मधुर कथा रघुवर की।"

अन्त में दो गुरु रखने का नियम है, जो मधुरता की दृष्टि से बतलाया गया जान पड़ता है। कवि चाहे तो दीर्घ रख सकता है। यथा—

"राधा राधा राधा राधा,
राधा राधा राधा।"

यद्यपि उपर्युक्त पंक्ति में सभी दीर्घ हैं, पर विराम १६-१२ मात्राओं पर ही है।

चौकड़िया फाग के जन्मदाता 'ईसुरी' ही माने जाते हैं। इनकी ये फागें भी उक्त छन्द में ही बंधी हुई है। उन्हें भक्तिकालीन-कवियों के पदों से ही इस चौकड़िया छन्द की रचना की प्रेरणा मिली होगी। उदाहरणार्थ कुछ पदों की प्रारम्भिक पंक्तियां यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं —

"अजहूँ मौंग लेव दधि देहौं,
मोल कछू ना लैहौं।" (सूरदास)

"जाके प्रिय न राम वैदेही, पाप पन्थ को नेहो।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥"

उपर्युक्त पदों की टेकवाली प्रथम पंक्ति में रेखांकित चरण लेखक ने अपनी ओर से जोड़े हैं। यह १२ मात्राओं वाला चरण जोड़ देने से पूरे पद चौकड़िया-फाग के स्वरूप बन जाते हैं। अन्तर केवल इतना ही रहता है कि चौकड़िया-फाग में चार ही कड़ियाँ होती हैं, जबकि सूर, तुलसी आदि के पदों में अधिक। पदों में भी निश्चित कड़ियाँ नहीं होतीं। सूरदास जी के पद प्रायः ६-७ कड़ियों के ही होते हैं, जबकि तुलसीदास जी की 'विनय-पत्रिका' के पद १०-१५ कड़ियों तक के होते हैं। उपर्युक्त पदों की टेक में जो रेखांकित १२ मात्राओं की कड़ियाँ लेखक ने अपनी ओर से जोड़ी हैं, उनमें अनुप्रास-योजना (तुकबन्दी)-सी दी गयी है। सूरदास जी के पद की टेक में 'देहौं' के साथ 'लैहौं' में एवम् तुलसी के पद में 'वैदेही' के साथ 'नेहो' में अनुप्रास योजना चौकड़िया-फाग की टेक बनाने के लिए की गयी है। टेक की प्रथम कड़ी में ऐसी अनुप्रास-योजनाएँ पदों में भी मिलती है। अतः यह अनुप्रास-योजनाएँ भी पदों का ही अनुकरण है। यथा—

"आई गमनवां की बारी, उमरि अबहूँ मोरि बारी।
साज समाज पिया लै आये, और कहरवा चारी॥" (कबीर)

"थाने बरज-बरज मैं हारी, भाभी मानों बात हमारी।
राणे रोस कियो था ऊपर, साधे में मति जारो॥
साधो की संगत दुख भारो, मानों बात हमारी।
छाप तिलक गलमाल उतारो, पहिरो हार हजारी॥"(मीराँ बाई)

"का के द्वार जाय सिर नाऊँ, परद्रथ वहाँ बिकाऊँ।
ऐसो को राजा है समरथ, जाके दिये अघाऊँ ।।१।।" (सूरदास)
"देहु कलाली एक पियाला, ऐसा अवधू है मतवाला।" (रैदास)
"गुरु बिन होरी कौन खिलावै, कोई पंथ लगावै।" (कायम)

उपर्युक्त कुछ पदों की टेकों से चौकड़िया फाग की टेक का मात्राओं की गणना एवं विराम-स्थलों से मेल नहीं खाता पर 'सूर' और 'कायम' की टेकों से इसका पूर्ण साम्य है। हाँ, आगे की पंक्तियों में मात्राओं का साम्य नहीं है। 'ईसुरी' बहुत ही कम पढ़े थे, पर उनकी सभी चौकड़ियाँ छन्द-शास्त्र की दृष्टि से शुद्ध हैं। न तो उनमें मात्राओं का वैषम्य है और न गति-भंगादि दोष। इनकी फागों को जो चौकड़िया का विशेषण दिया गया है, वह बहुलता की दृष्टि से है, पर कुछ फागें अधिक कड़ियों की भी हैं। "तन-तन दोउ जने गम खावैं, करो फैसला चावैं" टेक वाली फाग तो आठ-दस कड़ी की है। फाग की लय और गायन की शैली पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि फाग की टेक में ४, १२, २४ और २८ मात्राओं पर विराम देना आवश्यक है।

"बखरी रैयत हैं भारे की, बखरी रैयत हैं भारे की लाल।
सो दई पिया प्यारे की। बखरी ०।।
कच्ची भीत उठी माटी की, छई फूस चारे की। बखरी ०।।
बेबन्देज बड़ी बेबाड़ाँ, जेई में दस द्वारे की। बखरी ०।।
किबार किबरियाँ एकौ नइयाँ, बिना कुचो तारे की। बखरी ०।।
'ईसुर' चाय निकारो जिदना, हमैं कौन वारे की। बखरी ०।।
बखरी रैयत है भारे की लाल ।।

ईसुरी की यह चौकड़िया एक आध्यात्मिक रचना है, जिसमें मानव शरीर को बखरी (निवास-गृह) का रूपक दिया गया है। यहाँ फाग के अन्य गुणों पर प्रकाश डालना अप्रासंगिक हो जायगा। हाँ, उपर्युक्त फाग में हम देखते हैं कि चौकड़िया फाग की सभी कड़ियाँ २८ मात्राओं की होती हैं, एवं १६, १२ पर सभी में विराम होता है, केवल टेकवाली प्रथम कड़ी के विरामों में अनुप्रास-योजना की विशेषता रहती है।

उपर्युक्त 'सार', 'नरेन्द्र' या 'ललितपद' छन्द से ईसुरी द्वारा परिवर्तित चौकड़िया फाग में कई विशेषताएँ होने के कारण इसे किसी अन्य के नाम से अभिहित किया जाये, इस बात की आवश्यकता प्रतीत होती है। लेखक के विचार से इसे 'ईसुरी' नाम देकर आचार्य 'ईसुरी' को अमर बनाया जा सकता है, जो अपनी कवि-प्रतिभा एवं मौलिक रचनाओं के कारण स्वयं ही अमर हो गया है।

—राठ (हमीरपुर), उ० प्र०

फागों की फड़बाजी और ईसुरी

● डॉ० गनेशी लाल बुधौलिया

बुन्देलखण्डी फड़ साहित्य की एक प्रमुख विधा है फाग-काव्य। फागें एक प्रकार के लोकगीत हैं। बुन्देलों का फाग-काव्य बड़ा सम्पन्न है। फागें फागुन के महीने के लोकगीत हैं। ये लोकगीत होली के अवसर पर झाँझ, मंजीरा, ढोलक, नगाड़िया और रमतूला आदि लोकवाद्यों की संगति में सामूहिक रूप से गाये जाते हैं। फागुन लगते ही बुन्देलखण्ड के गाँवों और जनपदों में फागों के फड़ जमते हैं। फाग साहित्य की लोकप्रियता एवं उसके विकास में फड़बाजी का भी प्रमुख भूमिका है। काव्य-क्षेत्र में इस फड़बाजी का प्रचलन एक विषय की रचनाओं तथा समस्या-पूर्ति के साथ हुआ।

बुन्देलखण्ड में ईसुरी के पहले फागों के कई रूप प्रचलित थे, जैसे-छन्दयाऊ या लावनी की फागें, सखयाऊ या साखी की फागें, डिड़खुरयाऊ या डेढ़ पदी की फागें, ढप की फागें, झूला या झूमर की फागें, अघर सदर की फागें, फाग सिंहावलोकन आदि। फाग-काव्य की इन विधाओं में से फाग-काव्य के फड़ों में विशेष रूप से चौकड़िया, छन्दयाऊ, डिड़खुरयाऊ और खड़ी फाग आदि फागों का प्रयोग होता है। चौकड़िया फाग के जन्मदाता ईसुरी थे। इनकी ये चौकड़िया फागें सार या नरेन्द्र छन्द में बँधी हुई हैं, पर उनमें अपनी अलग विशेषता है।

छन्दयाऊ या लावनी की फागों में चौकड़िया फागों की ही टेक रखी जाती है, बाद में दोहा और लावनी आदि छन्दों को जोड़ कर बीच-बीच में टेक के रूप में चौकड़िया के ही चरण रखे जाते हैं। कोई-कोई छन्दयाऊ फागें काफी लम्बी-लम्बी होती हैं। फागों के फड़ जब जमते हैं तो कभी-कभी छन्दयाऊ फाग एक रात ले जाती है। फाग-काव्य की छन्दयाऊ फागों के फड़बाज भुजबल सिंह ठाकुर थे। चौकड़िया फाग में ईसुरी को कला को ख्याति प्राप्त हुई, वही ख्याति छन्दयाऊ (छन्दनदार) फागों में ठाकुर साहब को प्राप्त हुई। ईसुरी की तरह उनका लोक-जीवन का अनुभव गहन और विस्तृत था। इनकी पुस्तक 'फाग रसायन' में लोक-जीवन की झाँकियों के कई मनोरम स्थल हैं। वे अच्छे फड़बाज फागकार थे।

खड़ी फाग तीस मात्रा की होती है, इन फागों की कड़ियों के अन्त में दीर्घ होना आवश्यक है। चौकड़िया फाग के चरण में पराद्ध में दो मात्राएँ बढ़ा देने से खड़ी फाग बन जाती है। जब ईसुरी की चौकड़िया फागों का आनन्ददायक माधुर्य बुन्देलखण्ड के जन-जीवन में प्रवेश करने लगा, कदाचित् तभी से व्यास जी का ध्यान फागों की ओर गया। चौकड़िया के अन्तर्गत खड़ी फाग के प्रवर्तक व्यास जी थे। व्यास जी नायिका-भेद के मर्मज्ञ थे और साथ ही, कुशल चित्रकार भी। ईसुरी की भाँति उन पर रीतकालीन परम्परा की स्पष्ट छाप थी।

फड़ साहित्य के अन्तर्गत फागों का अपना निजी महत्त्व है। फाग-काव्य में बुन्देलखण्ड में बहुत-से फगुवारे हुए है, पर उनमें तीन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है—ईसुरी, गंगाधर व्यास और ख्यालीराम। बुन्देलखण्ड के लिए यह गौरव की बात है कि उसने एक ही समय में इन तीन यशस्वी लोक-कवियों को पैदा किया। फाग-काव्य के तीनों आचार्य कोटि के लोक-कवि थे। भाव-सम्पदा औद काव्य-शिल्प दोनों ही दृष्टि से इन लोक-कवियों का लोक-काव्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रृंगार के अतिरिक्त इन्होंने भक्ति और ज्ञान पर भी लेखनी चलायी है। इनकी रचनाओं पर भी रीतिकालीन प्रवृत्तियों की स्पष्ट छाप है। लोक-जीवन के विभिन्न व्यापारों और दर्शन का चित्रण इन लोक-कवियो के फाग-गीतों में पाया जाता है। बुन्देली भाषा के अस्तित्व और उसके व्यक्तित्व के विकास में इन लोक-कवियों का विशिष्ट स्थान है। ईसुरी की फागें ठेठ बुन्देली में हैं। उनमें भावों का सहज माधुर्य और विविधता, भाषा भावों के अनुकूल और मिठास से भरी हुई, अलंकारों से जगमगाती और साहित्यिक गरिमा से पूर्ण है।

मऊरानीपुर, छतरपुर, चरखारी, महोबा, झाँसी, गुरुसराँय, बिजावर आदि स्थान फड़ साहित्य के केन्द्र थे। फाग-गीतों के फड़ों का प्रचलन बुन्देली ग्राम्य जीवन में अधिकतर स्थानों में था। इन फड़ों की वह रंजनी परम्परा अब धीरे-धीरे धूमिल होती जा रही है। इन फड़ों के आचार्य दिवंगत हो चुके हैं, पर इन आचार्यों का वह लोक साहित्य, वे लोकगीत बुन्देली कण्ठों में विराजमान हैं। बुन्देलखण्ड में फागों की फड़बाजी (प्रतिस्पर्द्धा) के लिए ईसुरी और गंगाधर व्यास तथा उनके समकालीन कवियों ने एक आधार प्रस्तुत किया।

ईसुरी की फागों में मानव की मानसिक उलझनों को सुलझा कर उसमें प्रेम और शान्ति प्रदान करने की अद्भुत क्षमता है। उसमे सरसता है, मादकता है, रागात्मकता है और है सरलता। यही कारण है कि बुन्देली लोक-

जीवन में उसका इतना व्यापक प्रचार और प्रसार है। उनकी फागों में बुन्देली लोक-जीवन और संस्कृति के सुन्दर चित्र हैं। जिस समय लोक वाद्ययन्त्रों के साथ फागों की रसीली रागिनी मुखरित होती है, तो लोग आनन्द के साथ झूमने लगते हैं।

फड़ साहित्य की अनेक मधुसिञ्चित फागों ने अनेक हृदयों को अभितृप्ति प्रदान की है, करती है और करती रहेगी। मानव प्रकृति की अनजानी गहराइयों तक पैठ कर फाग साहित्य के इन कलाकारों ने अनुभूति और कल्पना की समृद्धि खोजी और प्राप्त की। सौन्दर्य के उपासक और उसकी प्रेरणा से समर्थ इन कवियों ने काव्य-गाथाएँ प्रस्तुत कीं, जिसकी पृष्ठ भूमि रंगों की भूमिका में सर्वत्र श्रृद्ध है। शब्दों की शालीनता एवं सम्मोहन, सबलता और ध्वनियों के उपयोग में गेय कविताएँ तो जैसे शब्दों के सुन्दरतम नमूने गढ़ती चली जाती हैं। उनकी पंक्तियों की तरलता अनूठी ताजगी लिये रस की हिलोर बनकर हृदय को आप्लावित करने लगती है।

होली के आगमन पर बुन्देलखण्ड के गाँवों, कस्बों और जनपदों में फाग गीतों के फड़ जमते हैं। जब दो दलों में फड़बाजी होती है, तो उसमें प्रश्नोत्तर की फागें, विषयवार फागें, टहूका की फागें और नायिका-भेद की फागों के अतिरिक्त ज्ञान, भक्ति और ज्योतिष की फागों के फड़ जमते हैं। फड़ की कुछ फागों के नमूने यहाँ प्रस्तुत हैं। नायिका के रूप-सौन्दर्य की फाग देखें—

गोला मौ पै पटियाँ पारें, सुन्दर माँग समारें।
मानो स्वच्छ चन्द्र के ऊपर कागा पंख पसारें।
दोऊ तरफ बहै सुन्दर सीं गंगा जमुना धारें।
तिरबेनी बेनी खों देखत रातीं सिमट किनारें।
ईसुर कात दरस के होतन कलमल सिखर निकारें।।

ईसुरी के समकालीन फागकार मनभावन की फड़ की इसी रंगत की फाग देखें—

पटियाँ मन हरबे को पारें, रच-रच माँग समारें।
चुटिया चुस्त बँधी चुटला सों गुरियाँ कुच पै डारें।
ऊपर माँग भरी मोतिन की सीस फूल कों धारें।
'मनभावन' मन हरबे कारन हर-हर बेर उघारें।।

इन दोनों फागों में फागकार की दृष्टि बड़ी पैनी है। केश प्रसाधन का

यह भारतीय नारी का लोक सांस्कृतिक रूप दर्शनीय है। चन्द्रमुखी नायिका के काले केशों के बीच माँग का सौन्दर्य उत्प्रेक्षा में चित्रित है।

फड़ के तीन आचार्यों की नायिकाओं के हाव-भाव देखें—

जे नई आईं पाउनी कांसें, कड़ीं तुमारे नासें।
देखत गईं उँगरियन में सें, कर घूँघट में सांसें।
समझी जात नाईं ना करहैं, धर इनखाँ जो गांसें।
कहत 'ईसुरी' अबै रहन दो सुर कांसे को कांसें॥

ईसुरी की इस फाग में एक नयी मेहमान (नवोढ़ा नायिका) का कमनीय चित्रण है। अब खजुराहे के मेले की एक बुन्देली युवती का साज-शृंगार फड़ साहित्य के दूसरे आचार्य गंगाधर व्यास की फाग में देखें—

बिसरै न चलन कंधेला की, दयें झोंक जुबन अलबेला की।
गोटादार हरीरी अंगिया बेल कड़ी चाबेला की।
आड़ी डरी भुजन के ऊपर कोर बदाऊ सेला की।
उड़-उड़ परत थमत ना थामो पवन चले झकझोरा की।
'गंगाधर' कयें राह चली गई खजराहे के मेला की।

नायिका के सुपुष्ट उरोजों पर से आँचल तेज हवा के झोंकों से बार-बार हट जाता है। नायिका के रूप-सौन्दर्य का यह रोमांस भरा चित्रण कैसा सुन्दर है।

फड़ों में प्रश्नोत्तर की फागों का विशेष महत्त्व था। दलों के आचार्य जो एक प्रकार से आशुकवि होते थे, प्रश्न का उत्तर प्रश्न पूरा होते-होते बना देते थे। यदि प्रश्न का उत्तर न बन पड़ा, तो दल हार जाता था। अटकाऊ (प्रश्नोत्तर) फागों के फड़ मजेदार होते हैं। कुछ फागें देखें—

भौंरा काये न चम्पै चाहै, ई को कारन का है।
संसारी में सब कोउ जानै सुघर फूल चम्पा है।
कै कछु जहर भरो चम्पा में, कै कछु रार बढ़ा है।
तजत पराग काये से मधुकर मानै कौन वृथा है।
दसानन्द के गुरु गंगाधर साँची भेद बता है॥

एक अटकाऊ फाग और देखें, इस फाग में एक पहेली है। उसके सुलझाने के लिए एक वर्ष का समय दिया गया है—

मोरो जो अटका पहिचानो, होय तुमारो जानो।
देव की चुल में नाहर घुस गओ राँबै ठाँड़ो दानो।

बंदरा रओ पकर पटवारी मोरा रोये थानो।
हिरना तो पेड़ पै चढ़ गओ बिपना पैरें गानो।
'गंगाधर' मुहलत दई तुम खाँ बरस रोज लों छानो॥

भरतू कवि की एक फड़ की फाग देखें—

मुदरी कौन दिना कपि डारी, उत्तर कहो बिचारी।
कितनी बेरा कौन लगन सें, सीता कर में धारी।
कौन नखत कौन तिथि अन्तर गए रावन दरबारी।
'द्विज भरतू' कयें भेद फाग को बता बोल के हारी॥

इसमें एक प्रश्न है, उत्तर की अपेक्षा है। अटकाऊ फागों का साहित्यिक महत्त्व उतना नहीं होता था, वे केवल दिमागी कसरत की कलाकारी होती थी। प्रतिपक्ष को एक ऐसी जगह अटका देना, जहाँ वह उत्तर न दे पाये और दल पराजित हो जाये।

फाग-काव्य के फड़ में नायिका-भेद का विशिष्ट स्थान है, इस विषय पर फाग साहित्य बड़ा समृद्ध है। शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का बड़ा सरस और हृदयग्राही चित्रण हुआ है। बोधन कवि की इसी रंगत की एक फाग देखें—

करकें चन्द्रमुखी सिंगारन, गई व्रजराज निहारन।
चलत कुंज-वन, पुंज सुगंधन ज्यों ऋतुराज बहारन।
सारी सेत, हीर हारन, गज-मुक्ता झरत हजारन।
'बोधन' बता नायिका कौनी, करो नाम उच्चारन॥

फाग गीत होली गीत हैं, इनमें शृङ्गार के अन्तर्गत कभी-कभी उत्तान शृङ्गार का चित्रण इस सीमा पर हो जाता था, जो अश्लीलता की सीमा पर पहुँच जाता है। रीतिकालीन प्रभाव के कारण और ऋतु परिवेश की मादकता के कारण इस प्रकार की रचनाओं का उन दिनों बड़ा प्रचलन था। जन-मानस भी ऐसी रचनाओं में बड़ा रस लेता था।

हमारे जन-जीवन में प्रस्फुटित करने वाली प्रकृति देवी के अंग-प्रत्यंगों ने हमारे फड़-साहित्य के कवियों को मुग्धता प्रदान की है। ऋतुओं, पर्वतों, नदियों, वन-वाटिकाओं एवं पेड़-पौधों आदि के वर्णनों में भी इन्होंने अपनी लोक-प्रतिभा के चमत्कार दिखलाये हैं। लोकगीतों की कुछ प्रसिद्ध टेकें देखें—

१—अब रितु आई बसन्त बहारन, लगे फूल फल डारन।

२—दिन ललित बसन्ती आन लगे, हरे पत्र पियरान लगे।
३—ऋतुराज वसन्त अवाई करें, विरहा तन तेज तवाई करें।
आमन के मौरन के ऊपर कोयल कीर गवाई करें।
सीतल मन्द सुगंध समीरउ चारउँ ओर हवाई करें।
नन्द नन्दन बिन कयें 'गंगाधर' कामिनि कौन दवाई करें।

इसी सन्दर्भ मे फाग फड़बाज खूबचन्द की इसी रंगत की एक फड़ की फाग देखें—

दोहा—आवत सखी वसन्त के, कारन कौन विशेष।
हरष जिया को पिय बिना, कोइल कूकत देख।।
आली देख वसन्त अवाई, मधुकर गुंज सुनाई।
दरकी कंचुकि तन अति पुलवयो, लख किसुक अरुनाई।
रुच सों श्रवन सुनत पिक बानी, आनन्द उर न समाई।
मंजु रसाल बाल अवलोकत, हरषत करत वधाई।
'खूबचन्द' किहि कारन पिय बिन लख वसन्त सुख पाई।

फाग साहित्य बुन्देली साहित्य का एक ऋद्ध अङ्ग है। इसकी जड़ें बुन्देली लोक-जीवन में बहुत दूर तक फैली हुई हैं। सामान्य जनता फागों के फड़ों में विशेष रुचि लेती है। फागों में प्रेम कल्पना सजग है, श्लील और अश्लील की मर्यादा के परे। मधुर और प्रासादिक भाषा में मानव के मन को गुदगुदाने और रोमांस उत्पन्न करने की शक्ति इन लोकगीतों में है। खेद है कि यह रंजनी परम्परा धीरे-धीरे अपने स्वरूप को खोती जा रही है।

—राठ, जिला हमीरपुर, उ० प्र०

फगवारे ईसुरी

● श्री दंगल सिंह

नौने कवि ईसुरी के बारे में बड़े-बड़े विद्वानन ने खूब लिखो है। अकेलें लगत है के भौत कसर है। हाँ मोरे कक्का जू साहब कुंवर दुर्गासिंह जू देव ने राजमहल छतरपुर में रहत-रहत बुन्देलखण्ड के फगवारे कबियन की फागन खाँ संवत् १९७५ सें संकलन करवो सुरू करोतो। जो बखत औसतन ऐसो हतो, जब ईसुरी जू के स्वर्गवास खाँ नौ या दस बरस भये हते। मोखाँ थोरो-थोरो याद है, जब कक्का जू साहब एक-एक फाग की सई-सई जानकारी के लानें एक-एक महीना लगा देत ते। ई तराँ सें उननें बुन्देलखण्ड के ४९ फगवारे कवियन की फागें संकलित करी। इनमें पैलो नम्बर है ईसुरी को फिर गंगाधर व्यास जू, मनभावन, दुर्गागिर आद हैं। ई फागन की किताब को नाँव "फाग सुन्दरो" है। ५६ रंगन (विषयन) की कुल १३०१ फागें इकट्ठी करीं हैं। रजउ की फागें ११० हैं, जिनमें रजउ शब्द आओ है। पुस्तक में ईसुरी की कही फागें ६४० हैं।

ईसुरी नें अपनी फागन में कहूँ बनावटी बातें नइँ कहीं। गमईं गाँव में गरीब और मझोले घरन में जौन बातें उठत-बैठत, चलत-फिरत, मेला-ठेला, रीति-रिवाज आद मामूली तराँ से होतीं हैं, उनें रोज की बोली में ठडूली सब्दन के संगै पिरो कें बनाइँ और कहीं, जिनें सुनकें लुगवा फड़क जात और लुगाइँ मौं में उन्ना दैकें गुड़या जातीं। बुन्देलखण्डी ज्वान तो चुलवुले, उठल्ले, मसखरे, चुहलबाज निचाट कैबइया ईसुरी खाँ भौतई चाउत हैं। उमर ढरे बारे तो ईसुरी खाँ कबीरदास जी सें कम नइँ मानत हैं। उनको मतलब सोई आतमा-परमातमा पै लगाउत हैं। ऐसे जनें बे होत हैं जौन गूढ़ अर्थ उर साहित्य में घुसे रात हैं।

ईसुरी ने रजउ सब्द अपनी फागन में जाँ-जाँ कओ है, ऊको मतलब रजऊ सें नइयाँ। बुन्देलखण्ड में रजौ हर एक बिटिया सें कओ जात। रजुआ, रजउआ, रजौ ये सब एक ही माने राखत हैं।। कुल फगवारन (फाग के कवियन) ने रजौ पै फागें लिखी हैं। चासनी देखी जावै—

* छैला करें विटमना ठाड़े, चलें छुरी और खांड़े ।
गगाधर ससुरे खाँ जा रई, बजवा रजो नगाड़े ।।

* करलो रजो होय जो जी में, कसर न राखो ईमें ।
अवध पाँव,जो बनें पसारत, ई नदिया बहती में ।।

* केवल है आधार हमारो, दरसन रजो तुमारो ।
अनुचर तनक रसीली लागत, हिरदो होत हिमारो ।।

ऊपर की बानगी सें साफ होत है के रजो एकन हतो । ईसुरी खाँ तो जोन जब जैसी जची, ऊपै ऊसई फाग के डारी । कुल जगाँ तो गारीं खाई और कौन ठिकानो पिटे होबें । अकेलें ज्यादा जगाँ तो उनके लानें लुगांई-बिटियाँ मरती हतीं ।

श्री रनधीरसिंह जू बिजावर वालन नें बताओ तो के एक वेर एक ठाकुर साब अपनी बेटी खाँ कइयाँ लैंय सपर कें आरये ते । गैल में ईसुरो मिल गये । ठाकुर नें ईसुरी सें कई "ईसुरी इतै आ" । ईसुरी नैगर गये और ठाकुर खाँ जुहार करकैं बोले—"मर्जी होय" । ठाकुर नें कई—"ईसुरी तैंने सब की फागें बनाई हमाई नई बनाई । कछू बना दे ।" ईसुरी बोले—"अपुन की नाराजी को डर है नातर बना देतो ।" ठाकुर नें कई—"कछू न कैबी ।" ईपै ईसुरी नें फाग की पैली लैन ईतराँ सें कई—"बिन्नू बैठो गोदी मँइयाँ, अबै जुब्रन भये नइयाँ ।" जैसई ठाकुर ने सुनी, तो बोले—'अरे मुराटे' और मारबे दौरे । ईपै ईसुरी नें भगत-भगत फाग की दूसरी लैन कई और भग गये । पूरी फाग बनाई न पाई । फाग की दूसरी लैन हती—"इतने में घर भगे ईसुरी, घलतीं हतीं पनइयाँ ।"

ऊपर की घटना सें साफ हो जात के सब मनचले, मसखरे आदमियन के विचार ईसुरी की तराँ होत हैं, ऐई सें उनकी फागें नौनी लगतीं । हाँ, जा एक अलग बात होत है के आदमी मरजादा के मारें ऐसी बातें सबके सामूं नंई कात, अपने मिलनियाँ यार दोस्तन के सामनें कात है ।

अब ईसुरी की उन रजउअन खाँ देखबी, जिनकी अदन पै ईसुरी निसरी होत ते—

बेला किये कँदेला घालें, जुब्रन लवासें पालें ।
कामी पुरुष तुमारे लानै, गर्द मर्द भये हालें ।
जे वस करन रंक राजन के, तकें करेजे सालें ।
कसकत रहत रात-दिन प्यारी, कहो जहर विष खालें ।
ईसुर भोर द्वार हो कढ़तीं, चलतीं गज की चालें ।

कँदेला की घालन जब नौनी खिंची होत है, तो नैचें की दाढ़ी, अगल-बगल के गाल और माथे की कछू-कछू पटियाँ दब जात हैं । ईसें पूरे मौ पै खूब ऊब आ जात । नैचें लवा पले हांय, फिर चाल हाँती की होवै, तो रिषी-मुनी तक धीरज छोड़ देत ।

ईसुरी बेला पै [illegible]ने खुसी हते के सारदा के मेला गये तौ उतै तक ऊको पीछो न छोड़ो । फाग देखो जावै । बेला की ज्वानी की रेल-पेल और ईसुरी की घात लगावो देखो जावै—

तन सें ऐंचत काये कँदेला, हर-हर दारें बेला ।
कछू उड़े कछु आप उड़ावै, कछु जुबनन को ढेला ।
चलिये मुलाकात जो करिये, का है ठौर अकेला ।
वे पहचान अजानें हो गई, गैल घाट को हेला ।
'ईसुर' कौन गाँव सें आई, करन सारदा मेला ।।

जौ सब कोऊ जानत तो के ईसुरी अपनी लत में भौत मस्त हते । ई बेरा लटकन की गुराई खाँ देखो । नजर कछोटा पैगई, मालूम परत है, जरद किनारी के किनारें पिंडरियन सें लैकें आधी जांघ लौ पाँव की गुराई दिखा परत ती और पंचोटा की चोट लगत ती ।

ई पै भइया ऊयै सलाम देत हैं—

मन बस गई घलन कछोटा को, लटकन दई काँछल लपोटा की ।
जाँघन के ऊपर मिल बैठी, जरद किनारी गोटा की ।
ऐसी बनी नवल नट नागर जैसे बनन अंगोटा की ।
गोरो वदन झलक कढ़ आवै चोट लगै पंचोटा की ।
कहत 'ईसुरी' कही मान जा गैल न जा नंद ढोटा की ।

दूसरी फाग लटकन पै कही । इतै फगवारे को मन काँ तक चलो गओ । लटकन को लिलोरपन, छोटो वदन, मीठी बोली, गालन की गड़कुलियाँ, जोबन की जड़ताई देख कें बस के डारो के कइयाँ लै लेव इतै । ईसुरी नें थोड़ो लोक लाज को ख्याल करो है, नातर कइयाँ लैबे के लाने कै देते—

चूंमा देव नायँ कर मुइयाँ, तुमसे मन लाग रहो गुइयाँ ।
बोलत बोल रसीले मैना ज्यों पिंजरा पड़तीं टुइयाँ ।
गोरे गाल कपोलन ऊपर हँसतन में परती कुइयाँ ।
बारीं बैस अली अलबेली जड़ छाती कोमल बइयाँ ।
मन में लगै ईसुरी ऐसो लटकन खाँ लै लेव कइयाँ ।

एक फाग सुन्दर पै कई है, ईमें ऐसो दिखात कै ईसुरी ब्याव के बाबा के सामूं पर गये । सुन्दरिया बाबा बनी ती ईसुरी आदत स लाचार हते, सुसे हुगें कऊँ देखबे खां, अकेलैं फँस गये । बिल्लन की मार में सारदा माई खां सुमरो, सो बच गये । सुन्दर की नुनाई पै तो बे मरत हते, जबईं सब तारीफ कर डारी—

कण्ठन बैठो सारदा माई, साहब करें रिहाई ।
पूंछी जाय हलफ की रर सें जा सरकार सफाई ।
विधना करें बरो हो जावें लै लई जाय गवाई ।
बाबा की स्वाफा की बाँदन अबलों देत दिखाई ।
गुंजें गोप गरे में सोहें ऊब बिचोली लाई ।
कंचन कड़े बड़े पहरे ते गुरकत लरम कलाई ।
ई जांघा से गई 'ईसुरी' सुन्दर संग नुनाई ।

मैंने श्री श्रीनिवास शुक्ल की 'गंगाधर गरिमा' और डॉ० श्याम सुन्दर बादल की "बुन्देली फाग साहित्य" की फागन को मीलान अपने पिता जी की 'फाग सुन्दरी' सें करो तो । भौत फागन में अन्तर मिलो । कऊँ सब्द गड़बड़ हैं, तो कऊँ पूरो लैन छूट गई, कऊँ कबी को नाम बदल गओ है । एक-दो जगां तो मैंने देखो कै गंगाधर की छाप की जगां ईसुरी हैं और ईसुरी की जगाँ गंगाधर । मोरे पिता जी नें फाग संकलन आज सें ६०-७० बरस पैलाँ सुरू करो तो और फागें गावनवारन सें पूंछ-पूंछ कें लिखी तीं । अब जो काम भौत बड़ो है कै सही फाग खां छांटो जाबै ।

इवै श्री घनश्याम कश्यप की 'ईसुरी की फागें' की एक फाग सें मीलान देखो जावै —

यारी जौ काऊ सें होवै, नई नींद भर सोवै ।
उल्लू बनें उठाएँ मौं रए, उलझन में दिन खोवै ।
नजर मिलैं जियरा होए सीतल, बिछुड़ें हियरा रोवै ।
इन फन्दन के बीच 'ईसुरी' राम न काउ बिदोबै ॥५१५॥

फाग सुन्दरी में जौ फाग ई तरां लिखी है—

यारी जब काहू सें होवै, कबै नींद भर सोवै ।
उल्लू बनें उठायें मौ खाँ, उलझन में दिन खोवै ।
रहै नगीच खुसी जी जौ लौं, बीच परे सें रोवै ।
तन की नहीं मरम्मत राखै, धन की करें न लोवै ।
ई फन्दन के बीच ईसुरी, ईसुर नहीं बिदोवै । (६५९)

दोई फागें देखीं जावें, इनमें कितनो अन्तर है । जौ विषय एक झगड़ा को विषय बन जावे सें मैं जा बात अपनी बुन्देली समाज के ऊपर छोड़त हों ।

—महल रोड, छतरपुर (म० प्र०)

ईसुरी की काव्य-भाषा

• डॉ० वीरेन्द्र 'निर्झर'

ईसुरी की फागों की भाषा बुन्देली है । वे बोल-चाल की सहज भाषा के कवि थे । जीवन की सहजता की सहज अभिव्यक्ति, आत्मीयता की स्वाभाविक गन्ध उनकी भाषा की मौलिक विशेषता है । इसका श्रेय है उनकी सहजता को जो सोचने और बोलने की भाषा में एकतानता समोये हुए है । उनका सोचना भी बुन्देली का है और भाव-प्रकाशन का माध्यम भी कृत्रिमता से बहुत दूर बुन्देली का अपना । यही कारण है कि ईसुरी का एक-एक शब्द अपनी सहजता में लोक की आत्मा को बहुत गहरे तक प्रभावित कर सका है । पैजनियों की छनकार-सी हृदय की पोर-पोर को आन्दोलित करती उनकी भाषा की गति, प्रत्येक स्वर का अपना हृत्कम्पन, स्वतंत्र अंग-भंगी एवं निश्छल सौन्दर्य सभी रस माधुर्य के उज्ज्वल उच्छलन में अपना सहयोग देते हैं । कुल मिलाकर ईसुरी की भाषा का जो रूप संगठित हुआ है वह बुन्देली की साहित्यिकता का एक सहज ताना-बाना है ।

किसी भी भाषा की मुख्य कसौटी उसका शब्द-भण्डार, कहावतें-मुहावरे, क्रियापद, प्रत्यय एवं विभक्तियाँ तथा उसका सौष्ठव है । ईसुरी की फागों की भाषा को हम इसी कसौटी पर नीचे परखेंगे ।

शब्द-भण्डार ईसुरी की वैचारिकता और अभिव्यक्ति दोनों ही जन-सामान्य के बीच की वस्तु होने से उनमें तद्भव बहुल बोल-चाल की भाषा को ही अधिक प्रश्रय मिला है । एक उदाहरण देखें —

जो तुम छैल छला हो जाते,
परे उँगइयन राते ।
मों पोंछत गालन हाँ छूते, कजरा देत दिखाते ।
घरी-घरी घूंघट खोलन में, नजर सामने राते ।
मन चाही लख में तुम बिदते, हाँत जहाँ जब जाते ।
'ईसुर' दूर दरस के लानें, ऐसें काये ललाते ।

उक्त पंक्तियों में लगभग सभी शब्द तद्भव हैं । अव्यय, सर्वनाम, क्रियापद—छैल (छविल्ल > छइल), छला (छल्लि), उँगइयन (अंगुलि > उँगरि +

यां), मों (मुख>मुंह), गालन (गल्लः), कजरा (कज्जल), घरी (घटी> घड़ी), घूंघट (गुह्यगुण्ठ>घूंघुट्ट), सामने (सम्मुख>सामुह), मनचाही, लख (लक्ष्य), हांत (हस्त>हत्थ), दरस (दर्शन), ललाते (ललत्) आदि। ईसुरी की फागों में तद्भव शब्दों की संख्या लगभग अस्सी प्रतिशत तक है। आडम्बरहीन सहज सौन्दर्य के उपासक इन तद्भव शब्दों का उत्स यद्यपि संस्कृत से है पर प्रकृति बुन्देली के अनुकूल। कुछ तद्भव शब्दों ने तो अपना अस्तित्व भी अलग खड़ा कर रखा है। उनके मूल अर्थ दूसरे लाक्षणिक अर्थों में संक्रमण कर गये हैं। यथा—'मध्य' से व्युत्पन्न (मंज्ञ) 'मझयाई' शब्द 'किसी वस्तु को बीच तक ले जाने या पहुँचने' के भाव से अलग 'थाह लेने' की पारदर्शिता में 'देखो' या भोगी" है का अर्थ देता है—"नइयां कोऊ को कोऊ सहाई, सब दुनियां मंझयाई"। इसी प्रकार 'आघ्राण' (सूंघने की क्रिया या भाव) शब्द बुन्देली में अघाने>अगाने के रूप मे 'संतृप्ति' का अर्थ द्योतित करता है "ईसुर स्याम जगत अपजस की करतन नई अगाने"। 'यौवन' शब्द भी योवन> जौवन>जुबन के रूप में उरोजों का पर्याय बन गया है—"सोने की जा बनी देइया, कंचन-जुबना दोई"।

ईसुरी ने अपनी भावाभिव्यक्ति को सहज किन्तु संवेद्य बनाने में तद्भव शब्दों को भी कुछ इस प्रकार घिसा है कि वे जन-सामान्य की अपनी भाषा के देशज शब्दों-से प्रतीत होते हैं। "गोरी नारी और पंछीलो, है लमछौहीं मुइयां" में प्रयुक्त 'पंछीली' और 'लमछौहीं' शब्द इसी प्रकार के हैं। 'पानी' से व्युत्पन्न 'पंछीली' शब्द जहाँ तनुता में पारभासी तरल सौन्दर्य को उद्भासित करता है वहीं 'लम्बाई' से निष्पन्न 'लमछौहीं' शब्द 'छौहीं' के रूप में 'छवि' के भाव को समेटे सुडौलता को द्योतित करता है। शब्दों की यह संवेद्य और अभिनव तराश ईसुरी की भाषा की विशेषता है।

इनके अतिरिक्त भाषा की सहजता और चित्रात्मकता के अन्य प्रमुख उपादान अनुकरणात्मक और देशज शब्द हैं। इनकी अर्थ ध्वननयुक्त ध्वनि भले ही साहित्यिक शब्दावली में अपना उचित स्थान न पा सके पर भाव सौन्दर्य और कला को अपनी संगीतात्मकता से अनुगुंजित अवश्य करती है—

(१) चलतन परत पैजना छनकें, पाँवन गोरी धनकें।
(२) कात 'ईसुरी' बरकत रइयां, डस लै नाग-लफारो।
(३) छीताफर्ली पैजना पैरें, होत जात अरौंआ।
(४) आ गई रजऊ पै भरदर ज्वानी, दुनिया देख ललानो।

पंक्तियों में प्रयुक्त 'छनकें', 'लफारो', 'अरौंआ', 'भरदर' एवं 'ललानो' शब्दों का अनुकरणात्मक तथा नादात्मक सौन्दर्य वस्तुस्थिति को जीवन्त अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

ईसुरी की भाषा में विदेशी शब्दों का भी पर्याप्त प्रयोग हुआ है। सहजता के परिप्रेक्ष्य में—अरबी, फारसी और तुर्की के बोल-चाल में घुले हुए शब्दों का इन्होंने अपने ढंग से उपयोग किया है। यथा—

(१) जिदना तुमसें कीनी यारी, गई मत भूल हमारी
भये बरबाद अफाज कहाये स्यान बिगार अनारी

(२) नैना रंगरेजिन ने मारे, कर दये प्रान दरारे
दबे रात अलफा के भीतर, जुबन दोऊ अनयारे

उक्त पंक्तियों में 'यारी' (यार, फा०), बरबाद (फा०), अफाज (अफ्ज़ह, अ०), रंगरेजिन (रंगरेज़, फा०) अलफा (अल्फा, अ०) आदि विदेशी शब्दों का प्रयोग हुआ है। ऐसे ही—तमासा (तमाशा, अ०), मीजान (मीज़ान, अ०), गुलाल (गुल्लाला, फा०), मजा (मज़ः, फा०), नजर (नज़र, अ०), तरफ (तरफ़, अ०), इकरार (इक़रार, अ०), इसारो (इशारः, अ०), माताबन (माहताब, फा०), रोजऊँ (रोज़, फा०), जाहिर (ज़ाहिर, अ०) जरद (ज़र्द, फा०) आदि कितने ही शब्द हैं, जो बुन्देली से अपना ताल-मेल बैठाते हुए उसकी प्रकृति के अनुकूल बन गये हैं।

ईसुरी ने अपनी फागों में तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुत कम किया है क्योंकि बोल-चाल की भाषा तद्भव शब्दावली का ही पल्ला पकड़ती है। फिर भी जहाँ कहीं तत्सम शब्दावली का प्रयोग हुआ है, अभिव्यक्ति को बल मिला है। 'नितम्ब' शब्द का एक ऐसा ही प्रयोग देखें—

बिखरे डरे केस अनगोये, आज लाड़ली धोये।
बूंदा चुअत नितम्बन ऊपर कम से गये निचोये।

ईसुरी के उत्तरार्द्ध के काव्य में इन तत्सम शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। भक्ति की ओर झुकती हुई प्रतिभा लोक और लोक भाषा से कुछ अलगाव जैसा खींचती है। एक फाग देखें—

नैना श्री वृखभान कुंअरि के, दरस लेत गिरधर के।
हैं कै नईं गुलाब फूल गये, बच्चा भूल भँवर के।
अंजर मुकुर कंज बन गंजन, रंजन वारे सर के।
ईसुर तरुन अरुन अलसाये देखे बड़ी फजर के।

मुहावरे और कहावतें—मुहावरे और कहावतें बोल-चाल की सबल भाषा के अनिवार्य उपकरण हैं। इनमें अनेक प्रकार की जीवनव्यापी अभिव्यक्तियाँ तो ऐसी हैं जिनका भाषा के पास तो कोई स्थानापन्न प्रयोग ही नहीं। ईसुरी ने इन्हीं अभिव्यक्तियों के माध्यम से अपने बहुत-से शिथिल और भोथे भावों को तीक्ष्ण तीर की तरह संवेद्य और प्रभावी बनाया है। लोक प्रचलित इन उपमानों का आश्रय लेकर ईसुरी की फागें अपने अभीष्ट की अभिव्यक्ति में वह प्रभाव उत्पन्न कर सकी हैं जो कई-कई पदों में भी सम्भव नहीं था। दो उदाहरण देखें—

(१) कर लो प्रीत खुलासा गोरी, जा मंसा है भोरी
ऐसी कर लो ठोंक तारिया फिर न टूटै टोरो

× × ×

ईसुर कात होत है नइयाँ ऊँट की न्योरें चोरी
(२) 'ईसुर' करें गरे कौ कठला, हमखाँ बलम हमारे।

प्रथम उदाहरण में 'तारी ठोकना' मुहावरे के द्वारा प्रेम की निर्भीक घोषणा में समाज के प्रति जो चुनौती व्यंग्य है और 'ऊँट की चोरी न्योरें-न्योरें नईं होत' कहावत के माध्यम से हृदगत अमूर्त भाव प्रेम को विरह के उत्ताप में ऊँट से भी ऊँचा रूपायित करते हुए चोर की तरह न्योरें-न्योरें चलने में छिपाव की छटपटाहट के बीच प्रेम के उजागर हो जाने की जो दीप्ति है वह कहावत की अपनी छलक है। दूसरे उदाहरण में प्रियतमा की उत्कण्ठा 'गरे कौ कठला होवौ' के रूप में कितनी पावन हो गयी है। ईसुरी की फागों में सहजोद्गार एवं उक्तिवैचित्र्य—वचन चातुरी, विनोद, परिहास एवं कटूक्तियों-के अवसरों पर कहावतों एवं मुहावरों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। निम्न पंक्तियों में वृद्धा भाभी के बनाव-श्रृंगार पर निन्दा और घृणा का भाव कहावतों की प्रत्यञ्चा पर कितना सधा हुआ व्यंग्य है—

"देखी ऊपर की सुफलाई, भीतर कछू न भाई
.... मूँह पर फिर गई स्याई
ईसुर कात पुराने मठ पै, कलई करें भौजाई

क्रियापद—किसी भी भाषा की अपनी प्रकृति और स्वरूप उसके क्रियापदों तथा विभक्ति प्रत्ययों पर निर्भर करती है। ईसुरी की फागों में प्रयुक्त क्रियापदों की प्रकृति बुन्देली के अनुकूल ओकारान्त है। संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण आदि भी ओकारान्त ही हैं।

फागों में प्रयुक्त क्रिया के मूलरूप स्वरान्त और व्यंजनान्त दोनों प्रकार के है। स्वरान्त में आ, आ, ई, ऊ, ए और ओकारान्त—सोच, देख, आ, गा, दे, ले, पा, छू, हो, सो आदि तथा व्यंजनान्त में—जान, मान, घूम, चूम आदि अनुनासिक्य में अन्त होने वाली धातुएँ हैं।

क्रियाओं की रूप-रचना में उनकी काल-रचना तथा कृदन्ती रूपों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ईसुरी की भाषा में काल रचना—वर्तमान, भूत और भविष्य—में एक से अधिक पद्धतियों का आश्रय लिया गया है। इन्हें कृदन्ती-काल, मूल काल तथा संयुक्त काल कह सकते हैं।

कृदन्ती काल—मुख्यतः कृदन्तों का उपयोग सामान्य वर्तमान काल और सामान्य भूतकाल के निर्माण में हुआ है। सामान्य वर्तमान काल में वर्तमान कालिक कृदन्त प्रत्यय 'त' का सायुज्य पुँल्लिग एकवचन, बहुवचन तथा स्त्रीलिंग एकवचन में, 'ती' का योग स्त्रीलिंग एकवचन में तथा 'तीं' का योग स्त्रीलिंग एकवचन व बहुवचन दोनों में हुआ है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(१) मींरा जात पराये बागे तनक सरम न लागे
(२) बैयाँ लगत बरन सें नोंनी...
(३) जातीं पटियाँ पारें पाने ...
(४) दो-दो जनीं, एक ज्वोरा सें बड़ा ऐंचतीं धीरें।

सामान्य भूतकाल का निर्माण भूतकालिक कृदन्तों से हुआ है। इसमें 'ई' प्रत्यय का योग स्त्रीलिंग एकवचन के लिए तथा 'ईं' प्रत्यय का प्रयोग एकवचन और बहुवचन दोनों के लिए हुआ है। पुँल्लिग प्रत्यय एकवचन के लिए 'ओ' तथा एकवचन और बहुवचन दोनों के लिए 'ए' या 'ये' उपयोग में लाया गया है। देखें—

(१) लचकी करयाई जल भरतन
(२) कडतन हनीं नैन तरवारें
(३) देखो रजऊ खाँ पटियाँ पारें
(४) कइयक खड़े तुमाये लाने

मूलकाल—वे काल जो धातु में सीधे प्रत्यय जोड़कर बनाये गये हैं, मूलकाल के अन्तर्गत समाहित हैं। वर्तमान काल धातु में 'ऐ', 'ऐं', 'बे', 'बें', 'आऊँ' आदि प्रत्यय लगाकर प्राप्त किये गये है—

(१) दूजी उपजी न सिनसारी, लागें सब खाँ प्यारी।
(२) हेरत स्याम घटा के ऊपर बिजली कैसो फेंकें।

(३) हम तुम खाँ बो बिख भओ सूजं, लासुन घाई बसाबं ।
(४) भीतर सें बाहर नों आबैं, छी-छी जाबैं देरी ।
(५) ... चरनन सोस नबाऊँ ।

भविष्यत्काल के प्रत्यय हैं, ऐहै, ऐहैं, ऐहो, ऐहों, ओ, बै, बैं आदि । उदाहरण देखें—

(१) जो कऊँ बीत जामनी जंहै, का कोऊ मों सें कंहै
(२) जो कऊँ हुऐ द्वारिकै देरी
(३) बे दिन गौने के कब आबैं
(४) अब न होबो यार किसी के
(५) बिन देखें न चलं ईसुरी, चलजं बिना बताने
(६) नेहा लगा लेव पछतंहो, सदा न ऐसी रंहो
कछू दिनन में जुबन लटक जें, कोन दीन की रंहो
(७) ई बुंदकी सें बचन पाओ, बूंदा खाँ जिउ लेनै
(८) कोऊ ऐसो कछू न कर है...।

संयुक्त काल—मुख्य क्रिया के साथ सहायक क्रिया जोड़कर संयुक्त कालों की रचना हुई है। इसमें मुख्य क्रिया प्रायः कृन्दत या अन्य रूपों में होती है तथा सहायक क्रिया विभिन्न कालों का द्योतन करती है। इसके अन्तर्गत वर्तमान काल और भूतकाल हैं।

वर्तमान काल—(क) वर्तमान कालिक कृदन्त+सहायक क्रिया
(१) दोर को बैंड़ो गाढ़ो लगत है, तनक इसारो दइयो ।
(२) हेरत जात उँगइयन में हो ढकतो हैं परछैयाँ ।
(ख) भूतकालिक कृन्दत+सहायक क्रिया
(१) ब्रह्मा ने वैकुण्ठ रचो है, उनईं नरन के लानें ।
(२) टेसू और कदम फूले हैं, कालिन्दी के तीरे ।
(३) सम समसेर खिचो है जिनमें, वचै सो पिय के भागन

भूतकाल— (क) वर्तमान कालिक कृदन्त+सहायक क्रिया
(१) बीच गली में चले जात ते घयल न कर डारो
(२) कंचन कड़े वड़े पंरत ते, लचकत लरम कलाई ।
(ख) भूतकालिक कृदन्त+सहायक क्रिया
(१) आबो जान गई पैलाँ सें, ठाँड़ो हतों उबारें

(२) जे द्रुम लता छता बाँदे तीं, ते बिन पात समूंजें
(३) गुदना गुदवाउत रो दओ तो, तनक दरद न सओ तो

इनके अतिरिक्त ईसुरी की फागों में क्रिया के संयुक्त रूप भी प्राप्त होते हैं। यथा—'करबे जोग-भोग कछु नाते, लुट गये बालापन के' (धातु के साथ क्रिया का संयोग), धीरे पण्डा रोन लगे जब, हमें न आई राई' (क्रियार्थक संज्ञा+क्रिया), हेरत रईं दिखानी कऊँना (वर्तमान कालिक कृदन्त+क्रिया), बैठ रईं मन रोकें (भूतकालिक कृदन्त+क्रिया) आदि ।

ईसुरी की भाषा में वर्तमान कालिक कृदन्त, भूतकालिक कृदन्तों के अतिरिक्त पूर्वकालिक कृदन्त, तात्कालिक कृदन्त, भूत सम्भावनार्थ तथा क्रियार्थक संज्ञा रूप भी प्राप्त होते हैं—

पूर्वकालिक कृदन्त—कें : काँ गये नेहा यार लगाकें
० : झपट परी मैं पइयाँ
: रो-रो दसकत टोरे
तात्कालिक कृदन्त—अन : लचकी करहाईं जल भरतन,
नेंची गरदन करतन
ई/ईं : कड़तईं लग गओ मूंड़ दिरोंदा
भूत सम्भावनार्थ—ते : जो तुम छैल छला हो जाते
क्रियार्थक संज्ञा —त : बैठत, उठत, निगत, निउरन में परे गाल पे सोंते
बे : मिलबे कों यार खड़े दोरें
इयो : इनकी भरन न भरियो मन में
न : बिसरै न धरन गगरिया की

प्रत्यय एवं परसर्ग

भाषा की रूप-रचना के दूसरे प्रमुख तत्त्व विभक्ति प्रत्यय तथा परसर्ग हैं। फागों में इनके दो रूप मिलते हैं—एक अविकारी और दूसरा विकारी। अविकारी रूप का प्रयोग सामान्यतः कर्त्ता, कर्म, सम्बन्ध एवं अधिकरण कारक में हुआ है। ये किसी भी प्रकार के प्रत्यय या परसर्ग से सर्वथा मुक्त हैं। बानगी देखें—

(१) रजुआ तनक न चलती नेंकें (कर्त्ता)
(२) मोहन भर पिचकारी खींचें (कर्म)
(३) जो कोऊ नैंन अनी बरकाबै (सम्बन्ध)
(४) सूनी सेज परत हम अपनी (अधिकरण)

प्रत्ययों एवं परसर्गों के आधार पर विकारी रूप के पुनः दो भेद मिलते हैं—एक संश्लिष्ट और दूसरा विश्लिष्ट। संश्लिष्ट रूप में कारक सम्बन्धों को स्पष्ट करने वाले प्रत्यय— ए, ऐ, ऐं, ई, अन और 'इन' संज्ञा या सर्वनामों आदि से पूर्णतया जुड़े रहते हैं। यथा—

अन : आ गई नगन नगन पियराई (अधिकरण)

: नैनन सामरिया लग जै है (अधिकरण)

: लचकत लंक बक कच भारन (करण)

ई : अब दिन आये बसन्ती नीरें (सम्बन्ध)

विश्लिष्ट रूप में कारक चिह्न परसर्ग रूप में अलग से प्रयुक्त होते हैं। नीचे कुछ उदाहरण ईसुरी की फागों से देखें—

कर्त्ता : ने—

(१) पैरे रजऊ ने प्रान हरन के···।

(२) नैना रँगरेजिन ने मारे···।

(३) तुमने राखे मान हमारे···।

कर्म और सम्प्रदान : कौ, कों, खों, खाँ, के लाने, के हेत, खइयाँ आदि

(१) तन को तनक भरोसो नइयाँ

(२) नैना इसनेही कौं तरसें

(३) देखो रजऊ खाँ पटियाँ पारें

(४) तुमखौं मौं के मसे सें चीनो

(५) रब ने रूप दओ तुम खइयाँ

(६) आये बलम बिदा के लाने

(७) दिन कें मिलवे हेत पधारीं

करण और अपादान : से, सें, तें, सौं

(१) पाती छाती सौं चिपकाई

(२) नैना वारे सें न तांसे

(३) खा गये पर नारी तें चुक्का

(४) बइयाँ लगत बरन से नोनी।

सम्बन्ध : की, के, को—

(१) बखरी बसियत हैं भारे की

(२) जो तिल लगत गाल को नोको

(३) बुंदा रजऊ के माथें चड़कें

अधिकरण : में, पै, पर

(१) इक दिन ढरक आयें ओली में

(२) गुदना लगत गाल पै प्यारो

कहीं-कहीं दो परसर्गों का एक साथ प्रयोग भी हुआ है। जैसे—"दुबरी देह दरा के ऊपर, हिलत चली गई धारे"।

भाषा-सौष्ठव—ईसुरी की भाषा का सहज सौन्दर्य, उसकी मिठास अनूठी है। इसी सहजता के अनुरूप उसकी वसन-सज्जा भी बन पड़ी है। ईसुरी ने अपनी फागों के लिए भाषा के इसी स्वाभाविक और मार्दव रूप को अपनाया है और उसकी शृंगार-साधना में ऐसी सधी हुई तूलिका चलाई है कि एक-एक रंग अपनी सुन्दरता में चमक उठा है। भाषा की सजावट का एक साधन अनुप्रास भी है। ईसुरी की अधिकांश पंक्तियाँ इसकी छटा से जगमगा उठी है। कुछ विशिष्ट प्रयोग देखें—

१. चंचल चपल चलत चारों दिस, मानो भुमत बनेती।

२. ठमस ठगीली ठगन प्रान खों, छैल, छलन छल वारो।

कहीं-कहीं तो पूरी-की-पूरी पंक्ति आनुप्रासिक छटा से दीप्त चकाचौंध-सी उत्पन्न करती है। आद्यानुप्रास के अतिरिक्त ईसुरी की फागों में अन्त्यानुप्रास का प्रयोग भी पदबन्धों को लालित्य से भर देता है। इससे पद में एक प्रकार के संगीत गुण की अभिवृद्धि हुई है। शब्दों में एक लय है, एक गति है जो बरबस अपनी ओर खींच लेती है।

चरणों के अन्तिम शब्दों में तो तुकों का प्रयोग लोकभाषा और हिन्दी की अपनी मौलिक विशेषता है। इससे पंक्ति के माधुर्य में वृद्धि होती है और लय की रक्षा। गायन की दृष्टि से भी इनका अपना महत्त्व है। ईसुरी ने तुकों की समायोजना में आकाश-पाताल को एक कर दिया है तथा अपने प्रकार से शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा है। उदाहरणस्वरूप लग्गा, खग्गा, अग्गा, तग्गा तथा बग्गा तुकों से समन्वित निम्न फाग देखी जा सकती है :

जब सें लगो हमाओ लग्गा, कसकों करिया खग्गा।
बड़े भोर झारतती अपनो, उठ द्वारे को अग्गा।
ऐसो लगो प्रीत को डोरो, टोरो टुटै न तग्गा।
कहत ईसुरी ऐसे बिद गओ, ज्यों गोटन में बग्गा।

इसी प्रकार तुक मिलाने के लिए एक अन्य फाग में अन्यायी शब्द 'अनोई' हो गया है। न जाने ऐसे कितने शब्द अपने मूल रूप से विकृत होकर तुकों को जोड़ने का उपक्रम करते हैं।

कथ्य और भावों को प्रभावी बनाने तथा भाषा को गत्यात्मक रूप देने के लिए वीप्सा अलंकार का सचेष्ट प्रयोग भी ईसुरी की फागों में हुआ है। "खा-खा कड़ें पान के बीरा, हरें पराओ जीरा" में खा-खा की आवृत्ति अपने में एक विशेष अभिव्यंजना समोये हुए है। फागों में कहीं-कहीं शब्दों की यह आवृत्ति दो से भी अधिक बार देखने को मिलती है। यह पुनरुक्ति है। इससे भी फागों को रुचिरता और उत्कर्ष को ध्वनि मिली है। अर्थध्वनन को दृष्टि से भी ईसुरी की मांज और तराश का अपना एक अलग प्रभाव है। विषयानुकूल भाषा को ढालने, उसमें औज्ज्वल्य, मसृणता और लोच उत्पन्न करने में भी उनका अपना एक स्थान है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि ईसुरी ने व्यावहारिक बुन्देली को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और उसे साहित्यिक धरातल तक ले जाने का एक सफल प्रयास किया। बुन्देली की सहज मधुर प्रकृति के अनुकूल शब्दों को ढाला और उनके खुरेदरेपन को समतल एकरूपता प्रदान कर अपने में स्वाभाविक रीति से घुला लिया। जहां कहीं भी घिसाई में कुछ कमी रह गयी है शब्द आंसते हैं।

● फागों की शब्द सम्पदा पर्याप्त समृद्ध है और अभिव्यक्ति के अनुकूल भी। इनमें तद्भव शब्दों का बाहुल्य है।

● मुहावरों और लोकोक्तियों के सम्यक् प्रयोग से फागों की व्यंजकता के साथ-ही-साथ सटीकता और प्रभविष्णुता की भी अभिवृद्धि हुई है। इनसे फागों में लोक की छाया उतर सकी है।

● बुन्देली के क्रियापदों के प्रयोग से—उसकी ओकारान्त प्रवृत्ति के कारण भाषा में सहज और माधुर्य गुण का स्वाभाविक रूप से विकास हुआ है।

● अनुप्रास, वीप्सा और पुनरुक्ति आदि अलंकरण भाषा को नादात्मक सौन्दर्य से अनुप्राणित करते हैं। उसे बोझिल नहीं बनाते।

कुल मिलाकर ईसुरी की भाषा में बुन्देली का प्रौढ़ और शिष्ट रूप निखरा है। साधारण बोलचाल की भाषा से लेकर अलंकृत और संगीतात्मक वैभव तक, जीवन के अनुभूत क्षणों से लेकर नायिका-भेदों तक सभी ईसुरी में परिव्याप्त हैं।

— सर्राफा बाजार, महोबा

ईसुरी की फागें : गायकी की दृष्टि से

● श्री महेश कुमार मिश्र 'मधुकर'

बुन्देली लोक साहित्य के विद्वानों ने ईसुरी को एक 'लोक कवि' के रूप में प्रतिष्ठित किया है। उनके अनुसार ईसुरी एक ऐसे कवि थे, जिन्होंने मात्र 'फागों' की रचना की है। तात्पर्य यह कि साहित्यिक मूल्यांकन के बल पर ईसुरी को प्रथम श्रेणी के कवियों की पंक्ति में तो खड़ा कर दिया गया है, लेकिन उन्हें उस महत्त्वपूर्ण विशेषण से भी वंचित कर दिया गया है, जिसके वे वास्तविक अधिकारी थे। और वह विशेषण या उनका एक श्रेष्ठ लोक-गायक होना अर्थात् इस ओर किसी की भी दृष्टि नहीं गयी कि ईसुरी एक श्रेष्ठ लोक-कवि के अतिरिक्त एक श्रेष्ठ लोक गायक भी थे। यदि न्यायपूर्वक विचार किया जाये, तो उनकी फागों से उनका 'लोक गायकत्व' ही अधिक प्रमाणित होता है। दूसरे शब्दों में, ईसुरी एक ऐसे कवि थे, जिन्होंने लोक-जीवन के शाश्वत मनोभावों और अनुभूतियों के अनिर्वचनीय क्षणों को शब्दों के माध्यम से इस सीमा तक 'गेय' बना दिया कि बुन्देलखण्ड के जन-मानस ने उन्हें सदैव के लिए 'आत्मसात्'-सा करके रख लिया है।

ईसुरी का यह कृतित्व 'फागों' के रूप में प्रचलित है; किसी खण्डकाव्य, प्रबन्धकाव्य या महाकाव्य के रूप में नहीं। 'फाग' एक प्राचीन 'गीति'—प्रकार है, जो देशी संगीत का एक प्रमुख अंग है। इसके अनेक भेद हैं, जो लोक में होरी, लेद, रसिया आदि अनेक नामों से प्रचलित हैं। लेकिन न जाने किस भ्रम के कारण मात्र 'चौकड़िया छन्द' के आधार पर गाये जाने वाले गीतों को ही 'फाग' मान लिया गया है और यह धारणा प्रचलित हो गयी है कि मात्र 'चौकड़िया' ही एक ऐसा छन्द है, जो 'फाग' का सही प्रतिनिधित्व कर सकता है। ईसुरी की अधिकांश रचनाओं का चौकड़िया छंद के रूप में पाया जाना भी इस धारणा को पर्याप्त बल देता है। अतः दो अनुमान लगा लिये गये हैं—प्रथम तो ईसुरी ने मात्र चौकड़िया छंद को ही अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया है और दूसरा चौकड़िया छंद ही 'फाग' का पर्याय-वाची है।

वस्तुतः उपर्युक्त दोनों ही अनुमान थोथे हैं और मात्र संगीत-विषयक अनभिज्ञता या अल्पज्ञता का ढिंढोरा पीटते हैं। चूंकि प्रस्तुत निबन्ध का उद्देश्य ईसुरी की फागों पर गायकी की दृष्टि से विचार करना मात्र है, अतः किसी अन्य विवाद में न उलझकर केवल उन्हीं तथ्यों पर विचार किया जा रहा है, जो केवल इस निबन्ध के शीर्षक से सम्बन्ध रखते हैं।

पूर्व में बताया जा चुका है कि 'फाग' एक 'गीति'-प्रकार है। शारङ्गदेव के अनुसार स्थायी, आरोही, अवरोही वर्णों से अलङ्कृत पद एवं लय से युक्त गायन-क्रिया 'गीति' कहलाती है (—"वर्णाद्यलङ्कृता गान-क्रिया पद-लयान्विता गीतिरित्युच्यते"—संगीत रत्नाकर अ० सं०, स्वरा० पृ० २८०)। आधुनिक 'गायकी' शब्द 'गीति' का पर्यायवाची न होते हुए भी—अर्थ और लक्षण की दृष्टि से उसके सन्निकट है। अतः कहा जा सकता है कि बुन्देलखण्डी फाग एक 'गायकी' है। इस गायकी के स्वर-संचार, लय की प्रवृत्तियाँ और पद—निश्चित तथा परम्परागत है अर्थात् 'फाग' एक विशेष प्रकार के पद (छंद या गीत) को एक निश्चित धुन या तर्ज में 'लय' के कुछ निर्धारित प्रकारों में गाने की क्रिया है, जो कतिपय स्थानिक विशेषताओं के कारण अनेक भेदों में विभाजित पायी जाती है।

'फाग' के इन भेदों में सर्वप्रथम 'चौकड़िया' की गणना होती है। इसे 'चौकड़ियाऊ' फाग भी कहा जाता है। इसका 'आश्रय-पद' प्राचीन नरेन्द्र नामक छन्द है। किन्तु इस पद के 'कलेवर' और इसकी गान क्रिया में प्रयोज्य 'लय-प्रवृत्ति' के कारण बुन्देली भाषा में इसे 'चौकड़िया' कहा जाने लगा है। दूसरे शब्दों में, प्रायः चार कड़ियों (पंक्तियों) वाला 'पद' होने एवं गाते समय हिरण जैसी चौकड़ी भरने के लक्षणों को देखते हुए इसे 'चौकड़िया' की संज्ञा प्राप्त हो गयी है।

इस 'गीति' में प्राचीन 'षड्ज ग्राम' के षड्ज, ऋषभ, गान्धार और मध्यम—केवल इन चार स्वरों का प्रयोग होता है। आधुनिक थाट पद्धति के अनुसार इन स्वरों को स, शुद्ध रे, कोमल ग और शुद्ध म कह सकते हैं। किन्तु इन स्वरों को आज हम तभी प्राप्त कर सकते हैं, जबकि हारमोनियम के तीसरे या चौथे 'काले' को अपना 'स' (षड्ज) मानकर गाना शुरू करे। ऐसा न करने पर इस गीति प्रकार का वास्तविक आनन्द दुर्लभ रहेगा।

ईसुरी ने इस गीति प्रकार का प्रचुरता के साथ उपयोग किया है। उनकी अधिकांश फागें इसी प्रकार पर आधारित हैं। उदाहरण के लिए एक फाग की स्वर-लिपि दी जा रही है :—

आश्रय पद—चौकड़िया। ताल—दादरा मध्यलय और कहरवा द्रुत।

स्थायी

×			०			×			०		
				स	स	रे	ग	—	रे	स	—
				अ	रे	जो	ऽ	ऽ	तन	ऽ	ऽ
—	—	रे	—	ग	म	ग	—	—	रे	स	स
ऽ	ऽ	हो	ऽ	ग ओं	ऽ	मू	ऽ	ऽ	क	ऽ	छु
रे	ग	स	—	स	स	रे	ग	—	रे	स	—
आ	ऽ	रो	ऽ	अ	रे	जो	ऽ	ऽ	त	न	ऽ
—	—	रे	—	ग	म	ग	—	—	रे	स	—
ऽ	ऽ	हो	ऽ	ग	ओं	मू	ऽ	ऽ	क	छु	ऽ
—	—	रे	ग	स	—	—	स	स	स	—	रे
ऽ	ऽ	आ	ऽ	रौ	ऽ	ऽ	अ	रे	ए	ऽ	जो
ग	ग	—	—	—	ग	—	ग	ग	ग	ग	—
भ	ला	ऽ	ऽ	ऽ	ऊ	ऽ	स	इ	ह	तो	ऽ
रे	ग	स	रे	ग	स	—	स	स	रे	ग	—
ऽ	ऽ	इ	का	ऽ	रो	ऽ	अ	रे	जो	ऽ	ऽ
रे	स	—	—	—	रे	—	ग	म	ग	ग	—
त	न	ऽ	ऽ	ऽ	हो	ऽ	ग	ओं	मू	ऽ	ऽ
रे	स	—	—	—	रे	ग	स	—			
क	छु	ऽ	ऽ	ऽ	आ	ऽ	रो	ऽ			

चौकड़ी (द्रुत कहरवा)

म — म — ग — ग ग ग — ग ग ग — ग —

ऐ ऽ सौ ऽ हो ऽ गओ सू ऽ क छु आ ऽ रौ ऽ

ग — ग — रे — रे रे स — स रे स — स —

जो ऽ त न हो ऽ गओ सू ऽ क छु आ ऽ रौ ऽ

म — — — ग — ग ग ग ग — ग ग — ग —

ए ऽ ऽ ऽ ऊ ऽ स इ ह तो ऽ इ का ऽ रौ ऽ

ग — ग ग रे — रे रे स स — रे स — स —

जो ऽ त न ऊ ऽ स इ ह तो ऽ इ का ऽ रौ ऽ

ए होगओ सूक छुआरो जोतन होगओ सूक छु०

× ० × ०
स — स — — — — — — — — — — — — —
आ ऽ रौ ऽ * * * * * * * * * * * *

अन्तरा (ताल हीन)

स — सस स रे ग ग — ग ग — ग — ग ग ग ग ग —

रे ऽ गइ खा ऽ ल हा ऽ ड़ के ऽ ऊ ऽ प र म क री ऽ

रे ग स — रे — ग रे स —

के ऽ सो ऽ जा ऽ रौ ऽ ऽ ऽ

अन्तरा (ताल : दादरा)

• × ० ×
स स रे — — ग ग — रे — —

अ रे रे ऽ ऽ ग इ ऽ खा ऽ ऽ

स — स रे — रे ग — — रे — —

ल ऽ हा ऽ ऽ ड़ के ऽ ऽ ऊ ऽ ऽ

स स — रे ग ग ग ग — रे ग रे

प र ऽ ऽ ऽ म क री ऽ के ऽ ऽ

स — — — — रे — ग रे स

सो ऽ ऽ ऽ ऽ जा ऽ रौ ऽ ऽ

अन्तरे की चौकड़ी (ताल : द्रुत कहरवा)

× × × ×
स — म — म — ग — ग ग ग — ग ग

हाँ ऽ ऐ ऽ सौ ऽ रे ऽ ग इ खा ऽ ल हा

— ग ग — ग — ग ग रे रे रे — स — स रे

ऽ ड़ के ऽ ऊ ऽ प र म क री ऽ के ऽ सौ ऽ

× × • × ×
स — स — म — — — ग ग ग — ग — ग —

जा ऽ रौ ऽ ए ऽ ऽ ऽ म क री ऽ के ऽ सौ ऽ

ग — ग — ग — ग ग रे — रे रे स — स रे

जा ऽ रौ ऽ जो ऽ त न हो ऽ गओ सू ऽ क छु

स — स — — — — — — — — — — — — —
आ ऽ रौ ऽ * * * * * * * * * * * *

शेष निम्नलिखित अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेंगे :—

तन भओ बाँस, बाँस भओ पिंजरा, रकतरओ ना सारौ।
कहत ईसुरी सुन लेव प्यारी, खटका लगो तुम्हारौ ॥

फाग-गायकी के उपर्युक्त प्रकार में 'अरे, एजी, भला और हाँ' इत्यादि शब्दों का प्रयोग मात्र लय-ताल की पूर्ति के उद्देश्य से किया जाता है। इनका अर्थ की दृष्टि से कोई उपयोग नहीं है।

ईसुरी की फागों को परम्परागत रूप में गाने का एक अन्य प्रकार निम्नलिखित है। इसके अन्तर्गत किसी भी चौकड़ियाऊ फाग को पीलू राग के स्वरों में दादरा ताल की मध्य लय पर इस प्रकार से गाते हैं:—

स्थायी

°	×	°	×
स स	रे ग रे	स नि़ —	— — नि़
अ रे	जौ ऽ ऽ	त न ऽ	ऽ ऽ हो
— स स	ग — रे	स — रे	नि़ — स
ऽ ग ओ	सू ऽ ऽ	क ऽ छु	आ ऽ रौ
•	×	°	×
— प प	प — —	प प —	प प म
अ रे	ऊ ऽ ऽ	स इ ऽ	ह तो ऽ
मप ध प	म ग ग	रे स स	स ग रे
ऽऽ ऽ इ	का ऽ रौ	ऽ अ रे	जौ ऽ ऽ
स नि़ —	—,		
त न ऽ	ऽ,		

अन्तरा (ताल : पूर्ववत्)

°	×	°	×
	नि़	— नि़ नि़	स — —
	रे	ऽ ग इ	खा ऽ ऽ
नि़ — स	रे ग ग	रे स रे	नि़ — —
न ऽ हा	ऽ ऽ ङ	के ऽ ऽ	ऊ ऽ ऽ
स स —	— प प	प प —	प — म
प र ऽ	ऽ ऽ म	क री ऽ	कै ऽ ऽ
मप ध प	म ग ग	रे स स	स ग रे
सौऽ ऽ ऽ	जा ऽ रौ	ऽ अ रे	जौ ऽ ऽ
स नि —	— *		
त न ऽ	ऽ *		

इसके भी शेष अन्तरे पूर्ववत् गाये जायेंगे। इस प्रकार में मात्र पुनरावृत्ति की जाती है।

'फाग' का तीसरा प्रकार वह है, जिसे ग्रामीण स्त्री-पुरुष मेला-तमाशा देखने जाते समय रास्ते में गाते हैं। यह प्रकार भी पीलू के स्वरों में दादरा ताल की लय पर गाया जाता है :—

स्थायी

×	°	×	°
ग ग रे	स नि़ —	— — प़	— नि़ नि़
अ ब ऽ	रि तु ऽ	ऽ ऽ आ	ऽ इ ब
स — —	स नि़ स	ग ग रे	स नि़ —
सं ऽ ऽ	त ऽ व	हा ऽ ऽ	र न ऽ
स — —	स़ नि़ स	रे ग ग	— ग रे
ला ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ल पा	ऽ न फू
म — म	ग ग रे	स ग —	रे स नि़
ऽ ऽ ल	फ ल ऽ	ऽ डा ऽ	र न ऽ
सि — स	ग रे स	नि़ — नि़	— नि़ नि़
ऽ ऽ अ	ब रि तु	ऽ ऽ आ	ऽ इ ब
स — —	स नि़ स	ग ग रे	स नि़ —
सं ऽ ऽ	त ऽ ब	हा ऽ ऽ	र न ऽ
स — —	— — स		
ला ऽ ऽ	ऽ ऽ ल		

अन्तरा

×	°	×	°
ग	रे स रे	नि़ नि़ —	स — स
ऽ ऽ बा	ऽ ग न	ब न ऽ	न ऽ बं

ग	ग	रे	स	स	रे	नि़	—	—	स	स	—
ऽ	ग	ऽ	त	न	ऽ	बे	ऽ	ऽ	त	न	ऽ
ग	—	ग	—	ग	रे	म	म	—	ग	—	स
ऽ	ऽ	बी	ऽ	थी	ऽ	ब	ग	ऽ	र	ऽ	ब
स	ग	रे	स	नि़	—	स	—	ग	रे	स	नि़
जा	ऽ	ऽ	र	न	ऽ	ऽ	ऽ	अ	ब	रि	तु
—	—	प़	—	नि़	नि़	स	—	—	स	नि़	स
ऽ	ऽ	आ	ऽ	इ	ब	स	ऽ	ऽ	त	ऽ	ब
ग	—	रे	स	नि़	—	स	—	—	—	—	स
हा	ऽ	ऽ	र	न	ऽ	सा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	स

शेष निम्नलिखित अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेंगे :—

हारन हद्द पहारन पारन, धवल धाम जल धारन।
तपसी कुटी कंदरन माहीं, गई बैराग बिगारन।
ईसुर अन्त कंत घर जिनके, तिनें देत दुख दारुन॥

फाग गायकी का चौथा प्रकार 'झूला की फाग' कहलाता है। रहता इसमें भी दादरा ताल ही है, लेकिन उसकी 'लय' कुछ-कुछ झूलती हुई-सी रखी जाती है। इस फाग प्रकार का आश्रय पद 'चौकड़िया' से भिन्न रहता है। इस 'पद' में १६ और १४ मात्रा के पश्चात् यति रखी जाती है। पहली पंक्ति में दो तुकें रहती हैं। शेष पंक्तियों में एक-एक तुक होती है जो पंक्ति के अन्त में रहती है। इसका छन्दस्वरूप 'चौकड़िया' से काफी कुछ मेल खाता है। इस फाग का एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

जिन जाओ विदेसी दिन थोरो।
दिन थोरो कछु मन थोरो॥
मंझमाला में पलँग बिछा देंऊ,
दरवाजें बांधो घोरो।
कहत ईसुरी पलका ऊपर,
मन भर दऊँगी मैं तोरो॥

इस फाग की स्वर-लिपि इस प्रकार है :—

स्थायी

×			0			×			0		
		स	गरे	सरे	गम	म	—	—	म	—	म
		जि	नऽ	ऽऽ	ऽऽ	जा	ऽ	ऽ	ओ	ऽ	वि
म	—	ग	गम	गम	गरे	स	ग	—	रेस	रेस	गरे
देऽ	ऽऽ	ऽऽ	सीऽ	ऽऽ	ऽऽ	दि	न	ऽ	थोऽ	ऽऽ	ऽऽ
स	नि़	—	स	रे	रे	गरे	सनि़	नि़	स	—	रे
रो	ऽ	ऽ	ऽ	जि	न	जाऽ	ऽऽ	ऽऽ	ओ	ऽ	वि
गरे	गरे	ग	स	—	—	नि़	ध़	नि़	ध़	नि़	रे
दे	ऽ	ऽ	सी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	दि	न	थो	ऽ
स	—	—	गरे	सरे	गम	म	म	—	म	—	—
रो	ऽ	ऽ	हाँऽ	ऽऽ	ऽऽ	दि	न	ऽ	थो	ऽ	ऽ
म	—	ग	गम	गम	गरे	स	—	स	स	रेस	गरे
रोऽ	ऽऽ	ऽऽ	क	छु	ऽ	ऽ	ऽ	म	न	थो	ऽ
स	नि़	—	स	रे	—	स	नि़	नि़	—	स	रे
रो	ऽ	ऽ	जि	न	ऽ	ऽ	ऽ	जा	ऽ	ओ	वि
गरे	ग	रे	स	—	—	नि़	ध़	नि़	ध़	नि़	रे
देऽ	ऽऽ	ऽऽ	सी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	दि	न	थो	ऽ
स	—	—	—	—	—	—	—				
रो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ,	ऽ	ऽ	ऽ,				

अन्तरा

×			0			×			0		
		म	रे	स	नि़	नि़	स	नि़	निस	रे	—
ऽ	ऽ,	मं	झ	मा	ऽ	ला	ऽ	ऽ	में	ऽ	ऽ

—	—	नि	स	रे	प	म	रे	स	स	स	—
ऽ	ऽ,	प	लं	ग	बि	छा	ऽ	ऽ	दें	ऊँ	ऽ
रेग	म,	म	म	म	—	म	—	ग	गम	गम	गरे
ऽ	ऽ,	द	र	बा	ऽ	जें	ऽ	ऽ	बां	ऽ	ऽ
स	—	—	रेस	गरे	स	नि	—	—	गरे	सरे	गम
ऽ	ऽ,	धो	ऽ	धो	ऽ	रो	ऽ	ऽ	हाँ	ऽ	ऽ
×			०			×			०		
पम	—	म	म	म	—	म	—	ग	गम	गम	गरे
ऽ	ऽ,	द	र	बा	ऽ	जें	ऽ	ऽ	बां	ऽ	ऽ
स	—	—	रेस	गरे	स	निध	नि	—	स	रे	रे
ऽ	ऽ	धो	ऽ	धो	ऽ	रो	ऽ	ऽ	ऽ	जि	न
गरे	स	नि	स	—	रे	गरे	ग	रे	स	—	—
जा	ऽ	ऽ	ओ	ऽ	बि	दे	ऽ	ऽ	सी	ऽ	ऽ
नि	ध	नि	ध	नि	रे	स	—	—	—	—	—
ऽ	ऽ,	दि	न	धो	ऽ	रो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

(शेष अन्तरे इसी भांति गाये जाएंगे)

ईसुरी की फागों का एक अन्य प्रकार, जो चौकड़ियाई फागों से सर्वथा भिन्न है, बुन्देलखण्डी फाग-गायकी का एक प्राचीनतम उदाहरण कहा जा सकता है। इस फाग-प्रकार के छन्द की 'पैमाइश' छन्दःशास्त्र के आधार पर करना उपयुक्त न होगा, क्योंकि इस फाग-प्रकार का आश्रय-पद 'स्वराश्रित' है—शब्दाश्रित नहीं। इस प्रकार के अन्य उदाहरण लगभग दुर्लभ-से हैं अतः इसे यथावत् प्रस्तुत किया जा रहा है :—

आश्रय पद

पिया, कैसें डुलाऊं रस के बिजना,
मोरो, पतली कलइयां जबर ककना ॥

बेंदी के भार मोरो मायो दुखै,
माहुर के भार उठत पग ना।
लांगा के भार मोरी कम्मर दुखै,
चोली के भार दबैं जुबना।
ईसुर कजर को भार है भारी,
लगत लगाये ना दोउ नैना॥

यह फाग लेद के ठेके (दादरा प्रकार) में गायी जाती है। इसकी स्वर-लिपि निम्नलिखित है :—

स्थायी

०			×			०			×		
नि	स	—	रे	—	रे	स	नि	स	रे	—	ग
पि	या	ऽ	के	ऽ	में	ऽ	ऽ	डु	ला	ऽ	ऊं
रे	स	—	स	—	—	रे	म	—	नि	—	—
र	स	ऽ	के	ऽ	ऽ	बि	ज	ऽ	ना	ऽ	ऽ
स	रे	—	रे	—	रे	स	नि	स	रे	म	—
पि	या	ऽ	के	ऽ	सें	ऽ	ऽ	डु	ला	ऊं	ऽ
प	प	म	रे	—	—	स	नि	—	स	—	—
र	स	ऽ	के	ऽ	ऽ	बि	ज	ऽ	ना	ऽ	ऽ
म	म	—	म	म	म	—	म	—	ग	रे	ग
मो	रो	ऽ	प	त	री	ऽ	क	ऽ	ल	इ	यां
—	ग	रे	स	स	—	रे	रे	स	नि	—	—
ऽ	ज	ऽ	ब	र	ऽ	क	क	ऽ	ना	ऽ	ऽ
रे	प	म	म	म	म	—	म	—	ग	रे	ग
हाँ	ऽ	ऽ	प	त	री	ऽ	क	ऽ	ल	इ	यां
—	ग	रे	स	स	—	रे	रे	स	नि	—	—
ऽ	ज	ऽ	ब	र	ऽ	क	क	ऽ	ना	ऽ	ऽ

°			×			°			×		
स	रे	—	रे	—	रे	स	नि	स	रे	म	म
पि	या	ऽ	के	ऽ	सें	ऽ	ऽ	हु	ला	ऽ	ऊँ
प	प	म	रे	—	—	—	स	नि	स	—	—
र	स	ऽ	के	ऽ	ऽ	ऽ	बि	ज	ना	ऽ	ऽ

अन्तरा

°			×			°			×		
म	रे	स	नि	—	नि	—	नि	—	नि	—	स
हाँ	ऽ	ऽ	बैं	ऽ	दी	ऽ	के	ऽ	भा	ऽ	र
रे	रे	—	रे	—	म	रे	स	—	रे	—	नि
मो	रो	ऽ	मा	ऽ	ऽ	थो	ऽ	ऽ	दू	ऽ	ऽ
स	—	—	ग	रे	स	नि	नि	—	नि	—	स
खे	ऽ	ऽ	बैं	ऽ	दी	ऽ	के	ऽ	भा	ऽ	र
रे	रे	—	—	—	रे	ग	रे	स	रे	—	नि
मो	रो	ऽ	ऽ	ऽ	मा	ऽ	थो	ऽ	दू	ऽ	ऽ
स	—	—	म	—	म	म	म	—	ग	—	रे
खे	ऽ	ऽ	मा	ऽ	हु	र	के	ऽ	भा	ऽ	ऽ
ग	—	रे	स	स	—	रे	रे	स	नि	—	—
र	ऽ	उ	ठ	त	ऽ	प	ग	ऽ	ना	ऽ	ऽ
प	प	म	म	—	म	म	म	—	ग	—	रे
पि	या	ऽ	मा	ऽ	हु	र	के	ऽ	भा	ऽ	ऽ
ग	—	रे	स	स	—	रे	रे	स	नि	—	—
र	ऽ	उ	ठ	त	ऽ	ऽ	प	ग	ना	ऽ	ऽ

°			×			°			×		
स	रे	—	रे	—	रे	स	नि	स	रे	म	—
पि	या	ऽ	के	ऽ	सें	ऽ	ऽ	हु	ला	ऊँ	ऽ
प	प	म	रे	—	—	स	नि	नि	स	—	—
र	स	ऽ	के	ऽ	ऽ	ऽ	बि	ज	ना	ऽ	ऽ

(शेष अन्तरे इसी प्रकार गाये जायेंगे)

ईसुरी की फागों को गाने के ये परम्परागत प्रकार दतिया के आस-पास प्रचलित हैं। अन्य प्रकार भी सम्भव हो सकते हैं, जो विशेष खोज-बीन किये जाने पर प्राप्त हो सकते हैं। लेद, रसिया, होरी और छन्दयाऊ फागों की तर्ज पर आधारित फागें ईसुरी ने रचीं या नहीं यह कहना कठिन है, क्योंकि इस प्रकार की फागें प्रचलित नहीं पायी जातीं और अगर होंगी भी, तो कम-से-कम लेखक की जानकारी में तो नहीं आयीं। अतः जब तक अन्य फाग-प्रकारों की खोज नहीं हो जाती, तब तक यही मानकर चलना पड़ेगा कि ईसुरी ने सिर्फ उन्हीं तर्जों को अपनी रचना का आधार बनाया है, जो उनके समय में लोकप्रिय थीं अथवा जिन्हें उन्होंने अपनी फाग-रचना के लिए उपयुक्त समझा।

—३/१०, पकौरिया महादेव, दतिया (म० प्र०)

●

११

महोबा की फाग गायकी

● स्वरलिपि— श्री गोविन्द कुमार

चौकड़िया फाग

स्थायी— कान्ह न खेलो होरी, इतनी विनय करों कर जोरी,
ऐसी कान्ह न खेलो होरी लाल……।

अन्तरा— रन बन की तुमने कर डारी, आज चुनरिया मोरी।
करहो कौन बहानो जाकें, घर सें आई तें कोरी।

स्वर-लिपि मध्यलय (दादरा) तथा कहरवा (चोगुन)

स्थायी—

ग ग – ग ग – ग ग – ग – रेसा सारे रेसा – सा रे ग
का ऽ ऽ न्ह न ऽ खे ऽ ऽ लो ऽ ऽ होऽ रीऽ अ ऽ ब ऽ
× ० × ० × २

रे सा नि प प – नि नि – सा सा – रे रेग ग ग रे रेरे सा
ऽ ऽ ऽ का ऽ ऽ न्ह न ऽ खे ऽ ऽ लो ऽऽ होऽ ऽरीऽ ला
× ० × ० × ०

– – – – – – प प – प प – प पध ध ध पप--रे रेसा
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ल वि न ऽ य क ऽ रौं ऽऽ कर ऽऽजोऽरीऽ
× ० × ० × ०

गरे रेस सा नि – – प
ऐंऽ ऽऽ सी ऽ ऽ ऽ ऽ
× ०

आलाप

प – – – – – म – – – – – ग – – – – –
आ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
× ० × ० × ०

रे – – – – – सा – – – – –
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
× ० × ०

अन्तरा

ग ग – ग ग – ग ग – ग ग – रे रे – सा सा – रे रे – सा सा –
र न ऽ ब न ऽ की ऽ ऽ तु म ऽ ने ऽ ऽ क र ऽ डा ऽ ऽ री ऽ ऽ
× ० × ० × ० × ०

तुमने कर डारी पंक्ति को दो बार और कहेंगे।

आलाप

प – – – – – म – – – – – ग – – – – – – रे – –
ए ऽ
× ० × ० × ० ×

– – – ग – – – – – – – – रे – –
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
० × ० × ०

ग – ग – ग – ग – ग – ग – ग – ग – रे – रे – सा – सा –
र न ब न की ऽ क र डा ऽ री ऽ ऐ ऽ सी ऽ र न ब न को ऽ क र
× ० × ० × ०

रे – रे – सा – – – – – – – – – – –
डा ऽ री ऽ ला ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
× ० × ०

● होटल पारस के सामने
महोबा (उ० प्र०)

ईसुरी और गंगाधर

● डॉ० राधावल्लभ शर्मा

बुन्देली लोक-कवियों में ईसुरी सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। उनका समय सम्वत् १८९८ से १९६६ तक का है। ईसुरी द्वारा पुरस्कृत चौकड़िया फाग-शैली को उनके समकालीन तथा अनेक परवर्ती फागकारों ने अपनाया है। ईसुरी के समकालीन कवियों में गंगाधर व्यास, रसिया, ख्यालीराम, मनभावन शुक्ल आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके कथ्य और शिल्प दोनों पर ईसुरी का प्रभाव है—कहीं-कहीं तो नाम की छाप हटा देने पर यह पहचान पाना कठिन हो जाता है कि फाग वस्तुतः किसकी है। परिणाम यह हुआ कि अनेक संग्रहकर्ताओं ने फागों का संग्रह करते समय अथवा गायकों ने अपनी स्मरणशक्ति के आधार पर फागों के वास्तविक रचयिता की इस समस्या को और बढ़ा दिया है। इसीलिए आज गंगाधर की कई फागें ईसुरी के नाम से तथा ईसुरी की फागें गंगाधर अथवा अन्य लोक-कवियों के नाम से चल रही हैं।

एक बात और है—जिस प्रकार 'कबीर' के नाम पर 'कबीरा' और 'तुलसी' के नाम पर कई नीतिपरक दोहे लोक-जीवन में प्रचलित हैं, उसी प्रकार ईसुरी के नाम पर भी सैकड़ों फागें प्रचलित हैं। यह कदाचित् उनके नाम की लोकप्रियता के कारण ही है।

ईसुरी के समकालीन कवियों में गंगाधर व्यास सर्वाधिक प्रतिभाशाली थे। उनका समय सम्वत् १८९९ से १९७२ तक का है। समकालीन होने के नाते दोनों में घनिष्ठ मैत्री थी। यह बात दूसरी है कि जहाँ 'ईसुरी' ने लोकगीत की एक विधा 'फाग' को अपनाया तथा उसमें उत्कृष्ट भावाभिव्यञ्जना की, वहाँ 'गंगाधर' ने फागों के साथ-साथ 'सैरों' और 'ख्यालों' की भी रचना की है। ईसुरी द्वारा पुरस्कृत अट्ठाइस मात्राओं की चौकड़िया फाग को गंगाधर ने भी अपनाया तथा चौकड़िया में दो मात्राएँ और बढ़ाकर २८+२=३० मात्राओं की खड़ी फागें बनायीं, जिन्हें चौकड़िया की भाँति ही लोकप्रियता मिली।

ईसुरी के युग में फड़बाजी का प्रचलन अधिक था। ईसुरी और गंगाधर के फाग-गायकों के अलग-अलग दल थे तथा इनमें अक्सर प्रतियोगिताएँ हुआ

करती थी। इस प्रकार प्रतियोगिताओं के विषय—नख-शिख, नायिका-भेद काव्यशास्त्र, ज्योतिष तथा लोक-जीवन से सम्बन्धित अन्य विषय हुआ करते थे। एक ही विषय पर यद्यपि दोनों लोक-कवियों ने अलग-अलग फागें कही हैं, किन्तु विषय और शिल्पगत समानता के कारण ईसुरी और गंगाधर की फागों में भेद कर पाना कठिन है। अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ही दोनों में अन्तर स्पष्ट हो पाता है। यहाँ हम दोनों ही फागकारों की एक ही रंगत की कुछ विशेष फागें प्रस्तुत कर रहे हैं, जिससे यह अन्तर स्पष्ट हो सकेगा।

नखशिख-वर्णन की दृष्टि से दोनों कवियों ने नेत्र, मुख, केश, तिल और पयोधरों का वर्णन विशेष रूप से किया है। इन वर्णनों में उपमानों का चमत्कार भी है। नेत्र और केश विषयक दोनों कवियों की एक-एक फाग प्रस्तुत है।

नेत्रों की चंचलता

● ईसुरी

नैना बारे सें ना तासे, देखत बनत तमासे।
लै-लै जात लोट घूंघट में, दै-दै जात धमा से।
जाँ खाँ झुकत रुकें ना रोकें, सूरवीर हैं साँसे।
जे वस में ना भये 'ईसुरी', स्याम लये इन गाँसे॥

● गंगाधर

नैना बारे सें ना ठाँसे, देखत बनत तमासे।
छोवा करत चलत तिरछौहें, सुखी रहें जे साँसे।
जित खाँ चलत रुकत ना रोके, दै-दै जात झमासे।
इनकी पीर गई है मारी, कैउ जनन खाँ आँसे।
'गंगाधर' कयें इन नैनन खाँ, मनमोहन ने गाँसे॥

केश

ईसुरी और गंगाधर दोनों ने नायिका के केशों का सुरुचिपूर्ण वर्णन किया है। लाड़ली राधिका के बिथुरे, अनगोहे और धुले केशों का वर्णन दोनों कवियों ने उपमा, उत्प्रेक्षा और सन्देह अलंकारों द्वारा अभिव्यंजनागत चमत्कार द्वारा प्रस्तुत किया है।

● ईसुरी

बिथरे डरे केस बिन गोये, आज लाड़ली धोये।
बुन्दा चुवत नितम्बन ऊपर, कम से गये निचोये।

पसरे परे सुमेर सिखर पर, कागपक्ष से सोये ।
मानो जलज, शुक्र, तारागन, स्यामपाट में पोये ।
'ईसुर' छबि देखी छाजे पै, चढ़ मुकमार निचोये ।।

• गंगाधर

बिथरे डरे श्यामता बोरे, आज लाड़ली छोरे ।
माखन डार मले माटी सें, पट ले पोछ निचोरे ।
डारत अतर सुगन्ध सुहागिल, कर ले ककई निनोरे ।
मनौ सपूत पूत पन्नग के, ज्यों मरकत के डोरे ।
'गंगाधर' लट-लट के ऊपर, प्रान निछावर मोरे ।।

सौन्दर्यवृद्धिकारक आभूषणों तथा अन्य उपकरणों का वर्णन भी दोनों कवियों की फागों में हुआ है। दुर, बेसर, कर्णफूल, पैजना तथा बाजूबन्द आदि आभूषणों के साथ-साथ सौन्दर्यवृद्धिकारक बूंदा, बेंदी आदि पर भी उत्कृष्ट फागों की रचना हुई है। ज्योतिष-ज्ञान से युक्त ईसुरी की एक बूंदा-विषयक फाग द्रष्टव्य है—

करिया बुंदका बूंदा तर को, तक बेंदा ऊपर को ।
सनि समेत गुरु होय रहो है, भान चन्द्र के घर को ।
देखों देत इतै सुखदेतन, मिलबो अरि सें अर को ।
देत झमाक झांक मुख झुमका, लग ना जाय नजर को ।
ईसुर दयें वृषभान नन्दनी, मन मो लओ गिरधर को ।।

गंगाधर व्यास भी ईसुरी से पीछे नहीं हैं, वे ज्योतिष के साथ काव्य-शास्त्रीय ज्ञान का समावेश करते हुए कहते हैं—

करिया बूंदा छबि सो छायो, बेंदा तरें लगायो ।
कै सनि मित्र जान कें अपनो, मिलन सुक्र सें आयो ।
कै पूरन, पूनो परमा ने, तनक अंस दरसायो ।
तम सकुचाय चंद्र के भय सें, छोटो रूप बनायो ।
'गंगाधर' मन बसो स्याम के, बिसरत ना बिसरायो ।।

रूपक, सन्देह, उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक की संसृष्टि से युक्त गंगाधर की इस फाग में ज्योतिष प्रसंग से अभिव्यक्ति में चारुता का समावेश हो गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ईसुरी और गंगाधर दोनों की फागों का प्रमुख प्रतिपाद्य शृंगार है। शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग और वियोग का

इनकी रचनाओं में मर्मस्पर्शी वर्णन हुआ है। शृंगार के अंतर्गत प्रकृति-चित्रण विशेषतः वसन्त का मनोहारी और संश्लिष्ट चित्रण दोनों की फागों में विद्यमान है। साथ ही, विभिन्न लोकोत्सवों, मेलों और त्योहारों का वर्णन भी कई फागों में है, जिनमें बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति के साकार रूप के दर्शन होते हैं।

फड़बाजी के प्रसंग में चमत्कार-प्रदर्शन का विशेष महत्त्व है। दोनों पक्षों की ओर से गूढ़ार्थपरक फागें कही जाती हैं। लता, पक्षी तथा अन्य शाब्दिक चमत्कारों वाली फागों की भी कमी इन कवियों की रचनाओं में नहीं है। हाँ, यह बात अवश्य है कि फड़बाजी से सम्बन्धित चमत्कार प्रधान फागों की रचना में गंगाधर अधिक सफल हुए हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि गंगाधर बुन्देली के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के भी ज्ञाता थे और उनका शास्त्रीय ज्ञान अधिक था।

ईसुरी की भाषा ठेठ बुन्देली है, तो गंगाधर की फागों में प्रयुक्त बुन्देली में ब्रजभाषा के शब्दों का बाहुल्य है। लोकप्रचलित विदेशी शब्दों और मुहावरों का प्रयोग भी दोनों की रचनाओं में हुआ है। एक बात अवश्य है कि भाव-व्यंजना की दृष्टि से ईसुरी की भाषा में जहाँ सरलता, सहजता और अभि-व्यक्ति की सपाट बयानी है, वहाँ गंगाधर की भाषा में शैलिक चमत्कार का बाहुल्य है। दुअंग, चौअंग, छअंग, अठंग, निरोष्ठ, अजिह्व, सिंहावलोकन, रुकन और जिला आदि चित्रकाव्य से सम्बन्धित भाषायी चमत्कार गंगाधर की रचनाओं में अधिक है। ईसुरी और गंगाधर दोनों की फागें संगीत की दृष्टि से भी उत्कृष्ट है। इनमें शास्त्रीय व लोकसंगीत दोनों के तत्त्व हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि फाग की दृष्टि से ईसुरी और गंगाधर दोनों उत्कृष्ट कवि हैं। ईसुरी ने केवल फाग विधा को अपनाया है और अपरिमित फागें कही हैं। ईसुरी को फाग के क्षेत्र में गंगाधर ने अपना आदर्श माना है, क्योंकि ईसुरी की प्रशस्ति में वे स्वयं कहते हैं—

'गंगाधर' ईसुर रसिया ने फाग कही कै जादू ।

गंगाधर के अतिरिक्त ख्यालीराम, रसिया, मनभावन आदि ईसुरी के समकालीन तथा बिहारी भट्ट जैसे समर्थ ईसुरी के परवर्ती कवियों ने फाग के क्षेत्र में ईसुरी की विलक्षण प्रतिभा को मुक्त कण्ठ से सराहा है और आज के फागकार भी कमोवेश ईसुरी द्वारा निर्धारित मार्ग पर ही चल रहे हैं—उस सीमा-रेखा को लाँघने का साहस नहीं जुटा पाये हैं।

• महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर (म० प्र०)

ईसुरी की कविता : कुछ प्रभाव

• श्री कमला प्रसाद

कुछ दिनों पहले बोलियों में लिखी गयी रचनाओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता जा। श्रेष्ठ कविता और शिष्ट संस्कृति के नाम पर पश्चिमी भाषा-पहरण का जोर था। उस दौर मे साक्षर पाठकों में बोलियों के साहित्य को लेकर ग्रन्थियां बन गयी थीं—ठीक उसी तरह जैसे शहर का नागरिक गाँव के लोगों को मूर्ख और गँवार समझता था। इस दौर में करवट बदली है। लोक-बोलियों के साहित्य की खोज-बीन हो रही है। कविताओं के संकलन छप रहे हैं। शोध ग्रन्थ तैयार हुए है तथा सर्वेक्षण द्वारा जन-जीवन में वाचिक परम्परा से चले आते गीतों तथा लोक-कथाओं के संग्रह तैयार हो रहे हैं। इतना ही नही, गाँवों में प्रचलित परम्परागत कला-शैलियों का अध्ययन हो रहा है। मूर्तिकला, चित्रकला, काष्ठ कला या संगीत आदि कलाओं की पड़ताल की जाती है। रूढ़ भाषा को लोक-भाषा की संगति मिल रही है, जिससे भाषा जीवन्त और रचनात्मक बन रही है। यह जनतंत्री संस्कारों के फैलाव का सबूत है। मुख्य बात यहाँ यह है कि यह सब काम गम्भीर और जटिल चुनौतियों से गुजरते हुए करना पड़ रहा है। रूढ़िबद्ध-कोष्ठबद्ध लोग लोक-जीवन में किसी प्रकार की गति के विरुद्ध हैं। वे या तो लोक संस्कृति के संरक्षण की बातें करते है या उन्हें इत्यलम् के भुलावे में बाँधकर व्यावसायिक रंगत के साथ उत्सव-मुखी बना रहे हैं। महाजनों की खुशियों के लिए आदिवासी कलाओं की बिक्री होती है। ताज्जुब है कि जीवन के अन्य जरूरी उपादानों से रहित, उपेक्षित, अशिक्षित, बेरोजगार आदिवासी लोगों के लिए एक साथ अछूत और महान् दोनों है। उनकी जिन्दगी अछूत है और संस्कृति पवित्र है। दरअसल इस तरह के प्रयत्न लोक-जीवन की गरीबी को पवित्रता का पर्याय बनाने में तुले हैं। इनकी कोशिश है कि गति और प्रवाह का सम्बन्ध लोक-जीवन से न रहे। उन्हें आधुनिकता की खबर न लगे। इन प्रयत्नों में वे लोग तो शामिल ही हैं जिन्हें आदेश पालने वाली प्रजा की जरूरत है, वे भी कम सहयोगी नहीं हैं, जिनका वर्ग आदेशकों का नहीं है। मध्य वर्ग तथा पिछड़ी जातियों में भी प्रथाओं,

रूढ़ियों और दूषित शिक्षा-पद्धति के प्रभाव से वे ही संस्कार काम करते हैं, जो विवेक को आलोचनात्मक नहीं बनने देते।

तो हाँ, प्रसंग ईसुरी का है। ईसुरी ने "फागें" लिखी हैं। होली के पूर्व और बाद के दिनों तक उत्तर भारत के काफी हिस्सों में ये फागें गायी जाती हैं। यह मौसम खेती के पकने का है। वसन्त ऋतु का आगमन हो चुका होता है। इस समय किसान की खुशी फसलों से जुड़ती है तथा ऋतु भी उसमें सहयोग करती है। वर्ष भर श्रम से जूझता किसान कुछ हल्का अनुभव करता है। वह इस हल्केपन में कुछ झूम भी लेना चाहता है। इस तरह होली के समय आदमी का मिजाज रोमाण्टिक होता रहा हो तो इसके आर्थिक, सामाजिक कारण ही थे। फागों के जरिये आदमी की खुशी का इजहार सदियों से होता आया है। इन दिनों स्त्री-पुरुष और जाति-पाँति के बन्धन भी शिथिल पड़ जाते रहे हैं। इसमें स्वतंत्र अनुभवों के लिए किञ्चित् अवसर मिल जाते थे—रूढ़िबद्धता के बीच। ईसुरी ने इसीलिए ऐसे लोक-काव्य रूप को चुना, जिसमें वह अपेक्षाकृत उन्मुक्त हो सके। वह अपनी इच्छा-अनिच्छा को उँड़ेल सके। हाड़-माँस का यह कवि चाहता था, कि जीवन की यथार्थ बातें करे। वह प्रेमिका को प्रेमिका कहे तथा गरीबी को गरीबी। वह रहस्य का चोंगा न पहने। वह ईश्वर को भी लोक-जीवन के भले के लिए अनुभव करे। ईसुरी ने यही किया। इससे इस कवि की चित्तवृत्ति का पता चलता है।

ईसुरी का रचना-काल रीति-काल के अंतिम दिनों से जुड़ा हुआ है। इस काल के रीतिबद्ध कवियों की मनोवृत्ति क्या थी, इस बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं, "श्रृंगार के वर्णन को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था। इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रयदाताओं की रुचि थी, जिनके लिये कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।" (हि०सा० का इति०, पृ० २०८) आश्रयदाताओं की रुचि को पकड़ने में कवियों की सहज वृत्ति का स्फुरण कैसे होता, इसीलिए हाव-भाव भंगिमाएँ और अलंकारों के प्रयोग मात्र से संतुष्ट होना पड़ा। सहज-प्रेम का अनुभव किये बगैर कविता का अश्लील होना लाजिमी ही था। वहाँ स्त्री भोग्य वस्तु बन गयी थी। नख-शिख वर्णन जीवनहीन व्यापार हो गया था। नायिकाभेदों के उदाहरण जैसे नायिकाएँ "कामकेलि" के लिए ही होती थीं। रूपहीन स्त्रियों को जीने का हक नहीं था। ग्रामवधुएँ अस्तित्वहीन थीं। ईसुरी ने किसी आश्रयदाता की रुचि का पल्ला नहीं पकड़ा। उसने श्रृङ्गार का वर्णन किया है तो अपनी प्रेमिका "रजऊ" के प्रति समर्पण से उपजी कविताओं के माध्यम

से । इनके अलावा प्रकाशित-संकलित फागों के अनुसार ईसुरी ने भक्ति, धर्म तथा जनता की व्यथा पर केन्द्रित फागें भी लिखी हैं। उसने राम-कृष्ण को आराध्य माना। इसी आराधना से कवि की जीवन-दृष्टि की पहचान होती है। वह इस लोक के सुखों को अधिक-से-अधिक तरजीह देता है।

उसमें व्यक्तिवादी अहं नहीं था। कविता को भी सरस्वती की कृपा मान कर करता था। इसीलिए सरस्वती से कहता है कि शत्रुओं की विजय-पताकाएँ छीनकर उसे दे दे। वह कविता को धन, सम्पत्ति और खजाना कमाने के काम में नहीं लाता था। कविता उसके भाव-संसार की अभिव्यक्ति थी। उसमें वह अपना सब-कुछ सुरक्षित पाता था। उसे सामाजिक ढाँचे की कमजोरियाँ ज्ञात थीं—तुलसी की तरह कि "भाई बन्द और कुटुम कबीला, जे सब स्वारथ जानें"। उसे पता था कि जनता का रखवाला कोई नहीं। उसने राज्याश्रय की उसी तरह उपेक्षा की जैसे तुलसी ने। वह भक्त कवियों की ही तरह "मन तें काय भजत ना रामैं" (ऐसी मूढ़ता या मन की) अर्थात् मन को विकारों के लिए उसने भी दोषी पाया। ऐसा विकारग्रस्त मन कैसे बना, इस बात की जानकारी उस युग में किसी को न थी, इसलिए ईसुरी को भी नहीं थी। लोक-जीवन में ईश्वर का भरोसा आदमी को व्याधियों के बीच खुशी-खुशी जीने का साहस देता है। यह उनका अस्त्र है। संसार की स्वार्थपूर्ण भागदौड़ को छोड़ संतोष का जीवन जीते भले मानुष बने रहना – यह जीवन-पद्धति है। ईश्वर वहाँ साम्प्रदायिक व्यापार के लिए नहीं, जीवन-दृष्टि का नियामक और पोषक होता है। ईसुरी ने भजन के फागों में राम या कृष्ण के लिए जो समर्पण भाव व्यक्त किया है—वह इसी तरह का है। उसे पक्का भरोसा है कि "नइयाँ कोऊ निबाउन हारो, तुम बिन स्याम हमारो"। ईसुरी की मनोवृत्ति या तो भक्त कवियों से मिलती है या रीति-काल के रीतिमुक्त कवि घनानन्द, रसखान, बोधा, ठाकुर आदि से। रसखान की ही तरह—'मानुष हौं तो वही रसखान, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन' ईसुरी चाहते थे—'रे मन बिन्द्रावन में रइए। किसन राधका कइए!'

ईसुरी ने प्रबन्ध-काव्य नहीं लिखा। उन्होंने फागों के मुक्तक ही लिखे, पर उनके मानस में जीवन का प्रबन्ध था—जो 'भक्ति और प्रेम' की अनूठी सरिता में डूबा था। उसने राम-कथा या कृष्ण-लीला पर फागें लिखीं, जिनमें सूर के पदों की तरह एकतानता है। कवितावली या गीतावली की तरह की 'मुक्तक राशि' में कहीं-न-कहीं आराध्य के व्यापक जीवन की झाँकियाँ मिल जाती हैं। कथा-सूत्रों की चिन्ता कवि ने नहीं की, उसने उन प्रसंगों को चुना, जो मन

को रमाते हैं। ईसुरी प्रेम में कोई जगत्-बाधा नहीं चाहते। यह बात उन्होंने अपने प्रेम के लिए कही तथा कृष्ण के लिए भी। कृष्ण के लिए—"कै बो कान राधका जू को! का बिगरत काऊ को।" तथा अपने लिये—"जो जिउ रजउ रजउ के लानें। का काऊ सों कानें"। कृष्ण-राधा के बहाने रीति-काल में परकीया प्रेम को महत्त्व दिया गया। ईसुरी की रजऊ भी परकीया है। कई फागों में उन्होंने इसे दुर्भाग्यपूर्ण माना है कि जिसका-जिससे प्रेम होता है विवाह उसका उससे नहीं हो पाता। वास्तव में यह उस काल की सामाजिक सीमा है, जिसे कवि पहचान लेता है। ईसुरी ने आंगिक सौष्ठव का चित्रण भी किया है। कई पदों में कामोत्तेजक दृश्य हैं। वहाँ मर्यादा की सीमाएँ लाँघी गयी हैं। प्रेम की सहज समतुल्यता के बजाय कवि केलि-क्रीड़ाओं में व्यस्त होता है। वह तरह-तरह से उरोजों, बाँके नेत्रों, गदराये यौवन की भोगपरक महिमा बखानता है। वह जाँघों के भूगोल को रेखांकित करना नहीं भूलता। उसमें ईर्ष्या-द्वेष भी है परकीया के परप्रेमियों से। वह उन्मुक्त यौन सुख को ही प्रेम की संज्ञा दे डालता है। यह रीतिकालीन दरबारी मानस का प्रभाव है।

ईसुरी की नायिकाएँ धोबिन, कहारिन, नाईन आदि भी हैं। उनकी केलि-लीलाएँ चहारदीवारियों में कैद नहीं हैं,पर उस काल के अश्लीलता की हद तक कविता को ले जाने वाले कवियों के प्रभाव से कवि बचता नहीं। इससे यह पता चलता है कि उस समय नारी के प्रति यह दृष्टिकोण कितना आम हो गया था। उसकी आजादी का अपहरण इससे ज्यादा कभी नहीं हुआ। सामन्ती संस्कृति का प्रभाव गरीब जनता तक फैला हुआ था जिससे ईसुरी भी नहीं बच सके।

ईसुरी की फागों का एक पक्ष लोक-जीवन की अन्य स्थितियों की ओर भी है। वह अकाल का मार्मिक चित्रण करता है—"आसौं लै गओ साल करौंटा। करो खाव सब खौंटा। गोऊँ-पिसीं खों गिरुआ लग गओ, मउअन लग गओ लौंका। ककना दौरी सब धर खाये, रै गओ फकत अनौटा। कहत ईसुरी बाँदे रइयो, जबर गाँठ को घौंटा॥" कवि इस संकट के समय साहस बनाये रखने की जनता से अपील करता है। वह वृक्षों के काटने वालों का विरोध करता है। नीम के पेड़ की सदा हरियाली पर रीझता है। उसने रेल-गाड़ी के फायदों पर भी लिखा है—"जाँ चाओ ताँ जाओ 'ईसुरी' पैसा होय अकेलें।"

ईसुरी की कविताएँ पढ़ने से जनता की दुःख-तकलीफ, भक्ति, धार्मिक भावना, स्त्री के प्रति सामाजिक आम दृष्टि, जीव, पाप-पुण्य, जीवन-मृत्यु,

पुनर्जन्म, क्षणभंगुरता और परलोक विश्वास, निस्पृह लोक-व्यवहार का पता चलता है। चित्तवृत्तियाँ या तो काम-सुख के लिए भटक रही हैं या धार्मिक विश्वासों में पगी हैं। धार्मिक विश्वास के पीछे एक आस्था है, जो संकट मोचन है। भौतिक तकलीफों की पहचान कवि को है, उसके भौतिक कारणों को भी थोड़ी बहुत जानता है। उनको दूर करने के लिए भौतिक प्रतिवादी स्वर का अभाव है। ईसुरी की कविता जनता को ललकारती नही है, पर जन-स्थिति का बोध कराती है। कवि ने लोक-भाषा, मुहावरे, लोकोक्तियाँ और मैथोलाजी को लोक रंगत में ही प्रस्तुत किया है। कहीं-कहीं ऐसी अनूठी विदग्धता मिलती है कि उसके सामने बड़े-बड़े कवि लजा सकते हैं। अब देखिये गाँव के लोगों को आशंका है कि कृष्ण यशोदानन्द के पुत्र नहीं हैं। कवि का एक पात्र पूछता है कि कृष्ण काले क्यों हैं जबकि नन्द, यशोदा, बलराम गोरे हैं—काले का संयोग कहाँ से आया ? इस व्यंग्य की कितनी महीन परतें हैं—इसे समझने की जरूरत है। सारी कविताओं में अनूठे और ताजे उपमान भरे हैं—जो जिन्दगी की वास्तविकता से आये हैं। वे उस काल की ज्ञान-भाषा के नमूने भी हैं। इस शब्दावली से हम कवि की कालांकित सीमाएँ जान सकते हैं। मैं यहाँ यह कहना चाहता हूँ कि ईसुरी की कविताओं का पुनः वैज्ञानिक ढङ्ग से सम्पादन और अनुसंधान किया जाना चाहिए।

ईसुरी की फागें : एक संकलन

अप्रकाशित और दुर्लभ फागों का संकलन

●

[इस संकलन में उन्हीं फागों को स्थान मिला है, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हैं। फागों का पाठ-निर्धारण नहीं हुआ है, इसलिए उन्हें यथावत् परन्तु कुछ सुधार के साथ यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इस कारण विद्वज्जन इस संकलन को केवल एक पाठ के रूप में ग्रहण करें। संकलन की प्रामाणिकता इस बात में है कि संकलनकर्ता स्व० कुंवर दुर्गसिंह ने १८३१ से १८४१ ई० तक बुन्देली फागों का संग्रह किया था और उसी से ये फागें ली गयी हैं। दूसरे संकलनकर्ता श्री इलाशंकर गुहा ने उस धौर्रा ग्राम के निवासियों से फागें ली हैं, जहाँ ईसुरी ने अपने जीवन का कीमती समय गुजारा था। एक विशेष बात यह है कि इस संकलन की सभी फागें लोकमुख में जीवित रही हैं। इस वजह से यह छोटा, किन्तु दुर्लभ संकलन विद्वानों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा और पाठकों के लिए रुचिकर। फागों के संग्रह की यह परम्परा प्रवहमान बनी रहेगी, तो एक-न-एक दिन ईसुरी का पूरा कृतित्व प्रकाश में आ जायेगा। —सम्पादक]

संकलन—१

● स्व० कुंवर दुर्गसिंह

अपनी कृस्न जीभ सें चाटी, वृन्दाबन की माटी।
दुरलभ भई मिलो ना उनखाँ देई देवतन डाटी।
मिल ना सकी अनेकन हारे पावे की परपाटी।
पायो स्वाद काहु ने नइयाँ मीठी है के खाटी।
वाही रज वृजबासिन 'ईसुर' हिसदारी में बाँटी ॥१॥

आली मनमोहन के मारें, जमुना गैल बिसारें।
जब देखो जब खड़ो कुंज में गहें कदम की डारें।
जो कोउ भूल जात है रस्ता बरबस आन बिगारें।
जादा हँसी नहीं काऊ सें जा ना रीत हमारें।
'ईसुर' कौन चाल अब चलिये जे तो पूरो पारें ॥२॥

आंखें बरका कें कड़ जातीं, ओर उतै मतराती।
जेसी हाल दिनन में हो गईं ऐसी आगें नातीं।
हमरी ओर कसकती नइयाँ पथरा दिल औ छाती।
को जानै काहे कौ हिरदो कपटन सोउ दिखातीं।
'ईसुर' स्याम तनक जीवन पे काहे कों भरमातीं ॥३॥

ओइ घर जाव मुरलियाबारे, जहाँ रात रये प्यारे।
हेरें वाट मुनइयाँ बैठी करें नैन कजरारे।
अब तो कौनउँ काम तुमारो नइयाँ भवन हमारे।
'ईसुर' कृष्ण नन्द के छोना तुम छलिया वृजबारे ॥४॥

बारे सें जे नैन नसानें, बरबस अनुआँ ठानें।
जिनखाँ देख लेत नजरन सें चलतन गैल निबानें।
कर लेतीं तन मन धन अपनों करै बिरह की खानें।
कैसें होत निबाह 'ईसुरी' एक पुरा में रानें ॥५॥

ऐसो मजादार तन पाकें, रातीं बता बताकें।
बड़े भाग सें होत मुनइयाँ मानस जनम मसाकें।
तनक वस्त को लोभ न करियो साहूकार घर आकें।
मानस भये भये ना 'ईसुर' बिरथाँ भरम गमाकें ॥६॥

ऐसी रजो मातवर मोरी, वन कें बारी-भोरी।
वड़कें कबौं बोलतीं नइयाँ हँसती वनकें भोरी।
नागर नजर उजागर का कओ चेत लेत उन चोरी।
भर कें निगा काहुकी कोदी कबौं न अँखियाँ जोरीं।
'ईसुर' दया बिचार भरे में बीच हजारन टोरी ॥७॥

कोकी हुओ हमारी होकें, रजो न रइयो धोकें।
वात न मानी तौ समझावी नातर हाँतन ठोकें।
जो बतकाव और पै करहो धरना देंव सँगोकें।
चार जनें की आँखें हेरो हम काये न रोकें।
'ईसुर' कात वैठ न रइयो प्रान पराये खोकें ॥८॥

कोउ-कोउ गहो नन्द के लालन, हुकम दओ वृजबालन।
जारी हुकम करो राधे को छीन लेव बनमालन।

जान न पाय नन्द लाड़लो मारो गुलचा गालन।
बहुत दिना इननें छल कीनो आज परे त्रिया जालन।
गह लीनो वृजराज 'ईसुरी' जे त्रिलोक के पालन ॥९॥

खेलें फाग राधिका प्यारी, वृज खोरन गिरधारी।
इन भर बाहु बाँस को टारी उन मारी पिचकारी।
इननें छीनी लकुट मुरलिया उन छीना सिर सारी।
वे तो आँय नन्द के लाला जे वृषभान दुलारी।
अपुन बनी नटनागर 'ईसुर' उनें बनाओ नारी ॥१०॥

गुदनारी गोंद गुदना धीरें, हमसें ना सईं जायें पीरें।
लगती सूजें बदन मोरे में भुजा जात बाजू चीरें।
पकरत बाँह हमें डर लागत ननद आन बैठी नीरें।
समझा देव तनक हंस-हँस कें जुरी सखिन की भीरें।
कात 'ईसुरी' गोरे बदन पै लिखीं अजूबा तसवीरें ॥११॥

गोदत हमें न होवे पीरा, हाँत चले सो धीरा।
बना देव सुन्दर रुच-रुच कें नग-नग मोर पपीरा।
जिनें देख कें खुस हो जावें वे ननदी के बीरा।
आहें सखी पुरा पाले कीं जुरे भीत-सी भीरा।
'ईसुर' देव गुदाई मन की भर-भर झोरन हीरा ॥१२॥

चोरी गइ बीन बिहारी की, जसुदा के लाल अनारी की।
जामिन अमल जुगल के भीतर आवन भइ राधा प्यारी की।
नूपुर सब्द सनाके खिच रये छिड़िया चड़त अटारी की।
बड़ी मुलाम सेज फूलन की लग गई नींद मुरारा की।
कात 'ईसुरी' घोरा पै सें उठा लई बनबारी की ॥१३॥

चन्दा पै ब्याल झूम आये, कर बार बाल नें लुरकाये।
लहरें लेत पवन झोंकन सें दोउ भुजन भुजंग फिरें धाये।
अतर फुलेल सुहागिल डारें लै ककई करन सें सुरझाये।
बड़े मुलाम केस लमछारे सो कबियन ने गुन गाये।
कात 'ईसुरी' इन केसन पै मोहन प्रान फिरें छाये ॥१४॥

छूटा जी लयें जात गरे कौ, दुर की हलन तरे कौ।
हरी पोत चुभ रई तुमारें सोभा बदन भरे कौ।

गैल चलत में हमखां लागो अनुआं बिना करे को ।
'ईसुर' फोरा परो वदन में नाहक बिना जरे को ॥१५॥

छूटा पैरें तीन तरां के, भौजी संग हरा के ।
इक छुटिया रेशम को गंडा बिच-बिच दीने ताके ।
डरबाये सोने के गुरिया मोती संग हरा के ।
'ईसुर' गरो-गरो लैवे खां गोल वंद गजरा के ॥१६॥

जब सें भइ नैनन में पीरें, जात करेजें चीरें ।
भैंसन कैसी करी चाकरी खबा-खबा रस खीरें ।
जो कोउ बैठे अदब दूर सें हिरक कें आबै नीरें ।
आंख कटीली बानी नौनी सबरे बोलें धीरें ।
'ईसुर' पैर गरे में लैबी होती रजो जंजीरें ॥१७॥

जल खां कालिन्दी तट गई री, लैकें गागर नई री ।
जान अकेलां छली छैल ने सैन सखन खां दई री ।
एरी सखी लाल तेरे नें आज लाज लै लई री ।
'ईसुर' कात रटत अब हर-हर येन अंग मोरई री ॥१८॥

जादू सौ कर गई हेरन में, दुरबाली दृग फेरन में ।
जो भर तेज-तेज चितवन में सो नइयां समसेरन में ।
उड़त-फिरत जैसें मन पंछी गिरत बाज की फेरन में ।
जब तक मिलत गैल खोरन में तिरछी नजर तोरन में ।
कात 'ईसुरी' सुनलो प्यारी तनक सैन की टेरन में ॥१९॥

जिनको बजत हुकुम को बाजा, कान्ह रीत में आजा ।
जानत हो वृषभान लाड़ली जिनको सकल समाजा ।
जाकें कैवी कंसराज सें रोके सें गम खाजा ।
बिगरी नइं अबै लौ तुमसें हमखों आबै लाजा ।
चौरासी ब्रज कोस 'ईसुरी' जहां राधिका राजा ॥२०॥

जियरा लओ दाउनी दैकें, हँस लाला कै-कै कें ।
तो रइ स्याम घनन के ऊपर बिजली कैसीं फैंकें ।
भाल गाल कों मढ कें आई भोंह भावनी गैकें ।
गरदन गह कें गहन गाल पै छैल छबीलो छैकें ।
आसिक भये 'ईसुरी' आवत भौजी के घर जैंकें ॥२१॥

जीमें देखत रइये तुमखां, निकट बसालो हमखां ।
परे न बीच रहै जीते जो धन्य हमारी गम खां ।
जो है अंत दुआरो देरी गुआ चाह भई सम खां ।
काने परत बात बहुन सों समझइये का कम खां ।
नेहा निभत 'ईसुरी' जोपै जाने जोउ मरम खां ॥२२॥

जो भई रजो उमइ तरवारें, नये भये नैन निहारें ।
निकरन लगी सिपाहन संगै खेलन लगी सिकारें ।
कर-कर काट किनारो जातीं सूरन के सिमारें ।
ठाड़ी हतीं पौंर के भीतर सहजें अपने दुआरें ।
कात 'ईसुरी' बरके रइयो जा है नार उतारें ॥२३॥

तरसें दोउ नैन मन मेरा, मुख देखन खां तेरा ।
जौलौ जीको काम सटो ना दैंय रात है घेरा ।
हो गओ काम छूट गईं बातें फिर ना इत खां हेरा ।
हमें बिदेकें अपुन चले गये जा दई राम अबेरा ।
राम नगर में परे 'ईसुरी' सुंदरिया का डेरा ॥२४॥

तुमखां बिध ने नेक बनाओ, जनम साव घर पाओ ।
बाधा हरन धन्य वह पंडित राधा नाम धराओ ।
धन वह धाम धन्य वह नगरी जिनके बीच बसाओ ।
धन वह पिता धन्य वह माता जोन घरी जब जाओ ।
गुन अरु रूप 'ईसुरी' बरनो नाम तिहारो धियाओ ॥२५॥

तोरे मधुर पैजना बाजें, गोरे पगन बिराजें ।
नित उठ प्रात जात है जल्दो आई तला सें माजें ।
लुरक रहे मुरवन के नीचे छोड़त कड़ी अबाजें ।
जे सुर भरे हिये के भीतर मन के बीचें छाजें ।
'ईसुर' परन चहत का हम पै भादों कैसो गाजें ॥२६॥

तन सें एंचत काये कँदेला, हर हर दारें बेला ।
कछू उड़ें कछु आप उड़ावै कछु जुबनन को ठेला ।
चलिये मुलाखात जो करिये कां है ठौर अकेला ।
बे पैचान अजाने हो गई गैल घाट को हेला ।
'ईसुर' कौन गांव सें आई करन सारदा मेला ॥२७॥

दर्जी रेजा सींदे मनकी हमें हरी साटन को।
ढीलो गाड़ो होन न पावै करले नाप बदन को।
ऐसो सिमें रहै रुर जामें सिकम जोड़ जोबन को।
रहें झूमका परें रेसमी खासो रूप जनन को।
'ईसुर' लेव सिमाई मन की टोटी नईं दामन को ॥२८॥

दिल रहो दावनी मे फंस कें, मुख फेरो नांय तनक हंसकें।
झंझरीदार खुली अलपुतरी पटियन में रूप रई लसकें।
दोई भौंह दाब कें बैठी कानन लों खेंचें कसकें।
'ईसुर' प्रान कौन को हरतीं राधा के माथे बसकें ॥२९॥

दिन भर देबो करे दिखाई, जामें मन भर जाई।
लागी रहो पोर चौखट सें समझें रहो अबाई।
इन नैनन भर तुमें न देखें हमें न आवै राई।
'ईसुर' चाय जाय झक मारो काउ की कौन चलाई ॥३०॥

देतीं पैजनियां पै ठनकें, अबै आई नईं बनकें।
हीरा रवा कड़ारन कड़रे टोकी ठीक ठसन कें।
पतरे पांव कुसादा हो गये एड़न पै हो सरकें।
चलन हलन ककरा की 'ईसुर' लगी करेजें हनकें ॥३१॥

नैना प्यारी मारत जावै, पानी भरवे आवै।
चलती चाल उतावल जलदी दोउ जोर दिखावै।
घूंघट के पट भीतर ढाकें चंचल दृग दरसावै।
घायल करत नजर के मिलतन मुख सें कछू न कावै।
'ईसुर' इनके बालम बारे तासें अदा बतावै ॥३२॥

नैना परदेसी सें लग कें, भये बरबाद बिगरकें।
नैना मोरे सूर सिपाही कबउं ना हारे लरकें।
जे नैना बारे सें पाले काजर रेखें भरकें।
'ईसुर' भींज गई नई सारी खोवन अँसुआ ढरकें ॥३३॥

नैना ना मारो लग जैहैं, मरम पार हो जैहैं।
बखतर झिलम कहा कर लैहैं ढाल पार कर जैहैं।

ओषद मूर एक ना लगहै बैद गुनी का कैहैं।
कात 'ईसुरी' सुनलो प्यारी दरस दवाई देहैं ॥३४॥

प्यारी पैजनियां ठनकारें, जीरा लेत निकारें।
सहजइ निगत फिरत आंगन में झनक परत है द्वारें।
गुघर गुनार रचे रुच-रुच कें दौरी धरी रवारें।
गांठें छुवत जात चलतन में सुंदर ककरा डारें।
'ईसुर' स्याम सुरत के मारें खा गये प्रान दरारें ॥३५॥

प्रानन हरत पान पियराई, रजौ के मो पै आई।
कै घूंघट के रहे छांयरे धूप परन ना पाई।
कै तो तबक दियें सोने के कै केसर की खाई।
ईसुर छटा भोर के पारें उवत भान पै छाई ॥३६॥

पकरे गोपिन के मनभावन, लागी नार बनावन।
छीन लई बनमाल मुरलिया, सारी सीस उढ़ावन।
सकल अभूषन सजे राधिका कटि लँहगा पहरावन।
नारी भेष बना कें 'ईसुर' फगुआ लगी मगावन ॥३७॥

पिय लैदो हमें हरियल सारी, पलका पै मचल रइ है प्यारी।
सूत महीन झीन न होवे बड़ी मुलाम तरज बारी।
छोरन मोर पपीरा राजें जरद कोर रंग जरतारी।
बीचन बीच बेल-बूटन सें भरी होय जू फुलवारी।
कात 'ईसुरी' सुनलो प्यारी भोर मंगा दैंव सुकमारी ॥३८॥

बांदत गली छैल के छल्ले, नजर नाइं खां कल्ले।
लयें बृजचंद फंद फांसी के प्रान हरन के पल्ले।
जुलफें जुलम हलाल करन कों आन कंदन पै हल्ले।
बृज बनितन को करें मुनैयां भरे बहुत से गल्ले।
'ईसुर' बार पार करबे खां चक्र वान से चल्ले ॥३९॥

बिछुरी सारस कैसी जोरी, रजौ हमारी तोरी।
संगै संग रहे निसबासर गरें लिपटतीं सोरी।
सो हो गई सपने की बातें अब हंस बोलै कोरी।
कछू दिनन को टिया अबादो हमें बता दो गोरी।
जबलों लागी रहै 'ईसुरी' आसा जी की मोरी ॥४०॥

बूंदा अजब आड़ के तर को, मजा देत दिलबर को।
दिपत दिमंक सरूप ऊबदे रूप भाल के भर को।
प्रभा हरन के काज भजे गुरु चोर चन्द्र के घर को।
बेंदा साज सिंगार आब है भान राज अवसर को।
खाये रात अफीम 'ईसुरी' नसा न जात नजर को ।।४१।।

बूंदा तरें दओ भौजाई, ऊपर आड़ लगाई।
भौंहन के दुबचरें प्यारी बेंदी एक जमाई।
तीसें चलकें तनक फेर सें सेंदुर सींक सुहाई।
दीनी आड़ काड़ सें बड़कें भाल बिंदुलिया भाई।
तेइ पै 'ईसुर' घूंघट घालो प्रानन हरन चढ़ाई ।।४२।।

बुन्दी परन गाल पै तिल की हरन कान के दिल की।
भई अंभोज नुनाई आनन ई आनन उज्जल की।
कारी कला बधर धर ऊपर कालिन्दी के जल की।
ऐसो लागत स्याम नगीना छिरै देत है मिलकी।
'ईसुर' छिरी चन्द के ऊपर सालिगराम सकल की ।।४१।।

बेरो बन आओ रंगरेजा, मदन भूप ने भेजा।
मन में बिधे बसंती झोंका रंग गओ कमल करेजा।
बन भओ कुंज बगीचा पीरे पीरे पान बरेजा।
सुखनों दओ सौत कुबजा खाँ दुख सब मैंइ अँगेजा।
कहत 'ईसुरी, बिरहिन व्याकुल बिन बालम की सेजा ।।४४।।

बेंदा सीस राधिका दीनों, भौंहन बीच नबीनो।
उदयाचल सें मानो सूरज उदै प्रात ही कीनो।
देखत लुप्त होत तारागन तेज चन्द्र को छीनो।
'ईसुर' ऐसी सजन साजकें बस मोहन कर लीनो ।।४५।।

बेंयाँ नीकी लगे बरन की, प्यारी प्रान हरन की।
दोरीं धरी रवार कलस पै गुटियाँ तरन-तरन की।
सुगर सुनार बनाये रुच-रुच साँचू ढरन-ढरन की।
'ईसुर' छबि सें छुरी-सी छूटें टूटत घींच नरन की ।।४६।।

बृज में कौन पुरा तुम रातीं, हमखाँ नहीं बतातीं।
हिल-मिल के जमुना जू चलिये जहाँ सखी सब आतीं।

नंद गाँव में भवन हमारो हम घर घर फिर जाती।
अब पहिचान भई जा 'ईसुर' तुम मोय जी से चातीं ।।४७।।

भीजी फिरें राधिका रंग में, मनमोहन के संग में।
एकें सखी झूम झुक जावें एके छक रई भंग में।
भारी भीर परी सखियन की जसुदा जू के अंग में।
उड़त अबीर लाल भये बादर रंग भर गये रग-रग में।
'ईसुर' फाग मची गोकुल में रिपट परे मग-मग में ।।४८।।

मन भर देतीं मीठी बातन, कछू लगे ना कातन।
भई न भली भीत दिन हो गये एकै जागा रातन।
तुमपै दान दओ न जैहै लोभन अपने हातन।
'ईसुर' संग सूम को तजकें चलो जाँचिये दातन ।।४९।।

मन बस गइ चलन कछोटा की, लटकन दइ काँठ लपोटा की।
जांगन के ऊपर मिल बैठी जरद किनारी गोटा की।
येसें बनी नवल नटनागर जैसे बनन अँगोटा की।
गोरो बदन झलक कड़ आवै चोट लगै पंचोटा की।
कहत 'ईसुरी' कही मान जा गैल न जा नंदढोटा की ।।५०।।

मन की कौन पराई जानें, काये सें लबरी मानें।
आँगें रजो बीच में दये ते तुमने कृपानिदानें।
गंगाजली सीस के ऊपर सालिगराम दिखाने।
घटी करे तो सबके घट की पारब्रह्म पैचानें।
मोरो तोरो लगो मामलो 'ईसुर' ईखाँ छानें ।।५१।।

मोरी कर डारी जा धारा, नैनन मार नजारा।
देखी दरस दवा ना दीनी दरद न नेक निवारा।
तुम सें हाल कहत में हो गओ छाती बीच दरारा।
ऊसें जियै नहीं जो जोरा अब इक मंत्र बिचारा।
'ईसुर' तुम पै लेनें जाकें तिरबेनी अर आरा ।।५२।।

मोरे नैनन सें न टरतीं, तुमई नजर में भरतीं।
हम देखत ते अपने घर हो तुम तो अपने घर तीं।
हमतो तुमै लगे बिसरे से तुम न हमें बिसरतीं।

हम तो चरचा करें तुमारी तुम चरचा न करतीं ।
'ईसुर' सरग थिगरिया देती चलतीं नइयां धरती ॥५३॥

रजुआ झूना पेर खड़ी है, भौंह कमान चड़ी है ।
पीरो झूंना लाल किनारी सरदई सोक फड़ी है ।
जबसें लगी चोट चितवनकी तन फ न चैन पड़ी है ।
कात 'ईसुरो' झूनावारी जा जी खान अड़ी है ॥५४॥

रजुआ बदल जात भई के कें, ममता मोह फँसैकें ।
हम खाँ जांच ओरखाँ जांचो मजा न जानो लैकें ।
का कहिये बेधरमन निकरीं आसा की जुल दैकें ।
जेसी कही करी न तैसी भई करेजें खैंकें ।
'ईसुर' घाव लगो छाती में बैठे रये हम सैकें ॥५५॥

रजुआ नैन तुमारे बांके रहैं न घूंघट डाके ।
देखत छैल तकत दोरे हो वादें रावैं नाके ।
जी जैवे में बाकी नइयां दै दै जात छमाके ।
इनसें मेर भूल न करियो नांतर करियो फाँके ।
ईसुर कहैं रजौ सें बरको नइतर करहै ठाँके ॥६६॥

राधा स्यामलिया खाँ घेरें, होरी होय सबेरें ।
एकें लियें फूल के गजरा एकें करखा जोरें ।
उड़त गुलाल लाल भये बादर नंद बबा के दोरें ।
एकें सखी अतर लयें ठाड़ी एकें केसर घोरें ।
'ईसुर' धूम धमारन माची वृज गलियन की खोरें ॥५७॥

राधा खड़ीं नंद के द्वारें, भूषन सकल समारें ।
देखत आज तुमें मनमोहन ऐसे बचन विचारें ।
करें देत रनबन के हरवा पिचकारिन के मारें ।
भई सुरंग रंग मे ईसुर राधा संग वृज नारें ॥५८॥

राधा अलबेली को आनन, तकै नन्द को कानन ।
राखें रात चकोर चित्त में ज्यों चंदा की आनन ।
हँसी करन रस बस करबे खाँ मानो रस की खानन ।
भारत सो पारत हेरन में पारथ कैसे बानन ।
'ईसुर' कात स्याम नइँ छोड़त जबसे लागे जानन ॥५९॥

रोजउं मुस्वया कें कड़ जातीं, हमसें कछू न कातीं ।
जा ना जान परत है दिल की काहे खाँ सरमातीं ।
जब कब मिलीं गैल खोरन में कछु कान सो चातीं ।
ना जानें काहे को हिरदो कपटन सोउ दिखातीं ।
'ईसुर' कबै कौन दिन हुहै जबै लगाबी छाती ॥६०॥

रंग डारो न राधा अलकन में, परजैहे मुकुट की झलकन में ।
उड़त गुलाल लाल भये बादर परत आँख की पलकन में ।
पकर पकर राधे मोहन खाँ मलत अबीर कपोलन में ।
खेलत फाग परसपर 'ईसुर' राधा मोहन ललकन में ॥६१॥

सारी चोरबोर कर डारी, कर डारी गिरधारी ।
गिरधारी पकरन के काजें जुर आईं वृजनारी ।
नारी भेष करो मोहन को तन पहराई सारी ।
सारी पैर नार भये मोहन नाचें दै-दै तारी ।
तारी लगा ग्वाल सब हँस रये 'ईसुर' कह बलहारी ॥६२॥

साँकर करनफूल की लटकें, दोउ गालन पै झटकें ।
कबहूँ हाल भुजन को लेतीं छूतीं गाल झपट कें ।
कबहूँ एकें एक रात हैं कभउँ होंय दो फटकें ।
कबहूँ होंय कान को कुंडल कबहूँ जाँय पलटकें ।
'ईसुर' डुलें गरे लैबे खाँ साँप काकरें खटकें ॥६३॥

सुख की देन राधिका रानी, मोरे दृगन समानी ।
प्रातकाल छबि पाई नई है उन झाँकी लइ जानी ।
अरुन नैन अंभोज करें दोउ उठ आई अलसानी ।
जा जमुहाय नुनाई ल्याई तेइ पै जे ऐंड़ानी ।
भाग 'ईसुरी' मिली भोर में सापरतीत भुमानी ॥६४॥

सुन्दर सेत सरद को चन्दा, रास रचो गोविन्दा ।
सेत उड़ाई सेत बिछाई सेत चाँदनी बन्दा ।
सेते कली खिली-सी दमकै अली करें आनन्दा ।
जेबर सेत-सेत पोसाकें सेत सुमन को फन्दा ।
'ईसुर' सेत सुपेती को सुख कृष्णचन्द्र मकरन्दा ॥६५॥

सांवरिया मोय दरस दै गओ, मन मोरो हर लै गओ।
घर के कामदन्द करियत ते जाँ को ताँ सब रै गओ।
गुइयाँ कहो इन गलियन हो कब आबन कों कै गओ।
अब नईं और दिखात दूसरो मोरी अँखियन छै गओ।
'ईसुर' दृगन पनारे छूटे नैनन कजरा बै गओ ॥६६॥

हर की चली गेंद ना जानी, चली गई सन्नानी।
ऐसी घालन घाल दई है ग्वालन नईं दिखानी।
घाली गेंद गिरी कालीदो तुरतै जाय हिरानी।
'ईसुर' कात अधर की रंगत अधर रङ्ग सें छानी ॥६७॥

हर धरें भेष मनहारी को, मन छलन राधिका प्यारी को।
घूम घुमारो लहँगा सोहै बूटा लगो जड़तारी को।
चूनर चार चपेटन बारो तापर छोर दुलारी को।
चोली बीच दो गेंद चुराये मनो जुबन अनयारी को।
बरसाने मग जात 'ईसुरी' मोहन राजकुमारी को ॥६८॥

हर भेष चुरेरन को ठाने, पौंचे जाकें बरसाने।
है कोउ अली भवन के भीतर मोय राधे के ढिग जाने।
सुन्दर चुरियाँ जुरियाँ ल्याई, पैरो सखी जे मनमाने।
लैकर हातन कात 'ईसुरी' जा जोड़ी राधे लाने ॥६९॥

हमनें तनक देख लई मुइयाँ, आय कौन की गुइयाँ।
दाबें जात ऊंठा सें घूंघट दिलभर हेरी नइयाँ।
नग-नग गुरा हलत हैं ईके जैसें लफै धनइयाँ।
'ईसुर' चढ़ी जात डोला में जैसें राय मुनइयाँ ॥७०॥

हमसे आसिक कैई किसम के, रजो तुमारी दम के।
कइयक ई दम पै भये बाबा गोला ओल भसम के।
साहूकार निकरे ई दम पै पल्ले छोड़ हसम के।
कइयक ई दम पै भये जख्मी खाये जखम चसम के।
'ईसुर' पैल कौन पै धरती अब हित हात धरम के ॥७१॥

हो गओ संग हमारो तेरो, प्यारी मुख न फेरो।
रोंन चलाय देव हामी की एक बेर फिर हेरो।
जा आसा के लानें दइयत दोउ जुआरन घेरो।
मिल जातीं जो एक बेर को जी भर जातो मेरो।
'ईसुर' जो मन हो गओ मेरो रजो तुमारो चेरो ॥७२॥

हम पै राधा की सिवकाई, ऐसी का बन आई।
उन खाँ धुनसें ध्यान लगा कें एको दिना न ध्याई।
न कबहूँ हम करी खुसामद चरन-कमल चित लाई।
प्रन कर पाप करत रये हो गओ काँ को पुन्न सहाई।
परत लाड़ली 'ईसुर' जासों सिर पै गाज बचाई ॥७३॥

हम खाँ उलट बाँच कें लइयो ताकी तनया कइयो।
ताके पत को नाम कहत हों जुगल समझ कें लइयो।
वारमबार कही हम तुमसों हमें जुआब अब दइयो।
सारंग बाहन धन है जाके सौट पती को कइयो।
बृष अरु मेष औ मिथुन 'ईसुरी' येई फाग में चइयो ॥७४॥

● श्री कुँवर बंगलासिंह के सौजन्य से

संकलन—२

● श्री इलाशंकर गुहा

पैरें सब सोने को गानो,
सुन्दर रूप सुहानो।
पैर कड़ें मलमल की धोती,
जिनको रंग बेजानो।
कसकत काम कोट बेलन पै,
नील कमल लिपटानो।
इनखाँ अपुनो कहत चंद नें,
होस रये ना मानो।
मथुरा की चौबिनें ईसुरी,
इन्द्रपरी - सी जानो।

—आकाशवाणी, छतरपुर

संकलन—३/बारामासी

● **संकलन : डॉ० श्यामसुन्दर बादल**

दोहा—रहत हमारे ईसुरी, दोइ जनन सें काम।
सो मालिक श्री राधिका, सो मालिक श्री स्याम ॥१॥
गौरी के गन्नेस कौ, पिरथम धर कें ध्यान।
बारामासी ईसुरी, इहि विध लागे कान ॥२॥
मइना लागे माव के, पियरा गये सरीर।
मो बिरहिन पै चलत हैं, जे बसंत के तीर ॥३॥

सैर—घर में नईं हैं बालम सूने में लड़त लड़ाई।
भेले हैं बागन बसन्त सो आन चबाई।
प्यारी सें आकें पंचयात बसन्त लगाई।
सोवत ती मदन बदन में वे दये जगाई ॥४॥

दोहा—बलम न आये री सखी, ठाडी झुरपै नार।
बैरी लागे बीच में, फागुन दावादार ॥५॥

सैर—ठाड़ी झुरपै नार राम नें मौत ना दई।
जा बारी बैस बलम के सोसन गई।
सोसन सरीर सूखो तुम बिना बिहारी।
बिन सींचें मुरझात जे फूल हजारी।
सिवराती के रोज सिव खाँ जल चढ़ा रहीं।
बरदान देव दानी राधे मँगा रहीं ॥६॥

दोहा—चैत चतुर्भुज ना मिले, नैंनन झुरपै नीर।
कासौं कैं करीं करीं, उठत करेजें पीर ॥७॥

सैर—उठत करेजे पीर मनों विकल पीर की मारी।
ब्रजराज मिलैं कहूँ बेद आन टेकैं नारी।
मोरे तो जियत कीन्हीं कुबजा सौं यारी।
मर जैहौं जहर खाय मार पेट कटारी ॥८॥

दोहा—अकती धावन धा मिले, भये बैसाख बसीठ।
मो राधे नादान खाँ, दई नंदलाल पीठ ॥९॥

सैर—दै गये पीठ पीतम पंच ना पठैबी।
अब की बेर लुआ ल्याव जनम जान ना दैबी।

भई लौंद चमेली की कैसें सेबी।
घर नइँ नन्द के बिरन नाम किन कौ लैबी।
तुम सबइ बरा पूजो सखी हम ना जैबी।
किनकी तो पकर बइयाँ बरिया तर बतैबी ॥१०॥

दोहा—जेठ मास ज्वाला जरै, तपै भान के तेज।
प्रान राधका के जरें, सूनी देखें सेज ॥११॥

सैर—सूनी देखें सेज होय जिय में जरन।
लरकैंयाँ में छोड़ गये ननदी के बिरन।
मुरझाय गिरीं राधे करुना लगीं करन।
कोउ स्याम स्याम कहौ होवे दुख कौ हरन ॥१२॥

दोहा—नये-नये लतास नये-नये पलास, बिरछन बाँधे झाड़।
बलम न आये री सखी, गरजन लगे असाड़ ॥१३॥

सैर—गरजे आन असाड़ गगन घन धूम मचाई।
परदेस देस की खबर मोय आदी राते आई।
नैंनन आय न नींद मुखउ में अन्न न भावै।
उन नंदनदन लालन बिन बैरिन बरखा न सुहावे ॥१४॥

दोहा—सावन सरद सुहावनें, घर-घर हैं बाविन्द।
भूले फिरत विदेस में, मोरे करुनासिन्ध ॥१५॥

सैर—जिन घर हैं आनंद वे हिंडोर घलावें।
पीतम के संग झूलैं पीतम खाँ झुलावें।
लिख-लिख गुदना मोंम सें मावदो में रचावें।
गलियन सुन परें राछरे सब सावन गावें।
सुन-सुन कें सखिन के पति सूल हमखाँ आवें।
उन नंदलाल बिन बैरिन बरखा न सुहावे ॥१६॥

दोहा—लगत भयावनि ईसुरी, जा भादों की रात।
जिनके पिया विदेस में, तिनके प्रानन घात ॥१७॥

सैर—खांय लेत प्रान पापिन जा घूमा घन की।
फिर लोट परी पलटन पछवावर पवन की।
बरसन लगे बेदरदी जब दामिन दमकी।
लै-लै कहर-कहर मोर बोल गई बन की ॥१८॥

दोहा—मैं ऊधो पातो लिखो, तुम ले जाव संदेस।
जा कइयो उन बलम सें, आबैं अपने देस ॥१९॥

सैर—धावन तो गयो कुंआर मइना लागत।
ऊधो ने सौंप दये स्याम हांतन कागद।
नैंन चहैं दरसन भुज मिलबो मांगत।
रटना तो लगी स्याम सें तोरी सोवत जागत ॥२०॥

दोहा—कातिक मैं जो काम है, चलो चाइये स्याम।
घरै राधका मर रई, लै-लै तुमरो नाम ॥२१॥

सैर—लै-लै तुमरो नाम सखि सब गावैं मंगलाचारी।
जमुना के तीर रहस रचो सब नर औ नारी।
राधा न अनाबैं नीर प्रन पकरैं तुमारी।
चलनों है सलाह दई मानों इतनो हमारी।
चलतन में बात कै गई जा राधे प्यारी।
दोउ जनैं आन करियो गोकुल की दिवारी ॥२२॥

दोहा—अगन मास अकुला रई, सखि आजऊं की रात।
स्याम कूबरी सों कहैं, हम जैबी परभात ॥२३॥

सैर—कंचन के थार लै कूबरी नें चरन पखारे।
हिरदैं लगाय चरनोदक मुख में डारे।
मैंटे कुरूप कुबरी के अंग सुधारे।
द्वारका सैं कृस्न आज मथुरै पधारे।
बिसरैया न छैल खबर बंसीवारे ॥२४॥

दोहा—पूस मास में आन कैं, गोकुल जो नियराय।
पैल राधका के घरै, खबर दियो पहुँचाय ॥२५॥

सैर—खबर दियो पहुँचाय बात कीनी खासी।
आगे तैं लैन आये सब व्रज के बासी।
मुतियन चौक पुराय कंचन कलस धरा ती।
आरती उतारती घी बोरैं बाती।
बिप्रन खां दान देतीं भर-भर हाती।
राधा की फूली आज गज भर छाती।
गाबै औ सुनैं कटैं जी की जम फांसी।
आय गये स्याम भई पूरी बारामासी ॥२६॥

दोहा—स्याम सेज पै सुख करैं, राधे सैं लपटाय।
बा दिन की छब ईसुरी, अँखियन सें ना जाय ॥

—राठ, जिला हमीरपुर, म० प्र०

मध्य प्रदेश में नये उद्योगों को व्यापक सुविधाएँ

प्रचुर विद्युत, खनिज सम्पदा, जल, भूमि
एवं उपलब्ध श्रम से भरपूर

मध्य प्रदेश के पिछले जिलों में उद्योग स्थापित कर केन्द्र एवं राज्य शासन द्वारा दी जा रही विभिन्न रियायतों का अधिकतम लाभ उठाइये।

केन्द्र एवं राज्य शासन द्वारा प्रदत्त प्रमुख रियायतें निम्नानुसार हैं :—

- विद्युत् अनुदान
- केन्द्रीय लागत पूँजी अनुदान
- राज्य शासन पूँजी अनुदान
- विक्री कर से छूट
- अग्रणी (पायनोनियर) उद्योग को विशेष सुविधा
- चुंगी कर नहीं—प्रवेश कर से छूट
- जल सुविधा
- यातायात अनुदान
- प्रोजेक्ट रिपोर्ट व्यय प्रतिपूर्ति
- नाममात्र शुल्क पर भूमि—औद्योगिक शेड

सम्पूर्ण जानकारी के लिए निकटतम जिला उद्योग केन्द्र से सम्पर्क स्थापित करिये।

सू० प्र० स०/3881/5/84

जिला सहकारी केन्द्रीय वैंक मर्या० छपरपुर, म० प्र०
जिले के कृपकों की सेवा में निरन्तर अग्रसर :—

आइये अपनी छोटी-छोटी बचत की राशि वैंक में जमा करा कर राष्ट्रीय कृपि उत्पादन कार्यक्रम को योगदान दीजिये।

वैंक की आर्थिक स्थिति

	(रुपये लाखों में)
(१) कार्यशील पूंजी	७७१-८२
(२) अमानतें	२२८-५६
(३) कण	५८५-१६

हमारी सेवायें :—

(१) अन्य बैंकों की तुलना में १।२ प्रतिशत अधिक ब्याज दिया जाता है।

(१) चालू खाता	०-५० प्रतिशत
(२) सेविंग बचत खाता	५-५० प्रतिशत
(३) मुद्दती अमानत	११-५० प्रतिशत ५ वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिए

नये बीस सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम को मूर्त रूप देने के लिए संकल्पित

(१) सहकारी समितियों के माध्यम से खाद, बीज, कीटनाशक दवाइयां उपलब्ध कराई जा रही हैं।

(२) लघु सिंचाई योजना के अन्तर्गत कूप-निर्माण, कूप-मरम्मत, डीजल, एंजिन, विद्युत् पम्प, रहँट आदि के लिए मध्यकालीन ऋण-वितरण।

(३) सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत गांव के दूर-दराज के उपभोक्ताओं को सामग्री वितरण की जाती है।

(४) कमजोर वर्ग के कृपकों को ग्रामीण आवास हेतु ऋण उपलब्ध कराया जाता है।

प्रबन्धक	अध्यक्ष
डी० बी० तिवारी	जुझार सिंह

मध्य प्रदेश साहित्य परिषद् द्वारा प्रकाशित बहुचर्चित "कविता-अंक" के बाद

साक्षात्कार

का नया अंक अप्रैल-मई' ८४—

संस्कृत की गद्य परम्परा।
अज्ञेय का निबन्ध, शमशेर बहादुर सिंह से रंजना अरगड़े की लम्बी बातचीत, बनारसीदास चतुर्वेदी और त्रिलोचन का पत्राचार, मुकुटधर पाण्डेय की पुस्तक पर विजय मोहन शर्मा।

धीरेन्द्र अस्थाना, कृष्णशंकर भटनागर, नीलम चतुर्वेदी और शंकर की कहानियाँ, बलराम का उपन्यास अंश।

अब्दुल बिस्मिल्लाह, नाग बोडस, सुरेश स्वप्निल, राजेन्द्र कुमार, नवल शुक्ल, कैलाश पचौरी की कविताएँ तथा काफ्का साहित्य-वाल्टर बेंजामिन का विशिष्ट लेख और वेणु गोपाल का लेख साथ में काफ्का की कहानियाँ, डायरी के अंश, गद्यांश और पत्र।

इसके अलावा नयी पुस्तकों की समीक्षाएँ और अन्य स्थायी स्तम्भ।

एक प्रति : पाँच रुपये वार्षिक : पच्चीस रुपये

सम्पादक : सोमदत्त

सम्पर्क : डी १/१ प्रोफेसर कालोनी, भोपाल—४६२००२ :

विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण, चित्रकूट, म० प्र०

मध्य प्रदेश शासन द्वारा आवास एवं पर्यावरण विभागाधीन गठित विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण चित्रकूट, सतना, म० प्र० २ फरवरी सन् १६७७ से मध्य प्रदेशीय क्षेत्र में विकास एवं नगरपालिक सेवाओं में संकल्पबद्ध है। अपनी शैशवावस्था में ही प्राधिकरण की अनेकशः महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ विकास केन्द्र में स्वयं ही कीर्तिमान है, जो निम्नानुसार हैं—

१. तीर्थ यात्रियों एवं पर्यटकों की सुख-सुविधा की दृष्टि से लगभग सभी स्थानों में पेयजल, विद्युत, प्रकाश एवं स्वच्छता, स्वास्थ्य की सेवायें सुलभ कराई गईं।
२. प्रमोद वन में मंदाकिनी विश्राम गृह का निर्माण (१० लाख रुपयों की लागत का) जिसमें यात्रियों को सुख-सुविधा एवं अत्यधिक आनन्द की अनुभूति होती है।
३. प्रमोद वन में राम-रमा सेतु का निर्माण किया गया। इस सेतु से पार होकर रास्ता हनुमान धारा के मार्ग में मिलता है।
४. प्रमोद वन के नदी के दोनों ओर पुरुष तथा महिला घाट का निर्माण किया गया, जिसमें स्नानार्थियों को बड़ी सुविधा मिलती है।
५. प्रमोद वन में ही रघुराज-घाट का निर्माण।
६. श्री कामद वाटिका में पुस्तकालय का निर्माण, यहाँ पर श्री राम चरित मानस का कार्यक्रम प्रातःकाल एवं सायंकाल दोनों प्रहर ससंगीत होता है।
७. राघव-प्रयाग घाट में रैन बसेरा का निर्माण आधुनिक सुख-सुविधाओं सहित।
८. राघव प्रयाग घाट में टीन सेड का निर्माण, यहाँ पर अमावस्या को लाखों श्रद्धालु विश्राम करते हैं।
९. प्राधिकरण की ओर से राघव प्रयाग घाट में तथा वैदेही वाटिका में प्रातःकाल एवं सायंकाल श्री राम चरित मानस का सस्वर पाठ होता है।
१०. गुप्त गोदावरी की गुफाओं में विद्युतीकरण किया गया।
११. प्रमोद वन में वृद्ध सेवा-सदन का निर्माण किया गया, जिसका उद्घाटन माननीय मुख्यमंत्री श्री अर्जुन सिंह जी द्वारा दिनांक ८-१२-१६८२ को किया गया था।

१५ अगस्त के पावन पर्व पर क्षेत्र के विकास हेतु
विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण चित्रकूट
संकल्पबद्ध है।

अकादमी के अभिनव प्रकाशन

बुंदेली फागों से उद्भव, विकास, भाषा, संस्कृति एवं ईसुरी, गंगाधर व्यास, ख्याली तथा अज्ञात फागकारों पर प्रामाणिक सामग्री के लिए एकमात्र ग्रंथ

बुन्देली फाग काव्य : एक मूल्यांकन

सम्पादक : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त
डा० वीरेन्द्र 'निर्झर'

मूल्य : मात्र बीस रुपये

'आल्हा' पूरे देश की ऊर्जा का महाकाव्य बन गया है, पर उसकी कथा, वस्तु, भाव, भाषा, संस्कृति, गायकी पर कोई ग्रन्थ नहीं है। प्रामाणिक शोधपरक सामग्री के साथ उसकी विविध वर्णनायें उजोवी काव्य-सम्पदा। हिन्दी के प्रथम कवि जगनिक और आल्हखण्ड पर प्रथम ग्रन्थ

आल्हखण्ड : शोध और समीक्षा

सम्पादक : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त
डा० वीरेन्द्र 'निर्झर'

मूल्य : मात्र चालीस रुपये

'ईसुरी, जिसने गाँव की तहरीर लिखकर फागों का एक ऐतिहासिक दस्तावेज खड़ा किया की भाव, भाषा, गायकी, संस्कृति आदि की सम्यक विवेचना का प्रामाणिक और शोधपरक ग्रन्थ

लोककवि ईसुरी और उनका साहित्य

सम्पादक : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त

मूल्य : मात्र पैंतालीस रुपये

बुंदेलखण्ड और बुंदेली का एकमात्र प्रकाशन-संस्थान

बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी

छतरपुर-४७१००१ (म० प्र०)

पंजीयन १०८२४/८२

विज्ञान और टेक्नालाजी में अग्रसर-इन्दौर

- प्रदेश के पहले इलेक्ट्रानिक्स परिसर की स्थापना।

- परमाणु ऊर्जा आयोग द्वारा सेंटर फार एडव्हान्स टेक्नालाजी परियोजना का कार्य प्रारम्भ।

- दूर दर्शन की सुविधा।

- प्रदेश में सबसे अधिक बायोगैस संयंत्रों की स्थापना।